# Kannad Sahitya Ka Subodh Itihas

(A Brief History of Kannad Literature)

By

KASHI NATH M. HALLIKHEDE

प्रकाशक विद्या - मदिर,
588, एवेन्यू रोड, बँगलूर-2
मुद्रक : विद्यामदिर प्रेस, रानीकटरा, लखनऊ-3, फोन न० 82663
सस्करण : प्रथम, अक्टूबर, 1973
द्वितीय सस्करण—अप्रैल 1975
मूल्य . Rs. 25/-

## पूर्व-पाठ्य निवेदन

'कन्नड साहित्य का संक्षिप्त इतिहास' विगत डेढ वर्षों के अथक परिश्रम का परिणाम है जिसकी रचना करने के लिए सन् 1971 से ही मैं कल्पनाशील था। ग्रन्थ-रचना करने की प्रेरणा वर्ष 1971 के जून माह के अन्तिम सप्ताह मे 'विद्या मन्दिर' के संस्थापक श्री तेजनारायण टण्डन के आशीर्वाद स्वरूप मित्र रूप मे प्राप्त होने वाले एक ऐसे युवा, उत्साही हिन्दी साहित्यकार द्वारा प्राप्त हुयी थी जो कुछ ही माह की भेंट, सम्पर्क और घनिष्ठता से जीवन को एक नया मोड दे गया था। दरअसल वह एक हवा का झोंका था, जो सैकडो मील दूर लखनऊ से आया और झकझोर कर, एक अटूट मैत्री सम्बन्ध स्थापित करके 1 अक्तूबर, 1971 को पुन वापस चला गया। प्रस्तुत ग्रन्थ उसी युवा अग्रज-सम मित्र की प्रेरणा का परिणाम है जो अपने प्रवास-काल मे न केवल मुझे पुस्तक लिखने के लिए कोचता रहता था वल्कि जिसने विगत डेढ वर्षों मे पुस्तक-रचना-काल मे समय-समय पर मुझे निराश होने से बचाया और पुस्तक को पूर्ण करने के लिए प्रोत्साहन भी दिये, गालियाँ भी दीं और उलाहने भी—यहाँ तक कि पुस्तक की भाषा मे यत्र-तत्र सुधार करने तथा मैटर के सम्पादन मे भी उस 'हवा के झोंके' का वहुत वडा हाथ है जिसे मैं प्यार से 'वहोरे' की जगह 'हवले' कहा करता हूँ। इस 'हवा के झोंके' का वास्तविक नाम है, रवीन्द्रनाथ वहोरे 'अज्ञात' जिसने न केवल उपन्यास व नाटको पर ही कलम चलाई है वल्कि जिसके द्वारा प्रणीत सहायक हिन्दी पुस्तकें (आलोचनात्मक एव टीका मूलक पुस्तकें आज सारे दक्षिण भारतीय हिन्दी छात्रों का उच्च कक्षाओं मे मार्ग दर्शन कर रही हैं।

पुस्तक-प्रणयन मे यद्यपि मुझे अनेक ज्ञात-अज्ञात विद्वानो की रचनाओ से सहायता प्राप्त हुयी है तथापि सक्रिय रूप से समय-समय पर सलाह रूपी आशीर्वाद प्रदान करने वालो मे प्रमुख हैं—सर्वश्री वी० टी० सासनूर (प्रधानाचार्य, बी० वी० भूमिरेड्डी कालेज, बीदर), डा० डी० टी० रगस्वामी रीडर, कन्नड विभाग, सरकारी आर० सी० कालेज ऑफ कॉमर्स, वैंगलोर, तथा कन्नड के श्रेष्ठ साहित्यकार), पूज्य श्री परमानन्द गुप्त (प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, सेंट जोसेफ कालेज, वैंगलोर), श्री अमरचन्द वर्मा (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सेंट जोसेफ कालेज), सहयोगी श्री श्याम सुन्दर (प्रवक्ता, कन्नड विभाग, आर० सी० कालेज आफ कामर्स)। इन सभी पूज्य विद्वानो के अमूल्य सुझावों तथा सभी ज्ञात-अज्ञात विद्वानो की पुस्तको से ली गई सहायता के लिये मैं ऋणी हूँ। अब यह पुस्तक हिन्दी तथा हिन्दी जानने वाले कन्नड विद्वानो की सेवा मे मूल्यांकन हेतु मेरी प्रथम पुष्प-श्रद्धांजलि-रूप

अग्रज-सम मित्र

**रवीन्द्र नाथ बहोरे 'अज्ञात'**

तथा पूज्य भाभी

**सीता बहोरे**

को

# विषय सूची

# 1. कन्नड़-साहित्य का अभ्युदय: काल-निर्णय

## परिचय

किसी भी भाषा के साहित्य का ऐतिहासिक अध्ययन करने के लिए सबसे पहली आवश्यकता इस ज्ञान की होती है कि उस भाषा का जन्म कैसे और कहाँ से हुआ? अर्थात् उस भाषा का उद्गम् (origin) क्या है—कौन-सी भाषा है?

दूसरी बात यह, कि कोई भी भाषा पैदा होते ही 'भाषा' का स्वरूप नहीं ले लेती। तात्पर्य यह, कि वर्तमान युगीन हर भाषा का जन्म किसी-न-किसी पूर्व-प्रचलित भाषा के गर्भ से ही हुआ है। उदाहरणार्थ, कन्नड को ही लें। कन्नड का जन्मकालिक स्वरूप प्राकृत भाषा के गर्भ मे देखा जा सकता है। लेकिन पैदा होते ही कन्नड़ भाषा मे साहित्य लिखा जाने लगा हो, ऐसा नहीं है। वास्तव मे, जैसा कि हर भाषा के साथ होता है, कन्नड का भी आरम्भिक रूप 'बोली'-जैसा था। कर्नाटक-प्रदेश [ वर्तमान मैसूर प्रदेश ] के निवासी बोलचाल मे जिस भाषा का व्यवहार करते थे, उसी को कन्नड़-बोली कहेंगे, किन्तु जब उस 'बोली' के क्षेत्र का विस्तार हुआ और वह जन-साधारण से निकलकर साहित्य-रचना करने वालों के विशिष्ट वर्ग द्वारा उपयोग की जाने लगी—अर्थात् जब कन्नड का व्यवहार लिपिबद्ध होकर साहित्य-रचना के रूप में प्रयुक्त होने लगा—तब कन्नड 'बोली' न रह गई, 'भाषा' हो गई।

## कन्नड़-साहित्य का जन्म—9वीं शताब्दी से पूर्व

कन्नड़ भाषा में साहित्य की रचना कब-से आरम्भ हुयी? यह एक

विवादग्रस्त प्रश्न है, जिस पर अभी तक विद्वान् आलोचक एकमत नही हो पाये हैं। जिस प्रकार बड़े अधिकारपूर्ण ढग से हिन्दी-साहित्य के अभ्युदय-काल की घोषणा कर दी गई है, उस प्रकार से कन्नड साहित्य के बारे मे यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता कि कन्नड-साहित्य का आरम्भ किस समय हुआ होगा—हाँ! इस बाबत केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है।

वास्तविकता तो यह है कि उस समय की बहुत सी साहित्यिक-सामग्री आज हमे उपलब्ध नही होती—जो कुछ सामग्री मिली भी है, उसमे सबसे प्राचीन रचना 'कविराज-मार्ग' है। इस ग्रन्थ का रचना-काल 9वीं शताब्दी है। लेकिन केवल इतने ही से हम इस ग्रथ को कन्नड-साहित्य की पहली रचना नही मान सकते। कारण, कि 'कविराज-मार्ग' मे भाषा और विषय का जो स्वरूप मिलता है, तथा जो अन्य प्रमाण इस ग्रन्थ मे मिलते हैं, वे सब इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं कि कन्नड-साहित्य की रचना 9वी शताब्दी से काफी पहले आरम्भ हो चुकी थी।

अब प्रश्न उठता है, अगर कन्नड-साहित्य की रचना 9वी शताब्दी से काफी पहले ही आरम्भ हुयी थी, तो कब आरम्भ हुयी थी? उसकी पहली साहित्यिक रचना कौन-सी है? उसका वास्तविक (साहित्यिक) रूप मे जन्म कब हुआ था? इन प्रश्नो का सही उत्तर दे पाना कठिन है। इस बाबत भी केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है।

## कन्नड़-साहित्य की प्राचीनता के आधार

कन्नड साहित्य का उदय कब हुआ था? इस सम्बन्ध मे सम्भावित निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए जिन विभिन्न साधनो का उपयोग किया गया है, उन्हें निम्नलिखित चार वर्गों मे बाँटा जा सकता है—

1, प्रदेश के बाहर से उपलब्ध सामग्री,
2 प्रदेश के भीतर मिलने वाले शिलालेख व ताम्रपत्र,
3. प्राचीन कन्नड-ग्रथ 'कविराज-मार्ग' में उपलब्ध सामग्री, और,
4. अन्य विभिन्न ग्रन्थो में उपलब्ध सामग्री।

1 **प्रदेश के बाहर से उपलब्ध सामग्री**—कर्नाटक अथवा मैसूर-प्रदेश के बाहर अनेक ऐसे प्रमाण मिलते हैं जिनसे कन्नड भाषा की प्राचीनता सिद्ध होती है। इनमें से तीन प्रमाण प्रमुख हैं—

(1) कुछ लोगो का कहना है कि ईसा से दो शताब्दी पूर्व यूनानी

भाषा में लिखे गये एक नाटक मे—जिसका नामोल्लेख नही किया गया है—कन्नड भाषा के अनेक शब्द तथा स्थानो के नाम मिलते हैं। यह नाटक मिस्र (Egypt) से प्राप्त हुआ बताया जाता है। नाटक का कथानक मल्पे नामक बन्दरगाह से सम्बन्धित बताया जाता है, और यह सही हो भी सकता है; क्योकि उस समय भारत के व्यापारिक सम्बन्ध मिस्र, अरब आदि देशों से थे भी। मगर केवल इतना ही पर्याप्त नही है। इसके लिए शोध-कार्य (research) किया जाना चाहिए।

(ii) प्राकृत भाषा के प्रसिद्ध कवि हाल के पुस्तक "गाथा सप्तशती"* मे अनेक कन्नड शब्दो का प्रयोग मिलता है। इनमे सज्ञा शब्दो के साथ-साथ क्रिया-शब्द भी सम्मिलित हैं। जैसे,

| 'गाथा सप्तशती' में प्रयुक्त कन्नड शब्द | | हिन्दी-अर्थ |
|---|---|---|
| पोट्टा > होट्टे | — | पेट, |
| पेट्टु | — | मार (क्रिया), चोट, |
| तीर | — | हो सकना (क्रिया), |
| तुप्पा | — | घी, इत्यादि। |

(iii) तमिळ भाषा मे लिखित छद-शास्त्र की एक प्राचीन पुस्तक 'गणगुणांकिय' पुस्तक मे कन्नड की एक पुस्तक का उल्लेख मिलता है जो छन्द-शास्त्र से सम्बन्धित है। कन्नड की यह नामोल्लिखित पुस्तक अप्राप्य है। 'गणगुणाकिय' का रचना-काल सन् 844 से 888 ई० के बीच आँका गया है। इस आधार पर निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि 'गणगुणाकिय' पुस्तक की रचना से पूर्व कन्नड-साहित्य अपनी उन्नत अवस्था मे था; क्योकि अगर ऐसा न होता तो कन्नड मे छन्द-शास्त्र की रचना कदापि न हो सकती थी। दूसरे, यह पुस्तक तमिळ-पुस्तक से या तो पहले लिखी गई होगी, या उसके समकालीन होगी।

कुछ भी हो, उक्त प्रमाणो से कन्नड भाषा की प्राचीनता के पर्याप्त

---

*'गाथा-सप्तशती' का मूल नाम 'गाहा सत्तसई' है। यह पुस्तक पद्य-रूप में है। इसकी भाषा महाराष्ट्री प्राकृत-भाषा है। उल्लेखनीय है, (महाराष्ट्री प्राकृत का जन्म दक्षिण भारत मे ही हुआ माना जाता है) आधुनिक मराठी इसी महाराष्ट्री प्राकृत का परिवर्तित एवं विकसित रूप है।

सकेत मिल जाते हैं। इस आधार पर भाषा का अस्तित्व तो सिद्ध होता है, किन्तु साहित्य का नही।

2. प्रदेश के भीतर मिलनेवाले शिलालेख व ताम्रपत्र—कर्नाटक प्रदेश मे प्राप्त होनेवाले विभिन्न शिलालेखो एव ताम्रपत्रो से भी इस दिशा मे पर्याप्त सकेत मिलते हैं।

अब तक जो शिलालेख तथा ताम्रपत्र कर्नाटक मे पाये गये हैं, उनमे सबसे अधिक प्राचीन शिलालेखो और ताम्रपत्रो का काल ईसा से पूर्व तीसरी शताब्दी का है। इनकी भाषा सस्कृत तथा प्राकृत है। पहले इतिहासकारों की यह धारणा थी कि सबसे प्राचीन कन्नड शिलालेख छठी सातवीं शताब्दी के हैं, मगर हलमिडि का शिलालेख मिलने से यह धारणा गलत साबित हुयी। अब कन्नड शिलालेखो की प्राचीनता 5वी शताब्दी मानी जाने लगी है। कन्नड के कुछ अन्य शिलालेख भी मिले हैं जिनका समय अभी तक निश्चित नही किया जा सका है। ७वी सदी के अनेक शिलालेख मिलते हैं। इनकी भाषा साफ-सुथरी साहित्यिक कन्नड़ है।

इस प्रकार विभिन्न कालों के प्राप्त शिलालेखो के आधार पर कन्नड भाषा के विकास-क्रम का अनुमान लगाया जा सकता है। इनसे यह पता चलता है कि उस समय कन्नड़ मे सस्कृत-शब्दों की बहुलता थी। दूसरे, शैली निश्चित नहीं हो सकी थी। दूसरे शब्दो मे कह सकते हैं कि उस समय कन्नड-भाषा की शैली मे स्थिरता ( stability ) नही आयी थी, बल्कि यह उसकी बाल्यावस्था थी।

3. प्राचीन कन्नड़-ग्रन्थ 'कविराज-मार्ग' में उपलब्ध सामग्री—'कविराज-मार्ग' कन्नड की सबसे प्राचीन एव प्रामाणिक उपलब्ध रचना है। इसका लेखक कौन था ? इस तथ्य पर सभी कन्नड शोधकर्ता मौन हैं। इसका रचना-काल 9वी शताब्दी बताया जाता है। इस ग्रन्थ की रचना प्राचीन आचार्य दण्डी के 'काव्यादर्श' के आधार पर की गई है। 'काव्यादर्श' की भाँति ही 'कविराज-मार्ग' भी एक अलकार-ग्रन्थ है। कन्नड-साहित्य के इतिहास पर यह ग्रन्थ पर्याप्त प्रकाश डाल सकने मे समर्थ है। इसकी रचना यद्यपि 'काव्यादर्श' के अनुकरण पर की गई है तथापि इसमे कन्नड देश (कर्नाटक प्रदेश तथा भाषा के स्वरूप, साहित्य, स्थिति और कवियो को मार्ग-दर्शन करानेवाली विचार-प्रणाली आदि का जिस रूप में वर्णन किया गया है, उसके आधार पर इसे 'अनुकरणित, स्वतन्त्र ग्रन्थ' कहा जा

सकता है । इस ग्रथ से निम्नलिखित तथ्यो ( facts ) पर प्रकाश पड़ता है—

( i ) 'कविराज-मार्ग' के रचयिता (?) ने एक स्थल पर लिखा है—कन्नड़-काव्यों में 'चिरन्तनाचार्यों ने अनगिनत गुणवाले गद्य-पद्य-मिश्रित काव्य को गद्य-कथा प्रणीति बतलाया है।'

इस कथन से दो बातें स्पष्ट होती हैं :

(क) पहली यह, कि 'कविराज-मार्ग' ग्रन्थ की रचना जिस समय हुई थी, उससे पहले ही कन्नड-साहित्य के अन्तर्गत बहुत-से विद्वान् 'चिरन्तन'-( प्राचीन अथवा पूर्वकालिक । '—आचार्य' ( काव्य-शास्त्र के मर्मज्ञ अर्थात् काव्य-शास्त्र को भली प्रकार समझनेवाले विद्वान्) प्रतिष्ठित हो चुके थे; और

(ख) दूसरी यह, कि उक्त ग्रथ के पहले से ही कन्नड़ मे गद्य और पद्य के मिले-जुले कथा-रूप-काव्य मौजूद थे, जिनके आधारो पर ही इस 'कविराज-मार्ग' नामक ग्रथ की रचना हुयी। कहना न होगा, यह एक 'लक्षण-ग्रथ' है।

( ii ) दूसरा तथ्य यह है कि इस ग्रथ में अनेक स्थानो पर 'पुरातन-कवियों, पूर्वाचार्यों' आदि-जैसे शब्दों का प्रयोग किया गया है। ये शब्द-प्रयोग इस बात को स्पष्ट करते हैं कि उक्त ग्रथ से पहले कन्नड-साहित्य अपने पूर्ण, विकसित रूप मे मौजूद था।

(iii) इस ग्रन्थ में एक अन्य स्थल पर ग्रंथकार लिखता है—'काव्य स्थायित्व का होना, काव्य के काव्यत्व का लक्षण है, यह जानते हुए भी शास्त्रबल से हीन कुछ लोग, 'यह देसी [ देशज ] नहीं है', कहकर पुरानी कन्नड़ को बिगाड़कर बोलते हैं।'

कविराज-मार्गकार के इस कथन से यह सिद्ध होता है कि उस समय कन्नड भाषा और साहित्य पूरी तरह विकसित होकर अपना एक स्वरूप निश्चित कर चुके थे। दूसरे, उस समय कन्नड-भाषा के दो रूप रहे होंगे जिनमें से एक रूप 'पुरानी कन्नड' कहलाता था। कन्नड़ का यह 'पुराना रूप' इस तथ्य की ओर सकेत करता है कि उस समय कन्नड भलीभाँति विकसित हो चुकी थी, साथ ही उसने साहित्यिक कन्नड के रूप मे अपना स्थान बना लिया था।

(iv) इसी ग्रथ में एक स्थान पर लेखक ने कन्नड देश (कन्नड़ भाषा का प्रयोग करनेवाला कर्नाटक प्रदेश) की सीमाओ का निर्देश करते समय, वहाँ के निवासियो की प्रशसा करते हुए बेपढ़े-लिखे व्यक्तियो को भी 'चतुर

और काव्य-प्रयोग परिणतमति' कहकर सम्बोधित किया है। यह वाक्य इस तथ्य की ओर सकेत करता है कि उस समय कन्नड मे काव्य-परम्परा बहुत अधिक समृद्ध हो चुकी थी।

(V) प्रस्तुत ग्रन्थ मे रचनाकार ने सस्कृत के कुछ प्रसिद्ध गद्य-पद्य लेखकों का उल्लेख करने के बाद कन्नड के कुछ गद्य-पद्यकार कवियों के नाम दिये हैं। उनमे विमलोदय, नागार्जुन, जयबन्धु, कवीश्वर, पण्डित चद्रलोक पाल, दुर्विनीत आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। किन्तु इनमे से केवल दुर्विनीत को छोडकर अन्य किसी भी कवि तथा उनकी रचनाओं का पता प्रमाणित रूप से नहीं चल पाया है। छठी शताब्दी का गगवशी नरेश दुर्विनीत एक शास्त्रज्ञ व्यक्ति था। उसके राज्य मे अनेक सस्कृत एव कन्नड़ के विद्वानो को राज्याश्रय मिला हुआ था। इतना ही नहीं, उसने स्वय भी अनेक सस्कृत एव कन्नड़ ग्रथों की रचना की थी जिनकी जानकारी तो मिलती है, परन्तु ग्रथ एक भी नहीं मिलता।

तात्पर्य यह कि, जैसा कि ऊपर की विवेचना से स्पष्ट है, 'कविराजमार्ग' से काफी पहले ही कन्नड मे साहित्य-रचना आरम्भ हो चुकी थी और उसमे काफी अधिक, और अच्छा साहित्य लिखा भी जा चुका था।

4. अन्य विभिन्न ग्रथों मे उपलब्ध सामग्री—इसी प्रकार 'कविराजमार्ग' के अतिरिक्त कुछ अन्य ग्रथ भी प्राप्य हैं जिनमे अनेक प्राचीन ग्रथो का उल्लेख किया गया मिलता है। इन प्राचीन ग्रथो के उल्लेख-मात्र ही मिलते हैं, ग्रन्थ नहीं। फिर भी जिन ग्रन्थो का उल्लेख मिलता है, वे इस प्रकार हैं—

| ग्रन्थ | लेखक | स्वरूप |
|---|---|---|
| 1. चूड़ामणि | तुम्बुलाचार्य | व्याख्यान ग्रन्थ |
| 2. प्राभृत शास्त्र [परा-पद्धति] | श्याम कुन्दनाचार्य | तीन भाषाओ—सस्कृत, प्राकृत तथा कन्नड में लिखित विषयक् शास्त्र ग्रन्थ |
| 3. पद्याष्टक | गंगवशी नरेश शिवमार | गज-शास्त्र विषयक् ग्रन्थ |
| 4. कुमारसम्भव | असग | कन्नड-अनुवाद |
| 5 गणगुणाकिय | ? | छन्द-शास्त्र |
| 6 'हरिवंश' तथा 'शूद्रक' | हरिवश | दोनों चम्पू-काव्य |
| 7 वाड्डराधने | शिवकोट्याचार्य | गद्य-पद्य ग्रन्थ |

उक्त ग्रंथों में से सिवाय 'वड्डाराधने' के अन्य कोई भी ग्रंथ आज उपलब्ध नहीं है; फिर भी इस सारणी (Table) से यह पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है कि उल्लिखित ग्रंथ बहु-विषयक् थे—अर्थात् इनमें काव्य, छन्द-शास्त्र, जैन-दर्शन, चम्पू-काव्य, गद्य कथा तथा संस्कृत-काव्यों के कन्नड़-अनुवादमूलक ग्रंथ भी थे। विद्वानों के मत में, इनमें से कुछ ग्रंथ 'कविराज-मार्ग' के पहले, कुछ उसके समकालीन और कुछ उसके बाद की रचनाएँ हैं।

(इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि कन्नड भाषा का विकास श्याम कुन्दनाचार्य के अप्राप्य ग्रन्थ 'प्राभृत-शास्त्र'—जिसका रचना-काल ७वीं शताब्दी है—से कई शताब्दी पहले ही आरम्भ हो चुका था और इस समय तक आते-आते जैन-धर्म के आचार्यों ने कन्नड में साहित्य लिखना आरम्भ कर दिया था। कहना न होगा, कन्नड में जैन धर्म का प्रचुर साहित्य मिलता है। कन्नड-साहित्य के इस आविर्भाव-काल में कन्नड को उसके पैरों पर खड़ा करनेवाले यही जैन-आचार्य थे जिन्होंने उसे साहित्यिक भाषा बनाया, कन्नड-साहित्य को एक निश्चित रूप दिया, उसे आगे विकसित होने की शक्ति दी, फलने-फूलने की दिशा दिखाई।)

## काल-निर्णय

उक्त विवेचन से यह बात पूरी स्पष्ट हो जाती है कि कन्नड भाषा का जन्म आज से लगभग 2,000 वर्ष पूर्व हुआ था।

ईसा की पाँचवीं-छठी शताब्दी—अर्थात् सन् 600-700 ईस्वी—तक आते-आते कन्नड भाषा काफी परिष्कृत एवं परिमार्जित हो गयी थी। उसमें साहित्य-रचना होने लगी थी, जिसके प्रमाण हैं उस समय के प्राप्त शिला-लेख एवं ताम्रपत्र!

छठी शताब्दी से नवीं शताब्दी तक के इन तीन सौ वर्षों में कन्नड भाषा पूरी तरह विकसित होकर अपना साहित्यिक रूप ग्रहण चुकी थी। इन 300 वर्षों में कन्नड में काफी उच्चकोटि का साहित्य लिखा गया था जिसका प्रमाण इन तथ्यों द्वारा दिया जा सकता है—

1 छठी शताब्दी में गंगवंशी नरेश दुर्विनीत द्वारा की गई संस्कृत एवं कन्नड भाषा की ग्रंथ-रचनाएँ—जो अप्राप्य हैं, परन्तु जिनका महत्वपूर्ण ऐतिहासिक उल्लेख मिलता है।

2 गंगवंशी राजा शिवमार द्वारा लिखे गये 'गजाष्टक' आदि कन्नड ग्रंथ।

3. प्रसिद्ध राष्ट्रकूट वंशी राजा नृपतुंग के राज्याश्रय में लिखी गई कन्नड़ की सबसे पहली उपलब्ध रचना 'कविराज-मार्ग'।

अभिप्राय यह कि कन्नड-साहित्य की रचना का आरम्भ आज से लग-लगभग 1400 वर्ष पहले हुआ था।

उल्लेखनीय है कि भारत में प्राचीनता की दृष्टि से सबसे प्राचीन साहित्य संस्कृत भाषा का, फिर तमिळ भाषा का और उसके बाद कन्नड भाषा का है।

# 2. कन्नड़ साहित्य का काल-विभाजन

## परिचय

पिछले अध्याय में हमने देखा कि कन्नड़ भाषा मे साहित्य की रचना लगभग ईसा की पाँचवी-छठी शताब्दी मे शुरू हुई थी, अर्थात् कन्नड-साहित्य का आरम्भ आज से लगभग 1400 वर्ष पूर्व हुआ था। तब से लेकर आज तक निरन्तर कन्नड साहित्य की रचना होती रही है। फलतः कन्नड मे साहित्य की प्रायः सभी विधाओ का सम्यक् विकास हुआ है। साहित्य की अनेको शैलियो तथा विभिन्न स्वरूपों मे निरन्तर, अबाध गति से सृजन प्रक्रिया चलते रहने के फलस्वरूप कन्नड-साहित्य का भण्डार बहुत विशाल हो गया है।

कहना न होगा, इस विशाल कन्नड-साहित्य का एक साथ अध्ययन कर पाना बहुत कठिन कार्य है। अध्ययन की इस कठिनाई को दूर करने के लिए यह नितान्त आवश्यक हो जाता है कि हम इस विशाल साहित्य को किसी प्रकार कुछ विशिष्ट (special) वर्गों मे बाँट लें—यह और बात है कि ये वर्ग किस आधार पर किए जायें।

किसी भी भाषा के विपुल साहित्य को अध्ययन की सुविधा के लिए जब विभिन्न प्रकार के वर्गों मे बाँटा जाता है तो यह वर्ग-विभाजन की प्रक्रिया सामान्य तौर पर, साहित्यिक शब्दावली मे, 'काल-विभाजन-प्रक्रिया' कहलाती है। 'काल-विभाजन' का अभिप्राय साहित्य के उस वर्गीकरण (classification) से होता है जिसके अन्तर्गत सम्पूर्ण साहित्य को 'काल' (period) के अनुसार विभिन्न वर्गों में वर्गीकृत कर लिया जाता है।

कन्नड-साहित्य का समग्रत अध्ययन करने के लिए भी यह 'साहित्यिक काल-विभाजन' आवश्यक ही नही, अनिवार्य-सा हो जाता है। प्रस्तुत अध्याय मे हम इसी काल-विभाजन-प्रक्रिया पर विचार करेंगे।

## काल-विभाजन सम्बन्धी विभिन्न मत

उल्लेखनीय है, जिस प्रकार हिन्दी-साहित्य के सम्पूर्ण इतिहास को विद्वान् आलोचको तथा इतिहासकारो ने चार युगो (periods, मे बाँटकर प्रत्येक युग के लिए एक नाम निश्चित कर दिया है,* वैसा कन्नड-साहित्य मे नही हो सका है। हिन्दी ऐतिहासिको की भाँति कन्नड-इतिहासकार परस्पर एकमत नही हो सके हैं। अनेक लोगो ने कन्नड-साहित्य को विभिन्न प्रकार से कालानुसार विभाजित किया है। इनमे से कुछ प्रमुख विद्वानो द्वारा किये गये काल-विभाजन इस प्रकार हैं—

1 मतों के आधार पर—कन्नड-साहित्य का आरम्भ जैन-कवियो के माध्यम से हुआ था—इस तथ्य का स्पष्टीकरण पिछले अध्याय के अन्तर्गत किया जा चुका है। अत स्वाभाविक है, जैन-कवियों ने अपनी रचनाओ मे जैन-धर्म की विशेषताओ तथा उसके उपदेशो को प्रमुखता दी होगी ; और सच भी यही है। आदिकालीन कन्नड-साहित्य को बडी सरलता से 'जैन-साहित्य' कहा जा सकता है, क्योकि कन्नड मे जैन-धर्म का साहित्य प्रचुर मात्रा मे मिलता है। कन्नड़ के अनेक आरम्भिक साहित्यकार जैन-मतावलम्बी थे। इसी प्रकार कन्नड़ मे समय-समय पर वीर-शैव और ब्राह्मण-धर्म के मानने वालो ने भी अपनी-अपनी रचनायें दी।

इस दृष्टिकोण से, विभिन्न 'मतो'—अथवा 'वादो', जिसे अँग्रेजी मे 'ism' कहते हैं—को आधार मानकर अनेक विद्वानो ने कन्नड-साहित्य को तीन कालो मे विभाजित किया है।

वादो के आधार पर काल-विभाजन करने वालो मे श्री आर० नरसिंहाचार्य का नाम उल्लेखनीय है। श्री नरसिंहाचार्य कन्नड-साहित्य के पहले इतिहासकार थे। उन्होंने अपनी पुस्तक "कर्नाटक कवि-चरिते" के अन्तर्गत कन्नड-साहित्य को तीन विभिन्न कालो मे विभाजित किया है। श्री नरसिंहाचार्य द्वारा प्रस्तावित काल-विभाजन इस प्रकार है—

* हिन्दी-साहित्य के इतिहास को चार कालो मे बाँटा गया है—आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल तथा आधुनिक काल। इनमे सिर्फ 'आदिकाल' को छोडकर शेष सभी साहित्य-कालो के नाम निश्चित हैं, उनमे कोई भी परिवर्तन नहीं हुआ है।

जैन युग — आरम्भ से सन् 1150 ईस्वी तक
वीरशैव युग — सन् 1150 से 1500 ईस्वी तक
ब्राह्मण युग — सन् 1500 से 1900 ईस्वी तक

श्री नरसिंहाचार्य ने अपने इस काल-विभाजन को स्पष्ट करते हुए पुस्तक मे लिखा है कि यद्यपि इन विभिन्न युगो के नाम विभिन्न सम्प्रदायों के आधार पर दिये गये हैं, परन्तु इसका यह अभिप्राय कतई नहीं है कि किसी युग-विशेष मे केवल उसी सम्प्रदाय से सम्बन्धित साहित्य ही लिखा गया हो। वस्तुस्थिति तो यह है कि इन युगों का नामकरण (nomenclature) उस युग मे लिखे गये ऐसे साहित्य के आधार पर किया गया है जो सबसे अधिक मात्रा मे लिखा गया—अर्थात् जैन-युग मे जैन-साहित्य की प्रमुखता तो रही है, परन्तु इस युग में अन्य प्रकार का साहित्य भी लिखा गया था। दूसरे शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि श्री नरसिंहाचार्य द्वारा प्रस्तावित काल-विभाजन साहित्य में उपलब्ध विभिन्न प्रवृत्तियो (tendencies) के आधार पर किया गया है।

इसी सन्दर्भ मे एक तथ्य और उल्लेखनीय है वह यह कि श्री नरसिंहाचार्य द्वारा किये गये काल-विभाजन का आधार मतों के साथ-साथ उस युग में प्रचलित प्रमुख शैलियाँ भी रही हैं। शैलीगत इस विशेषता के आधार पर देखने से तीन मुख्य बातें स्पष्ट होती हैं—

(i) जैन-युग मे अधिकतर साहित्य चम्पू-काव्य के रूप मे लिखा गया। अतएव इस युग को चम्पू-काव्य युग भी कहा जा सकता है।

(ii) दूसरे, वीर-शैव युग में अधिकाश साहित्यकारो ने गद्य-साहित्य लिखा। कविता के रूप मे जो साहित्य लिखा गया, उसमे षट्पदी, त्रिपदी तथा रगले आदि छन्दों का उपयोग बहुतायत के साथ किया गया। अतएव हम इसे गद्य-पद्य-रचना-युग कह सकते हैं।

(iii) तीसरे, ब्राह्मण युग मे अधिकाश बडी रचनाओ मे षट्पदी छन्द की प्रधानता रही, और छोटी कृतियाँ कीर्तनो के रूप मे लिखी गई। अतएव इसे गीति-युग के नाम से पुकारा जा सकता है।

यद्यपि 'कर्नाटक कवि-चरिते' मे शैलीगत यह विभाजन नही मिलता है, तथापि ऐसा लगता है कि श्री नरसिंहाचार्य द्वारा मतो के आधार पर किया गया यह काल-विभाजन विभिन्न युगो की शैलीगत विशेषताओ को भी अपने-आप में समेटे हुए है।

2 राइस का मत—अंग्रेजी के विद्वान् श्री एडवर्ड पी० राइस ने कन्नड़-साहित्य का सम्पूर्ण इतिहास लिखते हुए अपनी प्रसिद्ध पुस्तक

"A History of Kanarese Litrature" मे कन्नड-साहित्य की उपमा एक महानदी से दी है। राइस महोदय के शब्दो का हिन्दी अनुवाद इस प्रकार दिया जा सकता है—

("कन्नड-साहित्य एक महानदी है जिसमे समय समय पर विभिन्न धाराएँ आकर मिली हैं। पहली धारा; जैन काव्य-धारा थी। कुछ समय बाद इस महानदी मे वीर-शैव धारा आकर मिली; और ये दोनों धाराएँ साथ-साथ बहती रही, आपस मे मिलकर एक न हुयी। कुछ समय बाद इनमें एक तीसरी ब्राह्मण-धारा भी आ मिली। और ये तीनो ही धारायें साथ-साथ बहती रहीं, आपस मे मिलकर एक न हो सकी। इन तीनो धारा-रूपी युगो में से जैन-युग मे अगर केवल जैन-कवि ही मिलते हैं तो वीर-शैव युग में जैन तथा वीर-शैव दोनों मतो को मानने वाले कवि मिलते हैं, और ब्राह्मण युग मे तो उन दोनो के साथ-साथ ब्राह्मण कवि भी मिलते हैं····")

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि राइस महोदय ने श्री आर० नरसिंहाचार्य द्वारा प्रस्तावित काल-विभाजन को स्वीकार करते हुए उसी विभाजन को मान्यता दी है। अतएव राइस महोदय के मत का कोई पृथक् अस्तित्व नही है।

3. भाषा-विकास के आधार पर—श्री नरसिंहाचार्य द्वारा किया गया पूर्वोक्त काल-विभाजन काफी समय तक विद्वानों को मान्य रहा। उसके बाद कुछ विद्वानो ने इस विभाजन को 'साम्प्रदायिक' (communal) घोषित करते हुए इसमे कई दोष ढूंढ़ निकाले। इन लोगों ने उस विभाजन को दोषी मानते हुए भाषा के आधार पर सम्पूर्ण कन्नड-साहित्य को निम्नलिखित पाँच युगो में विभाजित किया, जो इस प्रकार है—

1. मूल कन्नड़ काल — आरम्भ से सन् 750 ई० तक
2. प्राचीन कन्नड़ काल — सन् 750 से 1150 ई० तक
3. मध्य कन्नड़ काल — सन् 1150 से 1500 ई० तक
4. नवीन कन्नड़ काल — सन् 1500 से 1850 ई० तक
5. अभिनव कन्नड़ काल— सन् 1850 से अब तक

इस काल-विभाजन पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इसका आधार कन्नड़-भाषा का विकास-क्रम रहा है।

4. वर्णित विषय के आधार पर—भाषा के विकास-क्रम को आधार मानकर जो काल-विभाजन किया गया, वह अधिक लोकप्रिय सिद्ध नही हुआ। अत. इस विभाजन से जब विद्वानो को संतोष न मिला तो

उन्होंने अपना एक नया काल-विभाजन प्रस्तुत किया, जिसका आधार 'वर्ण्य-विषय' [ अर्थात् साहित्य में वर्णित विषय ] था।

वर्ण्य-विषय को आधार मानते हुए जो काल-विभाजन प्रस्तुत किया गया, वह इस प्रकार है—

1. क्षात्र-युग — 10वीं से 12वीं शताब्दी तक
2. मत-प्रचार युग — 12वीं से 16वीं शताब्दी तक
3. सार्वजनिक युग — 16वीं से 19वीं शताब्दी तक
4. आधुनिक युग — 19वीं शताब्दी से आज तक

किन्तु यह विभाजन भी अधिक सन्तोषप्रद नही सिद्ध हुआ, तब विद्वानो ने इसे दूसरे रूप मे प्रस्तुत किया।

5. रस के आधार पर—संस्कृत की एक प्रसिद्ध उक्ति है · 'रसो वै· ब्रह्म' और सस्कृत भाषा के सुप्रसिद्ध आचार्य विश्वनाथ तो "काव्य (अर्थात् साहित्य) की आत्मा रस" को ही मानते थे। उनके अनुसार 'रसात्मक वाक्य काव्य" , अर्थात् रस से परिपूर्ण वाक्य ही साहित्य है।

इसी रस को साहित्य की आत्मा के रूप मे स्वीकार करते हुए अनेक विद्वानों ने अपने काल-विभाजन का आधार रस-तत्व को माना है।

रसों की प्रमुखता की दृष्टि से कन्नड-साहित्य को निम्नलिखित विभिन्न कालो या युगों में बाँटा जा सकता है—

1. वीरगाथा काल — 10वीं से 12वीं शताब्दी तक
2. शृंगार काल — 12वी से 16वी शताब्दी तक
3. भक्ति काल — 16वी से 19वी शताब्दी तक
4. आधुनिक काल — 19वी शताब्दी से आज तक

कहना न होगा, यह काल-विभाजन हिन्दी-साहित्य में किये गये काल-विभाजन से बहुत-कुछ मिलता जुलता है। हिन्दी-साहित्य मे जो काल-विभाजन किया गया है, वह इस प्रकार है—

1 आदि काल अथवा वीरगाथा काल
2 भक्ति काल
3. रीति काल
4. आधुनिक काल

हिन्दी और कन्नड़ के काल विभाजनो की तुलना से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन दोनो मे केवल दूसरे और तीसरे युगो के क्रम बदले हुए हैं, शेष वृत्तियाँ वही हैं। रस को प्रधानता देते हुए कन्नड-साहित्य का यह काल-

विभाजन हमे कहीं अधिक सटीक (accurate) और वैज्ञानिकता लिए हुए प्रतीत होता है। फिर भी यह काल-विभाजन विद्वानों को स्वीकार्य नही है। अत. विद्वानो ने एक नये काल-विभाजन को मान्यता प्रदान की है।

6. प्रमुख कवि के नाम पर—आजकल कन्नड-साहित्य के इतिहास मे काल-विभाजन के इसी आधार को मान्यता प्राप्त है। इसके अन्तर्गत विभिन्न युगों का नामकरण उस युग के एक ऐसे प्रमुख कवि अथवा भक्त के नाम पर कर दिया गया है जिसका प्रभाव उस युग मे सर्वाधिक रहा है।

कवि अथवा भक्त के नाम पर किया गया यह काल-विभाजन श्री र० मुगलि द्वारा "कन्नड-साहित्य-चरित्र" मे दृष्टव्य होता है। इसे श्री सिद्धगोपाल काव्यतीर्थ ने इस प्रकार उद्धृत किया है—

1. पम्प-पूर्व युग [ अज्ञात युग ] — आरम्भ से 900 ई० तक
2. पम्प युग — 900 से 1150 ई० तक
3. बसव युग — 1150 से 1400 ई० तक
4. कुमार व्यास युग — 1400 से 1900 ई० तक
5. आधुनिक युग — 1900 से आज तक

श्री मुगलि द्वारा प्रस्तावित काल-विभाजन ही आज सर्वमान्य है। अतएव प्रस्तुत ग्रन्थ के अन्तर्गत कन्नड-साहित्य की समग्र विवेचना इसी प्रस्तावित काल-विभाजन के आधार पर की जायेगी।

# 3. कन्नड़-साहित्य का अज्ञात काल : पम्प-पूर्व युग

## कन्नड़-साहित्य का प्रथम युग

### परिचय

कन्नड़-साहित्य का आरम्भ, जैसा कि दूसरे अध्याय मे कहा जा चुका है, ईस्वी सन् 900, अर्थात् दसवीं शताब्दी के बहुत पहले ही हो चुका था। सन् 900 ई० के पूर्व कन्नड मे काफी साहित्य लिखा गया था। उस समय की अनेक रचनाओ के नामोल्लेख मिलते हैं। जिनमें चूडामणि, कन्नड प्राभृत-शास्त्र, पद्याष्टक, कन्नड कुमारसम्भव, गणगुणांकिय, हरिवंश, शूद्रक, वड्डाराधन या वड्डाराधने और कविराज-मार्ग आदि मुख्य ग्रन्थ हैं [देखिए पहले अध्याय मे दी गई सारिणी], किन्तु इन ग्रन्थो में से आज केवल हमें अन्तिम दो ग्रंथ—कविराज-मार्ग और वड्डाराधन—ही उपलब्ध हैं, शेष ग्रन्थो के केवल नामों की ही जानकारी हमे प्राप्त होती है।

उल्लेखनीय है, जिन अप्राप्य तथा प्राप्य ग्रन्थो के नाम हमे प्राप्त होते हैं, उनसे यह साफ जाहिर है कि उस समय कन्नड-साहित्य काफी विकसित हो चुका था और उसमें विभिन्न प्रकार के ग्रन्थों की रचना सफलतापूर्वक की जा चुकी थी। अर्थात् दसवी शताब्दी के आरम्भ तक व्याख्यान-ग्रन्थों, परा-पद्धति-विषयक् शास्त्रीय ग्रन्थो, चम्पू-काव्यों, गद्य-कथामूलक ग्रन्थ, अनुवादित ग्रन्थ, अलंकार और छद शास्त्र से सम्बन्धित शास्त्रीय ग्रन्थो की रचनाएँ की जा चुकी थीं।

इस आधार पर यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि कन्नड़ में साहित्य की परम्परा सन् 900 ई० के पूर्व भलीप्रकार से विकसित हो-

चुकी थी, उसमे अनेक सुन्दर, आकर्षक, रग-बिरगे फूल खिल चुके थे। लेकिन चूंकि आज वे ग्रन्थ अन्धकार की पर्तों में खो चुके हैं, और दूसरे, कन्नड़-साहित्य के आरम्भ का निश्चित समय अभी तक निर्धारित नही किया जा सका है; इसी-लिए कन्नड-साहित्य के इस प्रथम युग को अज्ञात काल कहते हैं। अधिकांश विद्वान् इसी को पम्प-पूर्व युग भी कहते हैं।

विद्वानो ने कन्नड-साहित्य के इस युग की काल-सीमा आरम्भ से 900 ईस्वी सन् तक मानी है—अर्थात् कन्नड-साहित्य की रचना जब से भी शुरू हुयी हो, तब से लेकर सन् 900 ई० तक का सम्पूर्ण साहित्य इसी 'अज्ञात युग' मे आता है—चाहे वह साहित्य उपलब्ध हो, या न हो।

## अज्ञात युग की रचनायें व ग्रन्थकार

अज्ञात अथवा पम्प-पूर्व युग मे जिन साहित्यिक ग्रन्थो की रचना हुयी, उनकी सम्पूर्ण उपलब्ध सारिणी इस प्रकार बताई जा सकती है।

### अज्ञात युग के उल्लिखित ग्रन्थ और ग्रन्थकारों की सारिणी

| क्रम सख्या | ग्रथ | स्वरूप | ग्रथकार | काल [ईस्वी सन् मे] | मत |
|---|---|---|---|---|---|
| 1. | बृहत्कथा, | ? | दुर्विनीत | 550–600 | जैन |
| 2. | किरातार्जुनीय [सस्कृत(?) मे] | | | | |
| 3. | शब्दा-वतार कन्नड (?) मे | | | | |
| 4 | वड्डुकथे | | | | |
| 5. | चूडामणि | व्याख्यान ग्रन्थ | तुम्बुलाराचार्य | 650(लगभग) | जैन |
| 6. | कन्नड 'प्राभृत' अथवा 'परा-पद्धति | शास्त्रीय ग्रन्थ | श्यामकुन्दाचार्य | 650(लगभग) | जैन |
| 7. | शिवमार मत | गज-शास्त्र | सैगोट्टिशिवमार | 780–812 | जैन |
| 8. | कविराज-मार्ग | अलकार शास्त्र | ? | 815–877 | जैन |
| 9. | कन्नड़कुमारसम्भव | काव्यानुवाद | असग | 854–? | जैन |
| 10. | गणगुणांकिय अथवा 'गुणगांकिय' | छन्द शास्त्र | ? | 844–888 | ? |
| 11. | हरिवश | चम्पू-काव्य | गुणवर्मा प्रथम | 900(लगभग) | जैन |
| 12 | शूद्रक | | | | |
| 13. | ? | — | गुणनन्दी | 900 लगभग) | जैन |
| 14. | वड्डाराधने | गद्य-कथा | शिवकोट्याचार्य | 925 (लगभग) | जैन |

अन्य ग्रन्थकार—सारिणी (Table) मे जिन लेखको का उल्लेख किया गया है, उनके अलावा भी अनेक लेखको तथा कवियो के नामो का उल्लेख मिलता है, किन्तु उनकी न तो रचनाएँ उपलब्ध हैं, न उनके नाम, न उनका समय ही निश्चित हो सका है, न उनके मत का ही निर्णय हो पाया है। ऐसे लेखको को दो भागो मे बाँट सकते हैं—

1. गद्य-लेखक—इस वर्ग के तीन लेखको नाम मिलते हैं विमलोदय, नागार्जुन, नयबन्धु, आदि। इन सभी ने अपना साहित्य गद्य मे लिखा था।

2 पद्य-लेखक या कवि—पद्य-साहित्य की रचना करने वाले इस वर्ग के कवि ये हैं : श्रीविजय, कवीश्वर, पण्डित चन्द्रलोकपाल, इत्यादि।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि इस युग मे साहित्य तो प्रचुर मात्रा मे लिखा गया, किन्तु दुर्भाग्यवश वह आज उपलब्ध नहीं है। उपलब्ध ग्रन्थ केवल दो ही हैं कविराज-मार्ग और वड्डाराधने।

महत्व की दृष्टि से नीचे इन ग्रन्थो का सक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

## कविराज-मार्ग

### लेखक-निर्णय

आदिकालीन कन्नड-साहित्य मे उपलब्ध होने वाला यह ग्रन्थ 'कविराज-मार्ग' सबसे अधिक प्राचीन है। इसकी रचना 9वी शताब्दी मे हुई थी। किन्तु इस प्राचीन, बहुमूल्य ग्रन्थ को किसने लिखा, इसका लेखक कौन है, यह विवादास्पद है। अतएव इस ग्रन्थ के सम्बन्ध मे आगे जानकारी प्राप्त करने से पूर्व यह आवश्यक-सा हो जाता है कि पहले इसके लेखक का निर्णय कर लिया जाये।

'कविराज-मार्ग' का लेखक कौन था ? इस सम्बन्ध मे दो धारणाएँ विद्वानो द्वारा प्रस्तुत की गई हैं—

1. कुछ लोगो के मतानुसार, इस ग्रन्थ की रचना राष्ट्रकूट नरेश नृपतुग द्वारा की गई है।

2 किन्तु कुछ लोग पहली धारणा का विरोध करते हैं। उनके मत मे यह ग्रन्थ स्वय नृपतुग द्वारा नही लिखा गया है, बल्कि इसकी रचना नृपतुग के आश्रित किसी अन्य व्यक्ति द्वारा की गई है।

तर्कों के आधार पर भी दूसरी मान्यता ही उचित जान पडती है कि 'कविराज-मार्ग' की रचना करने वाला स्वय राष्ट्रकूट-नरेश नृपतुग नही, उसका आश्रित कोई कवि था। इस बात की पुष्टि के लिए अग्रलिखित तर्क दिये जा सकते हैं—

[अ] पहली बात तो यह है कि इस ग्रन्थ में आरम्भ से अन्त तक राष्ट्र-कूट नरेश नृपतुग की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है। अतएव कहना न होगा, कोई भी व्यक्ति अपनी ही लेखनी द्वारा स्वय अपनी प्रशसा पूरी रचना मे नही कर सकता। अगर नृपतुग को ही इसका लेखक माना जाये तो उसके द्वारा की गई इतनी अधिक आत्म-प्रशसा अविश्वसनीय-सी लगती है। हाँ, निस्सन्देह कोई अन्य व्यक्ति उसकी प्रशसा में पूरे ग्रन्थ की रचना कर सकता है।

[आ] दूसरे, पूरे ग्रन्थ में नृपतुग की प्रशंसा करते समय ग्रन्थकार ने उसे 'वह' कहकर सम्बोधित किया है, 'मैं' कहकर नही। स्पष्ट है कि कोई भी लेखक, अगर अपनी प्रशसा स्वयं करेगा तो अपने लिए 'मैं' शब्द का प्रयोग करेगा, न कि 'वह' शब्द का।

[इ] तीसरे, हर परिच्छेद के अन्त मे ये शब्द लिखे पाये जाते हैं "नृपतुग देव की अनुमति से लिखा कविराज मार्ग।"

[ई] चौथे, यद्यपि इस ग्रन्थ मे सस्कृत के प्राचीन आचार्यों दण्डी, आदि के विचारों को प्रस्तुत ही नहीं किया गया है अपितु दण्डी के 'काव्यादर्श' के अनेक सूत्रो को अविकल रूप में अनुवादित भी किया दिया है, लेकिन फिर भी अपने आश्रयदाता नृपतुग को गौरव प्रदान करते हुए लेखक ने सर्वत्र यही लिखा है कि "वह नृपतुग राजा के विचारों को प्रस्तुत करता है।"

[उ] पाँचवें, ग्रन्थ के आरम्भ में 'कविराज-मार्ग' के प्रणेता ने विष्णु-स्तुति दी है। इस स्तुति मे उसने श्लेष अलकार का उपयोग करते हुए राष्ट्र-कूट-नरेश नृपतुग का स्तवन किया है, उसकी उपाधियो तथा गुणो का वर्णन किया है; अर्थात् नृपतुग की विरुदावलि गाई है। इतना ही नही, आगे भी अनेक स्थलो पर नृपतुग की प्रशसा की गई है। उसके सभासदो की प्रशसा भी ग्रन्थ मे कई स्थानो पर की गई है।

ऊपर बताये गये इन तर्कों से यह बात पूरी तरह प्रमाणित हो जाती है कि 'कविराज-मार्ग' का रचयिता स्वयं राष्ट्रकूट-नरेश नृपतुग न था, बल्कि कोई अन्य व्यक्ति था जिसे उसका राज्याश्रय प्राप्त था। स्पष्टतया यह व्यक्ति नृपतुग का कोई सभासद ही रहा होगा।

अब प्रश्न उठता है, इस अज्ञात व्यक्ति का नाम क्या था? और, यह व्यक्ति किस मत को मानने वाला था?

अनेक विद्वानो के मतों का उल्लेख करते हुए श्री जी० सुन्दर रेड्डी ने 'कविराज-मार्ग' के प्रणेता का नाम श्रीविजय मानने पर अधिक जोर दिया है। कहना न होगा, इस ग्रथ के प्रणेता का नाम श्रीविजय हो सकता है, क्योंकि श्रीविजय, नृपतुग का एक प्रिय सभासद था।

किन्तु श्रीविजय जैन मतावलम्बी था, या बौद्ध मत का, या वीर-शैव मत का—यह बात निश्चयात्मक रूप से नही कही जा सकती है। हाँ, 'कवि-राज-मार्ग' मे कुछ ऐसे सकेत मिलते हैं, जिनके आधार पर उसके रचयिता के मत का निर्णय किया जा सकता है। ये सकेत निम्न हैं—

[अ] 'कविराज-मार्ग' में अनेक स्थलों पर श्रुत, परमागम, वीतराग आदि शब्द प्रयुक्त हुये हैं। ये सब जैन मत के पारिभाषिक शब्द हैं।

[आ] दण्डी के अनेक पदो का कन्नड-अनुवाद करते समय उन्हें बदल-कर जैन-धर्मपरक बना दिया गया है।

[इ] यद्यपि ग्रन्थ के आरम्भ मे प्राप्य विष्णु-स्तुति इस तथ्य का खण्डन करती है कि ग्रंथ का रचयिता जैन-मत को मानने वाला था। किन्तु यह दृष्टिकोण सही नहीं है। वस्तुत विष्णु-स्तुति लिखते समय उसने स्पष्टत इस बात का उल्लेख कर दिया है कि यह उसका अपना मत न होकर, नृपतुग का मत है। दो कारणो से यह बात उचित प्रतीत होती है—पहला कारण यह कि ग्रन्थ-लेखक के समय नृपतुग विष्णु-भक्त था, या जैन-धर्म को स्वीकार कर चुका था, यह अभी तक विवाद का विषय बना हुआ है, परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि अगर वह विष्णु-भक्त था, तो भी वह जैन-मत के सिद्धान्तो मे गहरी आस्था व श्रद्धा रखता था। उसके आश्रय मे कई जैन-साहित्यकारों को आश्रय मिला हुआ था। दूसरे, यह भी सभव है कि ग्रन्थकार ने वैष्णव और जैन-धर्मो का परस्पर समन्वय करने का प्रयास किया हो।

कुछ भी हो, उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निम्न निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं—

[1] 'कविराज-मार्ग' की रचना सन् 815 से लेकर 877 ई० के बीच हुयी है। श्री जी० सुन्दर रेड्डी ने इसका रचना-काल सन् 825 ई० माना है।

[2] इस ग्रंथ का रचयिता नृपतुग नही, उसका एक सभासद और आश्रित कवि श्रीविजय था।

[3] श्रीविजय जैन-मत को मानने वाला था।

### 'कविराज-मार्ग' की विशेषताएँ

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, इस ग्रन्थ की रचना सन् 825 ई० में जैन-मतावलम्बी, नृपतुग के आश्रित कवि श्रीविजय द्वारा की गई थी। यह ग्रन्थ कन्नड-साहित्य मे प्रत्येक दृष्टि से अमूल्य है। अत. इसके महत्व को नकारा नहीं जा सकता है।

कन्नड-साहित्य में सर्वाधिक महत्वपूर्ण इस ग्रन्थ की निम्नलिखित विशेषताएँ बतलाई जा सकती हैं—

1. 'कविराज-मार्ग' कन्नड साहित्य का सर्वप्रथम् उपलब्ध रीति ग्रन्थ है जिसमें मुख्य रूप से अलकारो की शास्त्रीय विवेचना की गयी है। अतः इसे हम अलकार-ग्रन्थ भी कह सकते हैं।

2. यह ग्रन्थ सस्कृत के प्राचीन आचार्य दण्डी के 'काव्यादर्श' को आधार मानकर लिखा गया है। अधिक स्पष्ट शब्दों मे कह सकते हैं कि "यह दण्डी के 'काव्यादर्श' का, कुछ हेरफेर के साथ किया गया, कन्नड-अनुवाद है।" दण्डी भामह आदि सस्कृत आचार्यों के अनेक पदो का कन्नड-अनुवाद इस ग्रन्थ मे उपलब्ध है।

3. दण्डी के 'काव्यादर्श' का कन्नड अनुवाद होते हुए भी इसे एक स्वतत्र ग्रथ माना जा सकता है, क्योकि अनेक स्थलो पर यह ग्रथ 'काव्यादर्श' से काफी भिन्नता लिए हुए है। उदाहरण के लिए पहले और दूसरे परिच्छेद का तीन-चौथाई भाग मूल ग्रथ से काफी भिन्न है। इसके अलावा ग्रथ में दिए गये अनेक 'उदाहरणमूलक पद्य' स्वतत्र रचनाएँ हैं। जहाँ कहीं मूल सस्कृत-पद्यो को रूपातरित करके प्रस्तुत किया गया है, वहाँ भी उनका विस्तार कर दिया गया है। हर जगह साहित्य का स्वरूप, उद्देश्य, आबद्धता, साहित्यकार की साधना, शैली-सन्तुलन आदि बातों को समझाने के लिए स्वतत्र एव मौलिक उदाहरणों का उपयोग किया गया है। अतएव इस ग्रथ को अनुवाद न कहकर एक स्वतंत्र और मौलिक रचना माना जा सकता है।

4. ग्रन्थ मे रीति-विषयक् चर्चा के साथ-साथ तद्‌युगीन कर्नाटक देश की भौगोलिक सीमा तथा कन्नड भाषा की विशेषताओं का भी उल्लेख किया गया है। कन्नड देश तथा भाषा की भौगोलिक सीमा-रेखा खींचते हुए कवि ने 'कावेरी से गोदावरी तक'—जैसे शब्दो का प्रयोग किया है। कन्नड देशवासियो के व्यक्तित्व को उद्‌घाटित करने के लिए कवि ने अनेक विशेषणो का प्रयोग किया है। इनमे से कुछ ये हैं—सहज विवेकी, सुभट, काव्य-प्रयोग-परिणतमति, सुन्दर, सुप्रभु, गुणी, अभिमानी, अत्युग्र, गम्भीर चित्त आदि। कन्नड भाषा के तद्‌युगीन कई रूपो—देसी, पुरानी कन्नड आदि—का उल्लेख किया गया है। भाषा की दृष्टि से काव्य मे उपलब्ध अनेक रूपो—चत्ताण, बेदडे, गद्य-पद्य-भेद आदि—का उल्लेख मिलता है।

5. ग्रथ के तीसरे परिच्छेद के 10 पद—143 से 153—उस युग की राजनीतिक स्थिति को स्पष्ट करते हैं।

6 ग्रंथ मे तीन प्रकरण [या परिच्छेद, या अध्याय] हैं—(i) दोषानु-दोष-वर्णन-निर्णय, (ii) शब्दालकार, (iii) अर्थालकार।

7. अनेक स्थलो पर इसके रचयिता की कवित्व प्रतिभा उभरकर सामने आई है। उदाहरण के लिए ग्रंथ के एक पद का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत है जिसमे कवि ने अपनी मातृभाषा और मातृभूमि के गौरव का गान किया है—

"पृथ्वी की इस महापरिधि मे,
और न ऐसा सुन्दर देश,
जिसमें श्रुतिप्रिय मधुमय कन्नड,
देती जन - मन का सन्देश।

पूत सलिल निर्मला नदी-द्वय,
ओर - छोर की प्रतिहारी,
गोदावरी प्रसिद्ध, नयनभर,
दर्शनीय शुचि कावेरी।

किसुवोलल[1] मे सुनो कही,
इस मधुरा का विशुद्ध उपचार,
करो या कि जन-ज्वार उमडती,
कोपण[2] की वीथि में विहार।

आक्कुन्द[3] की प्राचीरों में,
जिसके गीत ध्वनित दिशि-देश,
या कि जहाँ पुळिगेरे[4] सभा मे,
विद्वानों का विभव-विशेष।

इस प्रदेश के नागर-जन सब,
लय-मय, भाषण में निष्णात,
कवि-भावों के आतुर ग्राहक,
जिनमें स्पन्दित निज मनजात।

अध्येता मे ही न, अशिक्षित—
जन में भी यह सहज प्रवृत्ति,

---

1, 2, 3—किसुवोलल, कोपण, आक्कुन्द कन्नड ( कर्नाटक) प्रदेश के प्राचीन नगर।

4—पुळिगेरे ( नगर का नाम ), जहाँ नृपतुग की राजधानी थी।

काव्य-नियम सब जानें-समझें,
चिर-जागृत रसग्राही शक्ति।"*

महत्व

'कविराज-मार्ग' का कन्नड-साहित्य में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। कन्नड-साहित्य के इतिहास के अन्तर्गत इस प्राचीन ग्रंथ को सर्वोपरि स्थान प्राप्त है। इसके लिए निम्नलिखित कारण बताए जा सकते हैं—

1. यह कन्नड-साहित्य के अन्तर्गत उपलब्ध प्राचीनतम ग्रंथ है। इसके पूर्व का अन्य कोई भी ग्रंथ उपलब्ध नहीं होता। इसे 'कन्नड़ का आद्य ग्रंथ' कहा जाता है।

2. दूसरे, इस ग्रंथ के द्वारा नवीं शताब्दी के कन्नड-प्रदेश की भौगोलिक, सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति से सम्बन्धित काफी जानकारी प्राप्त होती है।

3. तीसरे, ग्रन्थ से इस बात के पर्याप्त संकेत प्राप्त होते हैं कि इसके पहले भी कन्नड में बहुत-सा साहित्य लिखा गया था। प्रमाण के लिए ग्रंथ मे दिये गये वे उद्धरण (abstracts) देखे जा सकते हैं जो प्राचीन कन्नड की रचनाओं से लिये गये हैं। इनमें अनेक उद्धरण 'कन्नड रामायण' और 'कन्नड़-महाभारत' से लिये गये हैं।

4. चौथे, इस ग्रन्थ में ग्रंथकार ने अपने पूर्ववर्ती अनेक साहित्यकारों का उल्लेख किया है। इस सन्दर्भ में 'कविराज-मार्ग' से उद्धृत ये दो पद दृष्टव्य हैं—

परम श्री विजय कवी–
श्वर पण्डित, चंद्रलोकपालादिगला।
निरतिशय वस्तु-विस्तर
विरचने लक्ष्यम तदाद्य काव्यक्केन्दुम्॥

और, गद्य-लेखकों से सम्बन्धित यह पद—

विमलोदय नागार्जुन
समेत जयबन्धु दुर्विनीतादिगली।
क्रमदोल निगन्चि गद्या
श्रमपद गुरुता प्रतीतियम् केयकोण्डर॥

5. ग्रंथ के द्वारा तद्युगीन कन्नड़ भाषा के रूपों तथा कन्नड़-काव्य-रूपों के सम्बन्ध मे भी पर्याप्त संकेत मिलते हैं।

* श्री सिद्धगोपाल काव्यतीर्थ की पुस्तक 'कन्नड-साहित्य का नवीन इतिहास' (पृष्ठ 23-24) से उद्धृत।

इन सारी बातो को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि 'कविराज-मार्ग' कन्नड़-साहित्य की अमूल्य एव प्राचीनतम् निधि है।'

## वड्डाराधने

### परिचय

अज्ञात-युग की दूसरी प्रमुख उपलब्ध रचना वड्डाराधने है। जिस प्रकार कन्नड-साहित्य मे पद्य शैली मे लिखित ग्रथ 'कविराज-मार्ग' प्राचीन-तम उपलब्ध रचना है, उसी प्रकार 'वड्डाराधने' प्राचीनतम गद्य ग्रन्थ है। इसी का एक अन्य नाम-पाठ 'वड्डाराधन' भी है।

उल्लेखनीय है, कन्नड-साहित्य मे लगभग पाँचवीं शताब्दी से शिला-लेख मिलते हैं। सबसे प्राचीन एवं उपलब्ध शिलालेख ह्ल्मिडी का शिला-लेख है। विद्वानो ने इस शिलालेख का काल सन् 450 ईस्वी माना है। इस शिलालेख में यह शब्द खुदे हुये मिलते हैं: 'कदम्ब नामक एक राजा ने विजअरस नामक व्यक्ति को दो गाँव पुरस्कार मे दिये।' उल्लेखनीय है, यह शिलालेख गद्य शैली मे है, पद्य में नहीं। किन्तु इस शिलालेख के बाद कोई भी ऐसी रचना प्राप्य नहीं है जो पूर्ण रूप से गद्य मे लिखी गई हो। पाँचवीं शताब्दी से नवीं शताब्दी तक जो भी साहित्य लिखा गया—और जिसकी केवल सूचना-मात्र ही मिलती है—वह सब गद्य-पद्य-मिश्रित शैली मे लिखा गया था। साथ ही यह गद्य भी इतना जटिल और क्लिष्ट शैली में है कि अधिकाश विद्वान् इस गद्य को भी पद्य ही मानने पर सहमत हैं। उनकी दृष्टि में इस काल मे लिखित गद्यांशों का अर्थ पूरी तरह समझ पाना लोहे के चने चबाने-जैसा कठिन कार्य है।

फिर भी, इस विवरण से यह बात भली प्रकार स्पष्ट हो जाती है कि कन्नड-साहित्य के आरम्भिक काल में ही उसमें प्रचुर मात्रा मे गद्य-साहित्य उपलब्ध होता है—अर्थात् कन्नड-साहित्य का जन्म अन्य दूसरी भाषाओं के साहित्य की तरह पद्य, याने कविता, से न होकर गद्य से हुआ है। और यह सचमुच एक विचित्र, विलक्षण तथ्य है जिससे इन्कार नही किया जा सकता। इस तथ्य का प्रमाण है, पूर्णतया गद्य-शैली मे लिखित प्राचीनतम कन्नड-ग्रथ 'वड्डाराधने'।

### रचनाकाल

'वड्डाराधने' ग्रथ की रचना कब और किसने की थी, इस विषय पर अनेक मत मिलते हैं। अधिकांश विद्वान् यह मानते हैं कि इस ग्रन्थ का

लेखक शिवकोट्याचार्य नामक एक प्रसिद्ध जैन-साधु था। किन्तु इसकी रचना कब हुयी थी, यह अभी तक अनिश्चित है।

श्री गोविन्द जी पै के मत मे यह ग्रथ छठी शताब्दी के बाद का नहीं है। श्री डी० एल० नरसिहाचार्य के मतानुसार, इसकी रचना सन् 900 1070 ई० के बीच हुयी होगी। श्री उपाध्ये जी इसे 11 वी शताब्दी मे लिखित मानते हैं। प्रो० रगनाथ मुगलि ने इसका रचना-काल सन् 898-1403 ई० के बीच मे माना है। श्री सिद्धगोपाल काव्यतीर्थ इसे सन् 825 ई० मे लिखित मानते हैं।

स्पष्टत: 'वड्डाराधने' का रचना-काल विद्वानो मे अभी भी विवाद का विषय बना हुआ है। किन्तु अगर इस ग्रन्थ के लेखक वास्तव मे शिवकोट्याचार्य ही हैं, जैसा कि प्राय: सभी मानते हैं, तो यह समस्या स्वय हल हो जाती है; क्योंकि शिवकोट्याचार्य का काल विद्वानो ने नवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध और दसवी शताब्दी का पूर्वार्द्ध—अर्थात् सन् 850 से 950 ई०—के बीच में माना है। इस मान्यता के अनुसार, और जैसा कि इसी अध्याय के आरम्भ मे दी गई सारिणी से भी स्पष्ट है, 'वड्डाराधने' ग्रन्थ का रचनाकाल सन् 925 ई० के आसपास ही माना जाना चाहिए।

विशेषताएँ

शिवकोट्याचार्य लिखित 'वड्डाराधने' कन्नड-साहित्य की दूसरी अमूल्य निधि है। इस महत्वपूर्ण प्राचीनतम ग्रन्थ की निम्नलिखित विशेषताएँ उल्लिखित की जा सकती हैं—

1 पूर्ण रूप से गद्य-शैली मे लिखी गयी यह एक कथामूलक सग्रह रचना है जिसमे 19 जैन-धर्म से सम्बन्धित कथायें सगृहीत हैं।

2 यह कन्नड का स्वतन्त्र एव मौलिक ग्रन्थ नही है। इस सम्बन्ध मे विद्वानो के निम्न दो मत उल्लेखनीय हैं—

[ अ ] 'वड्डाराधने' की रचना प्राकृत भाषा के जैन ग्रन्थ 'भगवती-आराधन' के आधार पर की गई है। स्मरणीय है, जैन-धर्म के अन्तर्गत ज्ञान, दर्शन, चरित्र और तप-साधना से सम्बन्धित ग्रन्थो को 'आराधन ग्रन्थ' कहा जाता है।

[ आ ] दूसरे मत के अनुसार इस ग्रन्थ की रचना प्रसिद्ध गुप्तवशी सम्राट् समुद्रगुप्त के प्रशस्ति-लेखक, सस्कृत-कवि हरिषेण रचित 'कथाकोष' के आधार पर की गई है। हरिषेण लिखित समुद्रगुप्त की प्रशस्ति इलाहाबाद मे पाये गये अशोक-शिलालेख पर खुदी हुयी है।

'वड्डाराधने' के आधार-ग्रन्थ से सम्बन्धित यह दूसरी मान्यता ही अधिक सही प्रतीत होती है। कारण, कि (i) 'कथाकोष' मे जैन-धर्म की 19 कथाओ का सकलन मिलता है, और 'वड्डाराधने' मे भी 19 ही कथाएँ हैं; (ii) दोनो ही ग्रन्थो मे सकलित कथाओ का क्रम एक ही है। इसके अलावा 'वड्डाराधन' शब्द भी मूलत. प्राकृत भाषा का शब्द है।

अतएव यह कहा जा सकता है कि इस ग्रन्थ का सस्कृत से कन्नड़ मे अनुवाद किया गया है। इसका आधार-ग्रन्थ हरिषेण कृत 'कथाकोष' है, किन्तु शीर्षक प्राकृत भाषा से लिया गया है।

3 ग्रन्थ की गद्य-शैली कन्नड-साहित्य मे अपूर्व है। लेखक ने सम्भवत. सस्कृत और कन्नड भाषा का सम्मिश्रण एव परम्परागत तथा लोकप्रिय देशज [ अर्थात् देसी ] शैली के समन्वय-जैसी बातो को अपना मूल उद्देश्य माना था। और वास्तव मे इस ग्रन्थ मे कन्नड की देसी और सस्कृत की परम्परागत शैली का अद्भुत समन्वय किया गया है।

4. भाषा की दृष्टि से भी इस ग्रन्थ मे पर्याप्त विचित्रता देखने को मिलती है। इसमे (i) सस्कृत और कन्नड के शब्दो का मिश्रण मिलता है। (ii) अनेक शब्द प्राचीन कन्नड भाषा के मिलते हैं। (iii) साथ ही बहुत-से शब्द पम्पयुगीन 11वी शताब्दी की कन्नड भाषा के भी ग्रन्थ मे प्रयुक्त हुये हैं।

### महत्व

ऊपर बतायी गई विशेषताओ को ध्यान में रखकर कन्नड-साहित्य के अन्तर्गत 'वड्डाराधने' का महत्व सरलतापूर्वक आँका जा सकता है।

यह एक वास्तविकता से भरा सत्य है कि भारत की सभी भाषाओं मे प्राचीनतम गद्य-ग्रन्थ 'वड्डाराधने' है जिसकी रचना का श्रेय कन्नड भाषा को प्राप्त है। 'वड्डाराधने' कन्नड-साहित्य की एक गौरवपूर्ण उपलब्धि है। डॉ० रगनाथ मुगलि के मतानुसार, "'वड्डाराधने' कन्नड-साहित्यके इतिहास मे चिरस्मरणीय विशिष्टतापूर्ण रचना है जो आज भी कन्नड के गद्य-साहित्य का आदर्श ग्रन्थ है, और आगे भी रहेगा।"

## अज्ञात युगीन अन्य साहित्यकार

ऊपर 'कविराज-मार्ग' और शिवकोट्याचार्य लिखित 'वड्डाराधने' की यत्किंचित विस्तृत चर्चा की गई है। ये दोनो ही कन्नड-ग्रन्थ उपलब्ध हैं। किन्तु कन्नड-साहित्य के इस अज्ञात-युग मे अनेक साहित्यकार ऐसे भी हुए हैं जिनका साहित्य तो आज नही मिलता, परन्तु जिनका उल्लेख 'कविराज-

मार्ग' अथवा अन्यत्र किया गया है। इन उल्लिखित साहित्यकारों में से कुछ प्रमुख साहित्यकारो का सक्षिप्त परिचय नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

## दुर्विनीत

कर्नाटक मे साहित्य-रचना वही की मातृभाषा कन्नड मे आरम्भ करने का श्रेय विद्वानो द्वारा सुप्रसिद्ध गगवशी, परम विद्वान् राजा दुर्विनीत को प्रदान किया गया है। इस दृष्टि से दुर्विनीत कर्नाटक अथवा कन्नड़-साहित्य का जनक था। दुर्विनीत का जिक्र सबसे पहले 'कविराज-मार्ग' मे इस ग्रन्थ के रचयिता द्वारा किये गये, अपने पूर्ववर्ती गद्य-लेखको के उल्लेख से सम्बन्धित पद्य† मे प्राप्त होता है। जिसके अनुसार वह कन्नड का गद्य-लेखक था। डॉ. रगनाथ मुगलि के शब्दो मे,

"One of the prose writers mentioned there [in 'Kaviraj Marg'] in, is Durvinit who is identified with the 'great Ganga King' of 600 A. D., and who is known to have been a verstile scholar and a gifted author from the epigraphist."

अर्थात् दुर्विनीत का राज्यकाल सन् 600 ईस्वी है।

दुर्विनीत बहुमुखी पाण्डित्य-प्रतिभा सम्पन्न बडा प्रतापी राजा था। गग राजाओ के शिलालेखो मे उसकी विद्वत्ता और ग्रन्थो का उल्लेख मिलता है, किन्तु दुर्भाग्यवश उनमे से एक भी ग्रन्थ आज उपलब्ध नही है।

### उल्लिखित ग्रन्थ

दुर्विनीत सस्कृत और कन्नड, दोनो ही भाषाओ का पण्डित था। उसने दोनो ही भाषाओं मे साहित्य की रचना की थी। दुर्विनीत द्वारा लिखे गये निम्नलिखित ग्रन्थो का उल्लेख मिलता है—

1 'बृहत्कथा' का संस्कृत अनुवाद—'बृहत्कथा' मूल रूप से पैशाची भाषा* में लिखी गई थी। इसका लेखक गुणाढ्य था। दुर्विनीत ने इस ग्रन्थ का अनुवाद सस्कृत भाषा मे किया था। बाद मे इसी ग्रन्थ के सस्कृत-अनुवाद तीन अन्य लेखकों बुध स्वामी, क्षेमेन्द्र तथा सोमदेव द्वारा क्रमश सन् 80, 1100 एव 1100 ईस्वी मे किये गये। कहते हैं, दुर्विनीत ने इसी ग्रन्थ को

† देखिये, इसी पुस्तक मे पृष्ठ 30।

* 'पैशाची' विभिन्न प्राकृत भाषाओ मे से एक महत्वपूर्ण प्राकृत है। इसका क्षेत्र सिन्ध प्रदेश था। कुछ लोगों के मतानुसार पैशाची का व्यवहार भारत के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रो में होता था।

कन्नड मे अनुवादित किया था ; और इसी से कर्नाटक में 'पचतंत्र' की कथा-परम्परा आरम्भ हुयी थी। इस ग्रन्थ का नाम कुछ लोगों द्वारा 'वड्डकथा' बतलाया जाता है जो आज प्राप्त नही है।

2. किराताजु नीय' के पन्द्रहवें सर्ग की टीका—यह दुर्विनीत लिखित दूसरा तथाकथित ग्रन्थ है। 'किरातार्जुनीय' सस्कृत का प्रसिद्ध महाकाव्य है। महाकवि भारवि द्वारा इस ग्रन्थ की रचना की गई थी। 'अवन्ती सुन्दरी-कथासार' नामक ग्रन्थ मे इस बात का उल्लेख मिलता है कि महाकवि भारवि गग-नरेश दुर्विनीत के राज्याश्रित कवि थे। किन्तु इस बात के सत्यासत्य का निर्णय निश्चित तौर पर अभी तक नही किया जा सका है। 'किरातार्जुनीय' का 15वां सर्ग शब्दालंकारो से परिपूर्ण चित्रकाव्य है जिसमे शब्दालकारो के विभिन्न भेदो तथा उपभेदो के अनुपम उदाहरण देखे जा सकते हैं—मानो महाकवि भारवि ने इस सर्ग को इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर लिखा था। दुर्विनीत ने इसी सर्ग की टीका लिखी थी। अतएव यह ग्रन्थ दुर्विनीत द्वारा लिखा गया एक भाष्य-ग्रन्थ है। किन्तु यह विषय अभी तक विवाद बना हुआ है कि यह भाष्य-ग्रन्थ ( टीका ) सस्कृत मे लिखा गया था, अथवा कन्नड मे।

3. शब्दावतार—यह दुर्विनीत का तीसरा उल्लिखित व्याकरण-ग्रन्थ है। कहते हैं, दुर्विनीत के गुरु सुप्रसिद्ध व्याकरण-आचार्य पूज्यपाद मे पाणिनि-सूत्र-वृत्ति और आचार्य जैनेन्द्र के व्याकरण-ग्रन्थो पर 'शब्दावतार' नामक एक भाष्य ग्रन्थ लिखा था। दुर्विनीत कृत 'शब्दावतार' इसी भाष्य-ग्रन्थ पर लिखा गया भाष्य था। किन्तु यह भाष्य भी सस्कृत मे लिखा गया था, अथवा कन्नड मे—इसका कोई पता नहीं चलता।

इस प्रकार उक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि दुर्विनीत केवल उद्भट विद्वान् ही नहीं था, वह महान् कवियो का आश्रयदाता और स्वय एक प्रतिभाशाली लेखक भी था।

## असग

कन्नड अज्ञात काल का दूसरा प्रमुख कवि असग था। असग का उल्लेख 10वी सदी के कवि पोन्न रचित 'शान्तिपुराण' में मिलता है। इस ग्रन्थ मे पोन्न ने आत्म-प्रशसा करते हुए "कन्नड कविता के क्षेत्र मे स्वयं को असग से सौ गुना अधिक प्रतिभाशाली" बतलाया है। स्पष्टतया पोन्न से पहले असग नामक कोई प्रसिद्ध कन्नड-कवि हुआ होगा। पोन्न के अतिरिक्त बाद के कई कवियो ने भी असग नामक पूर्ववर्ती कवि की प्रशंसा अपने

ग्रन्थो मे की है। प्रसिद्ध वैयाकरण केशिराज के ग्रन्थ मे असग का नाम प्रमाणभूत कवि के रूप मे मिलता है।

आचार्य जयकीर्ति के ग्रन्थ 'छन्दोनुशासन' मे असग द्वारा लिखे गये कन्नड़ कुमारसम्भव काव्य का उल्लेख मिलता है जो स्पष्टतः महाकवि कालिदास के सुप्रसिद्ध महाकाव्य 'कुमारसम्भवम्' का कन्नड़-अनुवाद रहा होगा। असग रचित अन्य कन्नड-ग्रन्थो का कोई उल्लेख नही मिलता।

असग लिखित दो सस्कृत काव्य-ग्रन्थ मिलते हैं—वर्धमान-चरित्र और शान्ति-पुराण। सम्भवत. 'वर्धमान-चरित्र' असग की अन्तिम रचना रही होगी। इस ग्रन्थ के द्वारा असग के जीवन का थोडा-सा परिचय प्राप्त होता है। इस ग्रन्थ मे तीन स्थलों पर असग से सम्बन्धित सूचनाएँ प्राप्त होती हैं—

(1) एक स्थान पर असग ने लिखा है . "वर्धमान-चरित्र की रचना मैंने मौद्गल्य पर्वत पर सम्पत् नामक श्राविका [ जैन-भिक्षुणी ] के आश्रय मे विक्रम् सम्वत् 910 [ लगभग सन् 853 ई० ] मे की।··" (ii) एक अन्य स्थल पर असग के ये शब्द, " ·मैंने जैन-धर्मोपदेशक आठ ग्रन्थों का प्रणयन किया", इस तथ्य को पूरी तरह स्पष्ट कर देते हैं कि असग के सस्कृत और कन्नड़-ग्रन्थों की कुल सख्या आठ है। (iii) ग्रन्थ के आरम्भ में ही लिखा है, "श्री असगभूपकृते वर्धमानचरिते"—यह वाक्य इस बात का प्रमाण है कि असग नामक यह कवि किसी स्थान का राजा रहा होगा।

कुछ विद्वानो का यह भी मत है कि सम्भवत पोन्न ने असग कृत 'शान्ति-पुराण' को पढकर ही बाद मे अपने 'कन्नड शान्ति-पुराण' की रचना की होगी।

## गुणनन्दि

इस युग का तीसरा महान् विद्वान्-लेखक गुणनन्दि था। गुणनन्दि का उल्लेख श्रवणबेळगोळा से प्राप्त शिलालेखो में मिलता है। इन लेखो के अनुसार गुणनन्दि एक महान् "यतीश्वर-पण्डित, चारित्रिक-चक्रेश्वर, तर्क-व्याकरण आदि शास्त्रों मे निपुण, साहित्य-विद्यापति, सव्यसाची" व्यक्ति था। कहते हैं, प्रसिद्ध कन्नड कवि आदि पम्प का गुरू देवेन्द्र इसी गुणनन्दि का शिष्य था। इस आधार पर गुणनन्दि का काल 900 ई० ठहरता है। बाद के लेखको ने भी बडे आदरपूर्वक अपनी रचनाओ में इसका उल्लेख किया है। इसने जैनेन्द्र रचित व्याकरण की सस्कृत-टीका लिखी थी। कन्नड मे लिखित इसके ग्रन्थो की कोई जानकारी नहीं मिलती है।

## गुणवर्मा

गुणवर्मा इस युग का अन्तिम महत्वपूर्ण कवि माना जाता है। विद्वानो के अनुसार यह 900 ई० सन् में जीवित था।

इसके द्वारा लिखे हुए दो ग्रन्थो का उल्लेख मिलता है—शूद्रक तथा हरिवश। ये दोनो ही ग्रन्थ अप्राप्य हैं। दोनो की रचना कन्नड मे हुयी थी। उल्लेखनीय है कि गुणवर्मा जैन-श्रावक था। उस समय के जैन-लेखको मे प्रचलित एक परम्परा के अनुसार जैन लोग क्रमिक रूप मे दो प्रकार के काव्य-ग्रन्थों की रचना किया करते थे पहला काव्य लौकिक कथा—अर्थात् किसी व्यक्ति-विशेष का जीवन-चरित्र—का आधार लिये होता था; और दूसरा काव्य-ग्रन्थ पौराणिक—अर्थात् पुराणो में वर्णित किसी कथा—आधार पर होता था।

गुणवर्मा ने भी इसी परम्परा का पालन करते हुए क्रमश अपने दोनों ग्रन्थो की रचना की थी। 'शूद्रक' लौकिक काव्य-ग्रन्थ था जिसके 41 पद तथा एक गद्याश 'काव्यसार' नामक एक ग्रन्थ तथा 'सूक्ति-सुधार्णव' मे सकलित हैं। फिर भी उनके आधार पर 'शूद्रक' के कथानक का कोई आभास नहीं मिलता। कुछ लोगो के मतानुसार, 'शूद्रक' मे पुराणो मे प्रसिद्ध राजा शूद्रक की कथा थी। किन्तु इस बात के भी कुछ प्रमाण मिले हैं कि गुणवर्मा ने शूद्रक की आड में अपने आश्रयदाया गग-नरेश एरेयप्पा का चरित्र लिखा है। वस्तुत शूद्रक को जिन उपाधियों से विभूषित किया गया है, उनसे स्वय एरेयप्पा विभूषित था। एरेयप्पा सम्बन्धी कुछ अन्य ऐतिहासिक घटनाओ के सकेत भी इन सकलित पदों में ध्वनित होते हैं। अतएव कहना न होगा, अगर 'शूद्रक' सम्बन्धी यह मान्यता सच है तो गुणवर्मा अपने परवर्ती कवियो पम्प और रन्न के उन लौकिक-काव्यों की रचना-प्रणाली का जन्मदाता या जिनमे नायक की आड में अपने आश्रयदाता राजाओं की प्रशसा की गई है।

'हरिवंश' एक पौराणिक काव्य है जिसका एक पद उक्त दोनो ग्रन्थो मे सकलित मिलता है। इस ग्रन्थ मे जैन तीर्थंकरो मुनि सुव्रतनाथ तथा नेमिनाथ के जन्मदाता हरिवश की जीवन-कथा वर्णित थी।

गुणनन्दि के ये दोनो ही काव्य उच्चकोटि के चम्पू काव्य-ग्रन्थ थे।

# 4. कन्नड़-साहित्य का दूसरा युग : पम्प-युग

## परिचय

कन्नड-साहित्य मे दूसरे युग को 'पम्प-युग' अथवा 'जैन-युग' के नाम से पुकारा जाता है। इस युग का नामकरण 'जैन युग' इसलिए किया गया, क्योकि इस युग के अधिकाश साहित्यकार जैन-मतावलम्बी थे। उन्होने अधिकतर जैन-धर्म और भक्ति-विषयक साहित्य की रचना की थी। किन्तु कुछ विद्वानो ने धर्म के नाम पर साहित्यिक-युग को पुकारने की मान्यता को उचित नही माना। उन्होने इस सम्बन्ध में अनेक आपत्तियाँ उठाते हुए युग के सबसे महान् और कन्नड के सर्वसम्मत आदि-कवि पम्प के नाम पर इस युग को 'पम्प-युग' पुकारना अधिक उचित समझा। कन्नड-साहित्य के इतिहास मे अब इस दूसरे युग के लिए यही नाम सर्वाधिक प्रचलित है।

पम्प-युग का समय सन् 900 ई० से सन् 1150 ई० तक माना जाता है। ढाई सौ वर्षों के इस दीर्घकाल मे जैन-धर्म से सम्बन्धित काफी अच्छा भक्ति-साहित्य लिखा गया।

## कर्नाटक प्रदेश और जैन-धर्म

सारे भारत मे एकमात्र कर्नाटक प्रदेश ही एक ऐसा प्रदेश है जहाँ जैन-धर्म सबसे अधिक फला-फूला। ऐतिहासिक तथ्यो के अनुसार, दक्षिण भारत मे जैन-धर्म का प्रचार ईसा से कई शताब्दी पूर्व आरम्भ हो गया था। कहते हैं, उज्जयिनी निवासी भद्रबाहु नामक एक जैन-साधु उत्तरी भारत मे एक दीर्घकालिक अकाल की भविष्यवाणी करके अपने अनुयायिओ के साथ दक्षिण

की ओर चल दिये थे। उन्होंने मैसूर के निकट श्रवण-वेळगोळा नामक स्थान को अपना आवास बनाया जो आज भी जैनियो का प्रसिद्ध तीर्थ स्थान माना जाता है। भद्रबाहु जैन-धर्म की दिगम्बर-शाखा के अनुयायी थे और 'श्रुत-केवलिन'—अर्थात् जैन शास्त्रो का सम्पूर्ण ज्ञान रखने वाले छह आचार्यों में से एक आचार्य—के रूप मे मान्य थे। एक प्रसिद्ध जैन-किंवदन्ती के अनुसार, भद्रबाहु सुप्रसिद्ध मौर्य-सम्राट् चंद्रगुप्त मौर्य [जिसका राज्यकाल 297 B. C. तक है] के समकालीन थे। किन्तु कुछ इतिहासकारो के मत मे, भद्रबाहु का काल ईसा पूर्व पहली शताब्दी है। भद्रबाहु का दक्षिण-प्रवास, जो जैन-धर्म मे 'दिगम्बर-प्रवास' कहा जाता है, इसी शताब्दी की महत्वपूर्ण घटना है।

भद्रबाहु के श्रवण-वेळगोळा में जाकर बस जाने के उपरान्त दक्षिण-भारत मे जैन-धर्म का बहुत प्रचार हुआ। जैन-धर्म की उन्नति मे कर्नाटक के राजाओ का बहुत बडा योगदान रहा है। ईस्वी सन् के आरम्भ से लेकर लगभग 1500 ई० तक कर्नाटक के अधिकाश राजा जैन-मतावलम्बी थे। तलकाड के सभी गंग-नरेश, मान्यखेट राष्ट्रकूट-वशी, तथा कलचुरि और होयसल वश के सभी आरम्भिक राजा जैन-मतावलम्बी थे। कदम्ब-वशी तथा आरम्भिक चालुक्य-वशी नरेश यद्यपि वैदिक-धर्म को मानने वाले थे, तथापि उनके राज्यो मे अनेक जैन-लेखकों को प्रश्रय मिला हुआ था। तात्पर्य यह, कि दक्षिण-भारत मे सर्वत्र जैन-विद्वान् फैले हुए थे।

किन्तु सन् 1000 ई० (लगभग) से दक्षिण भारत में गहराई तक अपनी जड़ें जमाये रखने वाला जैन-धर्म डगमगाने लगा था। उसका महत्व शनै.शनै' कम होने लगा था। प्रभाव मे इस कमी के कई कारण थे, जिनमें से कुछ प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

1 9वीं तथा 10वीं शताब्दी मे शकराचार्य का निरन्तर बढ़ता हुआ जन-प्रभाव।

2 सन् 1004 ई० में गग-साम्राज्य का पतन और जैन-धर्म के कट्टर विरोधी चोलो की विजय। एक ऐतिहासिक तथ्य के अनुसार, राजेन्द्र चोल नामक नरेश ने पुळिगेरे तक के प्रदेशो को जीतकर सारे जैन-मन्दिरो को ध्वस्त कर दिया था।

3 सन् 1100 ई० के आसपास होयसल वशी राजा बल्लाल ने जैन-धर्म का परित्याग कर वैष्णव-धर्म स्वीकार कर लिया तथा अपना नया नाम विष्णुवर्धन रखा।

4 सन् 1160 ई० मे बसवेश्वर के नेतृत्व मे, कल्याण में, वीर-शैव धर्म का पुनर्अभ्युदय तथा 1190 ई० मे कलचुरि-वश का पतन।

5. 13वी शताब्दी मे मध्वाचार्य के नेतृत्व मे वैष्णव धर्म का अभ्युदय।

6. 14वी शताब्दी मे वैदिक-धर्म के प्रबल समर्थक व सरक्षक विजयनगर-साम्राज्य का उत्थान।

7. 16वी शताब्दी मे महाप्रभु चैतन्य से प्रभावित होकर कर्नाटक भर में कृष्ण-भक्ति की मोहक लहर।

तात्पर्य यह, कि 10वी शताब्दी के बाद से 16वीं शताब्दी तक का समय दक्षिण मे जैन-धर्म के लिए 'अस्तित्वमूलक सघर्ष' का काल रहा है और अन्तोगत्वा इसका पूर्ण पतन हो गया, किन्तु इतना होने पर भी, जैन-विद्वानों ने राज्याश्रय खोने के बाद भी ग्रथो की रचना की।

## कन्नड़ में जैन-साहित्य

यह एक निर्विवाद सत्य है कि जैन-धर्म के उत्थान मे जिस प्रकार कर्नाटक प्रदेश के राजवशों ने अपना अतुलनीय योगदान दिया है, ठीक उसी प्रकार कन्नड-साहित्यकारो ने भी जैन-भक्ति-साहित्य लिखकर जैन-धर्म को अभूतपूर्व देन दी है। कन्नड मे लिखा गया जैन-साहित्य इतनी अधिक प्रचुर मात्रा मे है जितना शायद ही, प्राकृत भाषा को छोडकर, किसी अन्य भाषा मे उपलब्ध हो। इतना ही नहीं, कन्नड का यह जैन-साहित्य हर दृष्टि से उत्तम है। कुछ आलोचको के मत मे तो, "कन्नड मे लिखा गया भक्तिमूलक जैन-साहित्य उसकी सर्वोत्तम निधि है।"

'वास्तव मे कन्नड का यह जैन-साहित्य इतनी उत्कृष्ट कोटि का है कि उसके आधार पर हम इन ढाई सौ वर्षों [ सन् 900-1150 ई० ] तक के युग को 'कन्नड़-साहित्य का स्वर्ण-युग' कहते हैं। इस युग के साहित्य की प्रमुख विशेषताओ का अध्ययन आगे करेंगे। यहाँ इस प्रश्न पर विचार किया जायेगा कि जैन धर्म के भक्ति-साहित्य का आरम्भ कब हुआ था ?

श्री आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये द्वारा सम्पादित 'श्रीरामचन्द्र जैन शास्त्रमाला' शीर्षक पुस्तक मे इस तथ्य के सकेत मिलते हैं कि 8वीं अथवा 9वीं शताब्दी मे कर्नाटक-प्रदेश मे जोइंदु नामक एक प्रसिद्ध जैन-धर्म के परम मर्मज्ञ, विद्वान् सन्त हुए थे। जोइदु द्वारा दो ग्रन्थों की रचना की गई थी— 'परमात्म-प्रकाश' और 'योगसार'। ये दोनों ही ग्रथ श्री उपाध्ये द्वारा सम्पादित ग्रथ में प्रकाशित हो चुके हैं। इसी जैन-सन्त जोइदु के बारे मे हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक डॉ० (आचार्य) हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है—

"वस्तुत जैन साधक जब कहता है कि यह जीव परमात्मा है, शरीर मे ही उसका वास है, वह केवल जड है जो शास्त्रो को पढता हुआ भी इस बात को नही समझ सकता, तब वह शैव या वैष्णव-साधको की ही भाषा मे बोलता दिखाई देता है—

"सत्थु पढतु वि होइ जडु, जो ण हणेइ वियप्पु ।
देहि वसंतु णवि णिम्मलउ, णवि मण्णइ परमप्पु ॥

"इसी बात को वह साधक आगे भी कहता है :

"चेल्ला चेल्ली पुत्थियहिं
नूसड मूडु णिभन्तु ।
एवह लज्जइ णाणियउ
बँधइ हेउ मुणन्तु ॥

"अर्थात्—देह मे ही जीव-रूपी परमात्मा रहता है, इस सत्य के आनन्द का जो व्यक्ति रसास्वादन नही करता, वह जड है। आत्मा इसी आनन्द का अनुभव परम प्राप्तव्य को पाकर कर लेता है। [और,] यह जो चेले-चेलियो तथा पुस्तको पोथियों) का समूह है, इनके चक्कर मे फँसा हुआ आत्मा निस्सन्देह खुश होता है, लेकिन जो ज्ञानी पुरुष है, वह इन सबसे लज्जित होता है, क्योंक यह मोह है, और मोह परमपद (मोक्ष) को पाने मे बाधक बनता है।"

इस उद्धरण से यह पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है कि कन्नड के बाद के जैन-साहित्यकारों पर जोइ दु के विचारो का बहुत अधिक प्रभाव पडा था। वास्तव मे जैन-भक्ति-साहित्य का आरम्भ मूल रूप मे जोइदु से ही माना जाना चाहिए।

जैन-साहित्य का उत्थान एव विकास सन् 900 ई० से माना जाता है। इस समय से सन् 1150 ई० तक अनेकानेक साहित्यकारो ने अपना अमूल्य योगदान कन्नड साहित्य को दिया है।

## पम्प-युगीन प्रमुख रचनायें एवं साहित्यकार

पम्प-युग [सन् 900 से 1150 ई०] मे जिन प्रमुख साहित्यकारों ने कन्नड साहित्य का अपना बहुमूल्य योगदान दिया है, उनके नाम, रचनाएँ, काल, साहित्यकारो को आश्रय देने वाले राजाओ के नाम, रचनाओ का स्वरूप आदि को सकेत रूप में आगे दी जा रही सारिणी के बतौर सक्षेप मे उल्लिखित कर सकते हैं। इन साहित्यकारो तथा इनके प्रमुख ग्रथो का परिचय सारिणी के बाद दिया जायेगा।

| क्रम संख्या | साहित्यकार का नाम | रचनायें | स्वरूप | आश्रय देने वाला राजा | रचनाकाल | मत |
|---|---|---|---|---|---|---|
| 1 | पम्प | (1) आदि पुराण<br>(11) विक्रमार्जुन विजय उर्फ पम्प-भारत | चम्पू काव्य<br>,, | अरि केसरी [चालुक्य वशी] | सन् 940 ई० | जैन मतावलम्बी |
| 2 | पोन्न | (1) शान्ति पुराण<br>(11) भुवनैक रामाभ्युदय [रामकथा]<br>(111) जिनाक्षर पुराण | ,,<br>,,<br>? [केवल 39 पद] | कृष्ण तृतीय [गंग वशी] | 940 | जैन |
| 3 | चाउण्डराय | चाउण्डराय-पुराण | गद्य ग्रन्थ | राचमल्ल [गग नरेश] | 975 | जैन |
| 4 | नागवर्मा | (1) छन्दोम्बुधि<br>(11) कर्नाटक कादम्बरी | छन्द शास्त्र<br>चम्पू काव्य | रक्कस वा चन्द्र (?) [गग वशी] | 990 (लगभग) | ब्राह्मण |
| 5 | रन्न | (1) साहस भीम विजय अथवा, गदा-युद्ध<br>(11) परशुराम चरित<br>(111) चक्रेश्वर चरित | चम्पू काव्य<br>?<br>? | चालुक्य वशी नरेश तैलप तथा सत्य | 990 | जैन |

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | | (iv) अजित पुराण<br>(v) रन्न कन्द | चम्पू काव्य<br>कन्द पद | | | |
| 6 | दुर्गसिंह | पचतन्त्र | गद्य-प्रधान<br>चम्पू ग्रंथ | जयसिंह जगदेकमल्ल<br>[चालुक्य वंशी] | 1030 | ब्राह्मण |
| 7 | चन्द्रराज | मदन तिलक | चम्पू [कामशास्त्र] | चालुक्य वंशी नरेश<br>जयसिंह जगदेक मल्ल<br>का महासामन्त रेच | 1040<br>(लगभग) | ब्राह्मण |
| 8 | श्रीधराचार्य<br>[आचार्य श्रीधर] | (i) जातक तिलक<br>(ii) चन्द्रप्रभ चरित | ज्योतिष शास्त्र<br>[काव्य-ग्रंथ]<br>चम्पू ग्रंथ (?) | आहवमल्ल<br>(सोमेश्वर प्रथम)<br>[चालुक्य वंशी] | 1050 | जैन |
| 9 | शान्तिनाथ | सुकुमार चरित | चम्पू ग्रंथ | ? | 1070<br>(लगभग) | जैन |
| 10 | आचार्य नागवर्मा (प्रथम) | चन्द्र चूडामणि शतक | 100 पदों का काव्य | राजा भुवनैकमल्ल का<br>दण्डनायक उदयादित्य | 1070<br>(लगभग) | ब्राह्मण |
| 11 | नागचन्द्र उर्फ<br>अभिनव पम्प | (i) मल्लिनाथ पुराण<br>(ii) 'रामचन्द्र चरित-पुराण'<br>उर्फ 'पम्प रामायण' | चम्पू ग्रंथ<br>चम्पू ग्रंथ | बल्लाल प्रथम<br>[होयसल नरेश] | 1100<br>(लगभग) | जैन |

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| 12 | कन्ति [जैन-श्राविका] | कन्ति और पम्प की समस्यायें | काव्य (पद्य) | बल्लाल प्रथम | (लगभग) 1100 [?] | जैन |
| 13 | नयसेन उर्फ नयनसेन | धर्मामृत | गद्य-प्रधान चम्पू | ? | 1112 | जैन |
| 14 | ब्रह्मशिव | (i) समय-परीक्षा<br>(ii) त्रैलोक्य चूडामणि स्तोत | पद्य<br>पद्य | ? | (लगभग) 1150 | जैन |
| 15 | कर्णपार्य | नेमिनाथ पुराण | चम्पू ग्रंथ | लक्ष्मणराज | " | " |
| 16 | नागवर्मा (द्वितीय) | (i) भाषा-भूषण<br>(ii) काव्यावलोकन<br>(iii) वस्तु-कोष | वैयाकरणिक सूत्र ग्रंथ<br>रीति ग्रंथ<br>कोष ग्रंथ (सम्पादन) | जगदेकमल्ल [चालुक्यवंशी] | " | " |
| 17 | सुमनोबाण | जैन-पुराण (?) | — | नरसिंह [होयसल वंशी] | " | " |
| 18 | चावुण्डराय (द्वितीय) | लोकोपकार | पद्य | — | " | ब्राह्मण |
| 19 | जगद्दल सोमनाथ | कर्णाटक कल्याणकारक | " | — | " | " |

इस सारिणी से पहली मुख्य बात तो यह स्पष्ट होती है कि सन् 900 ई० से 1150 ई० तक के ढाई सौ वर्षों के दीर्घकाल में प्रमुख रूप से 19 साहित्यकारों ने कुल 32 ग्रन्थों का प्रणयन किया। इस सन्दर्भ में यह बताना आवश्यक-सा हो जाता है कि ढाई सौ वर्षों के बहुत लम्बे समय में कुल 32 ग्रन्थ ही लिखे गये होंगे, यह कुछ अविश्वसनीय लगता है। सम्भव है, इस युग के अन्य साहित्यकार तथा उनकी और भी बहुत-सी रचनायें अभी सामने न आई हों। फिर भी, पम्प-युग के ये 32 साहित्य ग्रंथ संख्या में कम होते हुए भी गुणों में बहुत अधिक श्रेष्ठ हैं। पम्प-युगीन साहित्य की इन्हीं विशेषताओं को ध्यान में रखकर यह कहना अधिक युक्तिसंगत लगता है कि "जैन-साहित्य-रचना का यह काल जैनधर्म और साहित्य का स्वर्ण काल था।"

सारिणी से दूसरी बात यह स्पष्ट होती है कि पम्प-युगीन 19 प्रमुख साहित्यकारों में से 13 जैन धर्म के अनुयायी तथा शेष 6 ब्राह्मण-धर्मी थे। स्पष्टतः इस युग में जैन-भक्ति साहित्य की प्रधानता रही होनी चाहिए, और यही सच भी है।

## पम्प-युगीन प्रमुख साहित्यकार

जैसा कि ऊपर दी गई सारिणी से स्पष्ट है, पम्प-युग में अनेक साहित्यकार हुए हैं। यहाँ इनमें से कुछ प्रमुख साहित्यकारों तथा उनकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय उल्लिखित किया जा रहा है—

### 'आदि कवि' पम्प

जिस प्रकार संस्कृत-साहित्य के अन्तर्गत महर्षि वाल्मीकि को संस्कृत का 'आदि कवि' कहा गया है, उसी प्रकार कन्नड का 'आदि कवि' पम्प माना जाता है। कुछ लोग आदि कवि पम्प को 'आदि पम्प' के नाम से भी पुकारते हैं। इस सन्दर्भ में एक बात कह देना बहुत आवश्यक है. पम्प को आदि कवि कहने का अभिप्राय यह नहीं है कि पम्प कन्नड भाषा का पहला साहित्यकार था। वस्तुस्थिति तो यह है कि पम्प वह पहला साहित्यकार था जिसने कन्नड में सबसे पहला महाकाव्य (epic) सरीखा इतिहास-काव्य लिखा। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि कन्नड-साहित्य को प्रथम विशुद्ध काव्य-ग्रंथ प्रदान करने वाला कवि पम्प था। यही कारण है, पम्प के पूर्व भी साहित्य-रचना हुयी थी, फिर भी आदि कवि के रूप में पम्प को ही प्रतिष्ठित किया जाता है।

जीवन-वृत्त—पम्प के विषय में पूर्ण जीवन-सम्बन्धी जानकारी अप्राप्य ही कही जा सकती है। जो कुछ थोड़ी-सी जानकारी मिलती भी है, वह स्वयं

पम्प ने अपने ग्रथो मे दी है । उस जानकारी के अनुसार, पम्प के पूर्वज वत्स गोत्र ब्राह्मण थे और वशानुगत वैदिक-धर्मावलम्बी थे । उसके पिता का नाम अभिनवदेव राम था । सर्वप्रथम परिवार मे अभिनवदेव राम ने वैदिक-धर्म को छोडे बिना ही जैन-धर्म को स्वीकार किया था । बाद मे पम्प चालुक्यवशी नरेश अरिकेसरी द्वितीय का राज्याश्रित कवि होकर पुलिगेरे मे रहने लगा ।

इस प्रकार पम्प जन्म से ब्राह्मण था, परन्तु उसकी आस्था जैन-धर्म मे थी । उसमे दोनो ही धर्मों के सस्कारो का सम्मिश्रण था । जैन-धर्म मे पूर्ण विश्वास और दृढ आस्था रखते हुए भी धर्मान्ध नही था । वह आडम्बर और ढोगबाजी का विरोधी था । समन्वयवादिता उसका स्वभाव था । बहुमुखी प्रतिभा का धनी होने के कारण प्राय लोग उसे 'सव्यसाचो' कहा करते थे । वह मात्र कवि ही नही, श्रेष्ठ योद्धा भी था । सरस्वती और लक्ष्मी दोनो ही उस पर समानत. रीझी हुयी थी ।

## पम्प-साहित्य

पुलिगेरे की कन्नड-भाषा मे पम्प ने दो ग्रथो की रचना की है · 'आदि-पुराण' और 'विक्रमार्जुन-विजय' । जैन-साहित्यकारो मे प्रचलित परम्परा के अनुरूप ही ये दोनो ग्रथ क्रमिक रूप मे धार्मिक और लौकिक ग्रथ है । इन ग्रथो का सक्षिप्त परिचय इस प्रकार दिया जा सकता है—

**आदि पुराण**—पम्प की पहली रचना 'आदि-पुराण' है । इसकी रचना पम्प ने अनुमानत. 40 वर्ष की आयु मे की होगी । इस काव्य-ग्रथ का आधार मुख्य रूप से **आचार्य जिनसेन** द्वारा संस्कृत मे रचित **पूर्व-पुराण** है जिसमे जैन-धर्म के पहले तीर्थंकर का जीवन-चरित्र वर्णित है । 'आदि-पुराण' को देखकर ऐसा लगता है, जैसे पम्प जैन-धर्म मे गहन आस्था रखने के कारण बँध गया है । 'आदि-पुराण' की कथावस्तु, कथा प्रस्तुत करने का क्रम, भाव सवहन, जैन-तत्त्व बोध आदि सभी कुछ 'पूर्व-पुराण' जैसा है, पर ग्रथ-रूप भिन्न है । 'पूर्व पुराण'चम्पू काव्य नहीं है, जबकि 'आदि पुराण' चम्पू काव्य है । दूसरे, 'आदि-पुराण' मे पुराणत्व कम है, काव्यत्व कही अधिक ।

कहना न होगा, पम्प ने अपनी धार्मिक भावनाओ को शब्द-रूप दिया है । उसने अपने गुरु देवेन्द्र मुनि की भक्तिमूलक वन्दना करते हुए जैन-धर्म के सर्वप्रथम तीर्थंकर पुरुदेव को नायक के रूप मे तथा पुरुदेव के पुत्र भरत को वीर-नायक के रूप मे चुना है । ग्रथ के आरम्भ मे कवि ने 'आदिब्रह्म' से मुक्ति व सुख-प्राप्ति के लिए प्रार्थना की है । इसके बाद उसने ग्रथ की विशेष-

ताओं का उल्लेख किया है। श्री वी० एम्० श्री कण्ठय्या के अनुसार 'आदि-पुराण' की विशेषताओं को सारांश-रूप में इस प्रकार बताया जा सकता है—

'मुख्यत: अर्थ व काम की तृष्णा से किये गये शुभाशुभ कार्मों के फल-स्वरूप तिर्यक्, मनुष्य, नारक, देव नामक चार गतियों से युक्त ससार में तड़पने वाला जीव जिन-धर्म में श्रद्धा रखकर, सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चरित्र नामक रत्नत्रय से परिशुद्ध होकर, दान, धर्म, वैराग्य और तप आदि से उत्तम जन्म पाकर, भवावली के शिखर पर अहमिन्द्र बनकर, देवलोक में निवास करके, परिशुद्ध आत्मा होकर मानव-लोक में आकर, चरमदेही होकर वैराग्य से सब कुछ परित्याग करके, तप के द्वारा कर्मक्षय करके तीर्थंकर बनकर जैन-धर्म का ससार को उपदेश देते हुए निर्वाण-पद को प्राप्त होता है। यही तीर्थंकर के पुराण का साराश है।'

'आदि-पुराण' को कन्नड के साहित्यकार वाङ्मय-माणिक्य-कोश के रूप में मानते हैं। इस ग्रन्थ के कुछ भाग को श्री जी० पी० राजरत्नम् ने अपनी पुस्तक 'श्रीकवि पम्प' में सगृहीत किया है। इन अशो से 'आदि-पुराण' का कथ्य स्वय स्पष्ट हो जाता है। उदाहरणार्थ कुछ अश प्रस्तुत हैं—

'जिनधर्म प्राणिगॉम' [अर्थात् जिन धर्म प्राणियों को आश्रय देने में समर्थ'] शीर्षक भाग में ललितांग के अवसान-काल में सामानिक देव उससे कहते हैं—

जिनचैत्य आतम वदिसु जिनपदपद्मंगल दिव्यसप्प
चनेयिंदे भाक्तियिंदर्चिसु जिनन नमस्कार मंत्रगलोल् भा
वनेय तालूदलतियिंदं जिनमहिमेगल माडु नीं भव्यनं म
त्तिन मिथ्याज्ञानिवोल् नीं तरलतेवेरमिंतेके विभ्रान्तनप्पै।

एक अन्य स्थल पर वज्रजघ को उपदेश देते हुए एक चारण मुनि कहते हैं—

ई समारांभोधिय
नीसुव निनगिढुवे नावे तडिगाएग्रेयना
यासदोले निनगे मुक्ति
प्रासादमनडरलिवुवे सोपानगल्।

इसके अतिरिक्त तीर्थंकर से की गई प्रार्थना-रूप में लिखे भक्ति-पद उत्कृष्ट भक्ति-कविता के उदाहरण हैं।

विक्रमार्जुन-विजय—यह पम्प की दूसरी वृहताकार महत्वपूर्ण रचना है। इसे प्राय पम्पभारत भी कहा जाता है। इसका विषय लौकिक है तथा

कवि की प्रतिभा का विकास इसमे 'आदि-पुराण' से कहीं अधिक हुआ दिखाई देता है। स्वय पम्प का कथन है, "आदिपुराण की रचना मे मुझे तीन मास लगे, जबकि विक्रमार्जुन-विजय की रचना छह महीने मे हुयी।"

पम्प के इस कथन का अभिप्राय प्राय यह लिया जाता है कि उसने दोनों ग्रथो की रचना एक ही वर्ष में की होगी; परन्तु दोनो ग्रथो की शैलीगत भिन्नता यह स्पष्ट कर देती है कि दोनो ग्रथो के बीच पर्याप्त समय का अन्तर रहा होगा।

'विक्रमार्जुन-विजय' की कथावस्तु सस्कृत कवि व्यास कृत महाभारत से ली गई है। पम्प ने यद्यपि 'सम्पूर्ण महाभारत' को इस रचना मे लेने की बात लिखी है, तथापि उसने अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतु मूल महाभारत के अनेक अशो को या तो बिल्कुल छोड दिया है, या उन्हें सक्षिप्त कर दिया है, या उनमे कुछ परिवर्तन कर दिये हैं। पम्प ने स्वय इस तथ्य की स्वीकारोक्ति दी है कि इस ग्रथ की रचना के प्रमुख उद्देश्यो मे एक उद्देश्य अपने आश्रयदाता नरेश अरिकेसरी की स्तुति करना भी है। पीठिका के पदो मे अरिकेसरी की वशावलि गिनाने के बाद उसके शौर्य की प्रशसा करते हुए पम्प ने 'वैरिन-रेन्द्रोद्दामदर्पोद्दलन' कहकर अर्जुन की आड मे अपने आश्रयदाता की कथा आरम्भ की है। यहाँ साकेतिक रूप से यह स्पष्ट हो जाता है कि "इस कथा का नायक अरिकेसरी है जो बल पराक्रम मे अर्जुन के समान है। अर्जुन की कथा के स्रोत महाभारत की पृष्ठभूमि पर मैं अरिकेसरी का चित्र खीचने लगा हूँ।" उल्लेख-नीय है, विक्रमार्जुन-विजय से अरिकेसरी विजय का अर्थ ध्वनित होता है। अरिकेसरी की सारी उपाधियाँ अर्जुन की उपाधियाँ बन गई हैं। इस प्रकार पम्प ने अर्जुन और अरिकेसरी के बीच का अन्तर हटाकर उन्हें एक ही व्यक्ति के रूप मे चित्रित किया है।

सच तो यह है कि पम्प ने 'विक्रमार्जुन-विजय' की सारी कथावस्तु को दक्षिण भारत मे प्रचलित महाभारत की हस्तलिखित प्रति (script) तथा जैन-महाभारत से लेकर अनेक परिवर्तन करते हुए अत्यन्त सक्षेप में प्रस्तुत किया है। पम्प का अद्भुत प्रतिभा और पाण्डित्य से युक्त यह महा-काव्य एक मौलिक कृति है।

पम्प ने दक्षिण मे प्रचलित महाभारत की कथा मे जो परिवर्तन किये है, उनमे से कुछ मुख्य परिवर्तन ये हैं—

1. इसमे ['विक्रमार्जुन-विजय' मे] अर्जुन को नायकत्व (heroship) प्रदान किया गया है।

2. सुभद्रा को अधिक महत्व दिये जाने के कारण द्रौपदी का महत्व बहुत कम हो गया है।

3. द्रौपदी को केवल अर्जुन की पत्नी के रूप मे चित्रित किया गया है। वह पाँचो पाण्डवो—युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव—की पत्नी नही है। भीम उसे (द्रौपदी को) 'भाभी' कहकर सम्बोधित करता है।

4. महाभारत का युद्ध यद्यपि द्रौपदी के अपमान के कारण ही हुआ था, तथापि विजय होने पर महारानी का पद सुभद्रा को मिलता है, न कि द्रौपदी को।

5. इसमें राज्याभिषेक अर्जुन का होना है, युधिष्ठिर का नही।

इसी प्रकार पम्प ने व्यास कृत महाभारत की कथा मे भी काफी परिवर्तन कर दिये हैं, फलत कथावस्तु मे अपरिहार्य विसगतियाँ आ गई हैं।

अनेक स्थलो पर अति प्रसग तथा अनावश्यक वर्णनों की भी भरमार है, उदाहरणार्थ—अर्जुन-सुभद्रा प्रणय-प्रसग, किन्तु पम्प ने ऐसे स्थलो पर भी औचित्य बुद्धि का प्रयोग किया है। फलत पम्प की यह रचना एक सुग्रथित ओजपूर्ण महाकाव्य बन गई है। प्रभावोत्पादकता और सजीवता का एक अच्छा उदाहरण शान्तनु सत्यवती का यह प्रणय-चित्र है—

"मृगयाव्याजदिनोंमें शन्तनु तोललतर्प, पलघल्केतन् मृगशाबाक्षिय कम्पु तट्टिद मधुपम्बोल् मील्तु कडोल्दु नल्मेगे दिव्य चित्तिवन्तवाल् पिडिदु, 'ना वा पोप' एंदडगे मल्लगे तत्कन्यक नाणचि 'बेडुव.डे नीवे-म्मय्यन बेडिरे'* ।"

## पोन्न

पोन्न इस युग का दूसरा महान् कवि था और राष्ट्रकूट वशी सामन्त नरेश कृष्ण तृतीय का आश्रित था। यह सस्कृत और कन्नड़ का पण्डित था तथा दोनो ही भाषाओं मे समान रूप से रचनाए करता था। इसी कारण इसे 'उभय कवि चक्रवर्ती' की उपाधि मिली हुई थी। पोन्न को 'श्रवण' भी कहा जाता था, क्योंकि यह जैन-धर्मशास्त्र का महान् पण्डित था और एक यति (साधू) की तरह जीवन बिताता था। कहते हैं, पोन्न बहुत सुन्दर था और यति होते हुए भी घुँघराले केश रखता था। उसकी एक उपाधि कुरुलगल्

*अर्थात् "शिकार के बहाने घूमते हुए शान्तनु (शन्तनु) ने एक दिन मृगशावाक्षी (सत्यवती) की गन्ध पाकर उसे देखते ही भँवरे की भाँति प्रेम से हृदय हारकर पकड लिया और कहा, 'आ हम चलें', तब वह कन्या लजा-कर बोली, 'यदि मुझे चाहते हो तो मेरे पिता से कहो।'

सवरा' [घुंघराले बालो वाला श्रमण] भी थी। इसका रचना-काल सन् 940 से 950 ई० माना जाता है।

## पोन्न-साहित्य

पोन्न ने यद्यपि पम्प की तरह आत्म-चरित नही लिखा, मगर आत्म-प्रशसा करने मे उसने पम्प को भी काफी पीछे छोड दिया है। कुल मिलाकर उसने तीन ग्रथ लिखे हैं—शान्ति-पुराण, भुवनैक रामाभ्युदय तथा जिनाक्षरमाला। 'कवि-चरित्र' के लेखक श्री नरसिंहाचार्य ने पोन्न के एक पद को आधार बताते हुये उसका एक चौथा ग्रथ 'गत-प्रत्यागत' भी माना है। किन्तु वर्तमान में पोन्न की केवल दो रचनाएँ 'शान्ति-पुराण' और 'जिनाक्षरमाला' ही उपलब्ध होती हैं, शेष एक अप्राप्य है।

शान्ति-पुराण—कहते हैं, पोन्न ने नागमय्या के दो वीर पुत्रों मल्लपार्य और पुन्नमार्य को सुनाने के लिए ही इस ग्रथ की रचना की थी। इसके अन्तर्गत 16वें तीर्थंकर शान्तिनाथ की कथा वर्णित हुई है। एक किंवदन्ती के अनुसार, मल्लापार्य की पुत्री दानशूरा अतिमब्बे ने प्रचारार्थ इस ग्रन्थ की 1000 प्रतियाँ लिखवाकर वितरित की थी।

'शान्ति-पुराण' एक चम्पू ग्रथ है। इसमे 12 आश्वास है। शुरू के नौ आश्वासो में तीर्थंकर शान्तिनाथ के पूर्व-जन्मो की कहानी 'भवावली' को विस्तारपूर्वक बतलाया गया है तथा अन्तिम तीन आश्वासो मे उनकी (तीर्थंकर शान्तिनाथ की) अपनी कहानी है।

यह बात ध्यान देने की है कि पोन्न ने अपना सारा ध्यान अपने ग्रथ को प्रौढ-कृति बनाने में लगाया है, और इसीलिए उसने जैन-शास्त्र तथा काव्य-शास्त्र दोनो ही की परम्परागत बातो के अनुसार रचना की है। जैन-पुराणो के सभी आठो अगों को 'शान्ति-पुराण' मे स्थान दिया गया है। उदाहरण के लिए 'भवावली' मे तीर्थंकर शान्तिनाथ के पूर्व-जन्मो की कथा को सविस्तार बतलाया गया है जिसमे काव्य-शैली-दृष्टि से 18 बातो एव नवो रसो को देखा जा सकता है। इतना ही नही, पोन्न ने उत्तम एव श्रेष्ठ काव्य-बन्ध की प्रशसा करते हुए 'समवृत्त संधि लक्षण समन्वितं जात्यालंकृति भ्राजितमुत्तम काव्यबध' कहा है जो वस्तुत: स्वय उसी के काव्य की ओर किया गया आत्म-प्रशसामूलक सकेत है। लेकिन पोन्न को इतना ही कहकर सन्तोष न हुआ। फलत उसने एक स्थान पर अपने इस ग्रथ को 'पुराण चूडामणि' तक कह डाला है। कुछ हद तक तो—जैन-सम्प्रदाय के साम्प्रदायिक लक्षणो का गहरी निष्ठा और कट्टरता से पालन करने की दृष्टि से तो—पोन्न की यह आत्म-

प्रशस्ति सही और उचित भी है, और इस दृष्टि से उसने पम्प कृत 'आदि पुराण' को भी पीछे छोड़ दिया है, किन्तु काव्य-धर्म और धर्म-प्रयोजन की दृष्टि से 'शान्ति-पुराण' को कैसे भी एक श्रेष्ठ पुराण नहीं माना जा सकता है।

उल्लेखनीय है, पोन्न ने छन्द, शैली, अलकारो आदि की सहायता से 'शान्ति-पुराण' को प्रौढ़ता प्रदान की है। उसका वस्तु-सयोजन साधारण अवश्य है, किन्तु वर्णनो मे प्रौढ़ कल्पना-शक्ति और रचना-चातुर्य स्पष्ट है। अनेक स्थलो पर जबकि पुराणो मे वर्णित रूढ़िगत बातें पढ़ते-पढ़ते पाठक ऊब जाता है तो यही काव्य-गुण पाठक को आकृष्ट करते हैं और मन मे पोन्न के प्रति आदर-भाव उपजाते हैं। प्राचीन सस्कृत कवियो—मुख्य रूप से, कालिदास के ग्रथो—का स्पष्ट प्रभाव पोन्न पर स्पष्ट लक्षित होता है।

जिनाक्षरमाला—यह पोन्न की दूसरी उपलब्ध रचना है। इस छोटे-से काव्य-ग्रथ मे 39 पद्य हैं। ये सभी पद्य अकारादि—अर्थात वर्णमाला (अ, आ, इ, ई··आदि)—क्रम मे लिखे गये हैं। सभी पद्यो को 'कद' नामक कन्नड छद मे बाँधा गया है। वस्तुत· यह एक जैन-धर्म का स्तुतिपरक ग्रथ है।

भुवनैक रामाभ्युदय—पोन्न की यह तीसरी काव्य-रचना है, जो अप्राप्य है। यह लौकिक काव्य बताया जाता है। विद्वानो के मतानुसार, इस ग्रथ में मूलत. राम-कथा का वर्णन हुआ था, किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से इसमें पोन्न के किसी अन्य आश्रयदाता नरेश की गाथा अन्तर्निहित थी। यह आश्रयदाता नरेश वास्तव मे कौन था, यह रहस्य अभी तक खुल नहीं सका है। केवल अनुमान के आधार पर ही कहा जा सकता है कि इस ग्रथ मे राष्ट्रकूट-वशी नरेश कृष्ण द्वारा चोल-नरेश आदित्य को हराये जाने की कथा थी।

## महत्व

पोन्न का साहित्य इस बात का प्रमाण है कि उसमें आत्म-प्रशसा का माद्दा बहुत है। वह अपने आपको 'महाकवि' बतलाता है। उसके इस कथन की सत्यता 'शान्ति-पुराण' मे अशत ही प्रमाणित होती है। सच तो यह है कि जब तक पोन्न के दोनो अनुपलब्ध ग्रन्थ—'भुवनैक रामाभ्युदय' तथा 'गत-प्रत्यागत'—सामने नहीं आते, तब तक पोन्न को न तो 'महाकवि' माना जा सकता है, न 'कवि चक्रवर्ती' ही। यद्यपि यह सत्य है कि कुछ अशों में पोन्न का साहित्य पम्प की अपेक्षा कुछ अधिक प्रौढ़ता लिये हुए है।

## रन्न

पम्प युगीन कन्नड-कविता का तीसरा कवि है, रन्न। 'रन्न' सस्कृत के शब्द 'रत्न' का अपभ्रश रूप है। पिछले दोनों कवियों—पम्प और पोन्न की

भाँति रन्न मे भी आत्म-प्रशसा करने का माद्दा सहज ही देखा जा सकता है, किन्तु उसकी आत्म-प्रशसात्मक बातें निराधार नही हैं, उनमे सत्याश छिपा हुआ है। एक स्थल पर रन्न ने स्वय अपने विषय मे सगर्व लिखा है "कवि-जनों में केवल तीन ही रत्न हैं—पम्प, पोन्न और मैं।" फलत यह तीनो कवि कन्नड-साहित्य के इतिहास मे 'रत्नत्रय' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

जीवन-परिचय—आत्म-चरित लिखने की जिस परम्परा का श्रीगणेश पम्प ने किया था, रन्न ने उसे आगे बढाया है। रन्न ने अपनी जीवनी पम्प की अपेक्षा अधिक विस्तार से लिखी है। उस जीवनी के अन्तर्गत रन्न ने अपने माता पिता, दो पत्नियो तथा सन्तानो के नामो का उल्लेख किया है। उसी जीवनी के आधार पर यह कहा जा सकता है कि रन्न मुदुवाळलु—वर्तमान मधोळ—के निवासी एक मनिहार कुल मे सन् 949 ई० मे पैदा हुआ था। उसका परिवार जैन-मतावलम्बी था। अपने सकल्प की दृढता और कठोर श्रम से उसने चावुण्डराय के आश्रम मे शिक्षा ग्रहण की। उसकी कवित्व-शक्ति का प्रस्फुटन आश्रम मे ही हो गया था। अत आश्रम से वापस लौटने के उपरान्त वह चालुक्य वशी नरेश चक्रवर्ती सत्याश्रय [उपनाम—'इरिववेडग'] के आश्रय मे रहने लगा। रन्न के जीवन-चरित्र को पढने से उसके व्यक्तित्व के दो प्रमुख गुण स्पष्ट लक्षित होते हैं, जिनकी सहायता से रन्न-काव्य का मूल्याकन करना काफी सहज हो जाता है। विपरीत परिस्थितियो से जूझते हुए आगे बढते रहने वाले शूर-जैसा आत्म-विश्वास और असीमित उत्साह रन्न के व्यक्तित्व का पहला गुण था; और दूसरे, उसकी वाणी मे पक्षपात-रहित बिजली की-सी गर्जना विद्यमान थी। उसके ये दोनो ही चारित्रिक गुण उसकी कृतियो मे उभरकर सामने आते हैं।

## रन्न का साहित्य

रन्न लिखित केवल दो ही ग्रन्थ आज उपलब्ध हैं—'अजित पुराण' और 'गदा-युद्ध' अथवा 'साहस-भीम'। यद्यपि 'अजित पुराण' के अन्त में रन्न ने अपने तीन अन्य ग्रन्थो 'परशुराम चरित', 'चक्रेश्वर चरित' तथा 'अजित तीर्थेश्वर चरित' के नाम दिये हैं, किन्तु इनमें से कोई भी ग्रन्थ आज उपलब्ध नही है। कुछ लोगो के मतानुसार, 'चक्रेश्वर चरित' कोई पृथक् रचना न होकर 'गदा-युद्ध' का ही एक अन्य नाम है। परन्तु यह मात्र अनुमान ही है, सत्य नहीं।

अजित पुराण—जैन-धर्म से सम्बन्धित यह एक पौराणिक महाकाव्य है। इस ग्रन्थ मे दूसरे जैन-तीर्थंकर अजित स्वामी तथा दूसरे चक्रवर्ती राजा सगर की गाथा का वर्णन हुआ है। इस ग्रन्थ की रचना रन्न ने अपनी आश्रय-

दात्री महारानी अतिमब्बे को सुनाने के उद्देश्य से की थी। रन्न ने उसे 'दान-चिन्तामणि' कहते हुए उसकी बहुत प्रशसा की है।

इस पुराण की यह विशेषता है कि इसमे तीर्थंकर के अनेक पूर्वजन्मो की कथा का वर्णन नही दिया गया है, अर्थात् इसमे 'भवावली' नही है, बल्कि अजित स्वामी के केवल एक ही पूर्वजन्म की कथा दी गई है। फलतः भवावली के जैसे रोचक वर्णन पम्प कृत 'आदि पुराण' मे मिलते हैं, वैसे वर्णन इस ग्रन्थ मे नहीं मिलते। दूसरे, इसमे अजित स्वामी का विस्तृत जीवन-चरित्र साम्प्रदायिक ढग से वर्णित हुआ है, फलत इसमे मनोहारी हृदयस्पर्शी वर्ण्य-विषयो का अभाव हो गया है जिसकी वजह से न तो यह पुराण हृदय पर यथेष्ठ प्रभाव डाल पाने मे समर्थ है, न इसमे अभीष्ट रोचकता है, और न इसमे कवि की प्रतिभा को खुलकर खेल सकने का मौका मिला है। यद्यपि यह सत्य है कि इस ग्रन्थ की रचना मे रन्न ने असीमित उत्साह, कल्पना-शक्ति एव तादात्म्य प्रदर्शित किया है, किन्तु इसके बावजूद भी इसमे प्रभावोत्पादकता का गुण नहीं आ सका है।

रन्न के कथनानुसार, "'आदि पुराण', 'शान्ति पुराण' तथा 'अजित पुराण'—ये तीनों जैन-पुराणों मे सर्वोत्तम हैं।" रन्न का यह कथन निस्सन्देह सत्य है, किन्तु उसकी 'अजित पुराण' सम्बन्धी यह गर्वोक्ति, कि "अजित पुराण, 'पुराण-तिलक' है," सत्य नही है। सत्य तो यह है कि 'आदि पुराण' की गरिमा तक दोनो ही पुराण पहुँचने मे असमर्थ हैं। वस्तुत 'आदि पुराण' को ही 'पुराण तिलक' और 'पुराण चूडामणि' कहा जाना चाहिए।

गदा युद्ध—यह रन्न की दूसरी रचना है जिसे रन्न का 'कृति-रत्न' कहा जाता है। यह एक लौकिक काव्य ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ की मूल कथा-वस्तु तो व्यास कृत 'महाभारत' से ली गई है, परन्तु इसके लेखन की प्रेरणा रन्न को पम्प कृत 'विक्रमार्जुन-विजय' से मिली थी। रन्न को पम्प के प्रति गहरी श्रद्धा थी—उसने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि "मुझे पम्प से ही 'वाग्विभवोन्नति' प्राप्त हुई है।" कहना न होगा, पम्प की उक्त रचना के 13 वें आश्वास* मे वर्णित महाभारत-युद्ध के अन्तिम दृश्य ने रन्न को 'गदा-युद्ध' लिखने की प्रेरणा दी है। इस ग्रन्थ मे, वस्तुत, भीम द्वारा दुर्योधन के ऊरु-भग की कथा को स्थान प्राप्त हुआ है।

यद्यपि 'गदा-युद्ध' की रचना करने के लिए रन्न ने पम्प कृत 'विक्रमार्जुन-विजय', सस्कृत-महाकवि भास कृत 'ऊरुभग' तथा सस्कृत-नाटककार एव कवि भट्ट नारायण कृत 'वेणीसहार'—जैसे ग्रन्थो से अनेक भावो को लेकर,

* 'आश्वास' का अर्थ 'सर्ग', 'परिच्छेद', 'अध्याय' होता है।

उनमे अपनी कवित्व-शक्ति से उद्भूत रसो को भरकर, उन्हे नाटकीयता प्रदान करते हुए प्रस्तुत किया है, तथापि कथा-सयोजन आदि की दृष्टि से इसे रन्न की अपनी कृति के रूप मे स्वीकार किया जाना चाहिए।

उल्लेखनीय है, रन्न के इस ग्रन्थ मे पम्प कृत 'विक्रमार्जुन-विजय' के केवल 13वें आश्वास—और वह भी 50वें पद—के आगे की कथा दी गई है। अन्त मे कवि ने उपसहार करते हुए 'सिहावलोकन' रूप मे सम्पूर्ण महाभारत की सक्षिप्त कथा भी लिख दी है।

एक तथ्य और! रन्न ने पम्प की ही भाँति अपने इस ग्रन्थ मे भीम की आड मे अपने आश्रयदाता सत्याश्रय को ही नायक बनाते हुए उसे 'इरिवबिडग' आदि उपाधियो से विभूषित किया है।

रन्न ने इस ग्रन्थ की कथा मे पम्प की ही भाँति परिवर्तन करते हुए युद्ध के उपरान्त युधिष्ठिर के स्थान पर भीम का राज्याभिषेक कराया है, जो मूल 'महाभारत' की कथा-दृष्टि से बड़ा अजीब-सा लगता है, परन्तु रन्न ने भीम से प्रतिज्ञा-पूर्ति करवाते हुए उसे राज्याभिषेक का अधिकारी सिद्ध किया है, और इस तरह अपने ग्रन्थ की कथा के औचित्य को प्रमाणित किया है।

'गदा-युद्ध'—उपनाम · 'साहस भीम-विजय'—की सर्वोपरि विशेषता उसकी नाटकीयता है, अर्थात् बिना कोई परिवर्तन किए हुए सहज ही इस काव्य-ग्रन्थ को 9-10 दृश्यो मे विभाजित करके नाटक का रूप दिया जा सकता है, और उस नाटक को रगमच ( stage ) पर मचस्थ भी किया जा सकता है।

रन्न की इस महान् रचना के विषय में श्री आर० एस० मुगळि का मत है, "रन्न ने श्रव्य-काव्य लिखा, किन्तु अपने जन्मजात गुण नाटकीयता को छिपाकर वह न रख सका, फलत दृश्य-काव्य के तत्त्व उसकी रचना मे स्वत आ गये।"

## नागचन्द्र [उर्फ 'अभिनव पम्प']

महत्त्व की दृष्टि से पम्प-युग का चौथा श्रेष्ठ साहित्यकार था, नागचन्द्र। नागचन्द्र अपने युग का 'आचार्य-कवि' था। यह होयसल वशी राजा बल्लाल (प्रथम)* का दरबारी-कवि था। कन्नड साहित्य के पम्प-युगीन

* होयसल वशी राजा बल्लाल (प्रथम) पहले जैन-मतावलम्बी था। बाद मे उसने वैष्णव-धर्म को स्वीकार कर लिया और विष्णुवर्धन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसका वास्तविक नाम 'बिट्टिदेव' था।

मान्य कवियो मे नागचन्द्र को पोन्न और रन्न की अपेक्षा—काव्यगत प्रौढ़ता की दृष्टि से—अधिक महत्व दिया जाता है ।

शैली की दृष्टि से नागचन्द्र की शैली आदि-कवि पम्प (आदि पम्प) से अधिक प्रौढ़ है । दूसरे शब्दो मे कह सकते हैं, शैली की दृष्टि से नागचन्द्र आदि पम्प का शिष्य था । सम्भवत इसीलिए उसने 'अभिनव पम्प' की उपाधि धारण की थी ।

## अभिनव पम्प-साहित्य

नागचन्द्र उर्फ 'अभिनव पम्प' ने अपने पूर्ववर्ती कवियो की भाँति ही दो ग्रन्थो की रचना की प्रथम, 'मल्लिनाथ पुराण' और दूसरा 'रामचन्द्र-चरित पुराण' ।

मल्लिनाथ पुराण—नागचन्द्र की यह रचना पौराणिक, अर्थात् धार्मिक, काव्य-रचना है । इस ग्रन्थ मे जैन-धर्म के 19वें तीर्थंकर मल्लिनाथ स्वामी का जीवन-चरित्र सविस्तार वर्णित हुआ है । यह ग्रन्थ भक्ति और वैराग्यपरक रचना है जिसमे भक्ति-रस की अजस्त्र प्रवाहिनी धारा प्रवाहित हुयी है । भक्ति-रस मे पगा हुआ एक ही उदाहरण इस तथ्य का साक्षी है, देखिये —

> "जय जिनवृजिन जिनेश्वर
> दयानदीपुलिन राजहंस भवोंभो
> धिय तडियनेयुदिसेन्न
> नय निक्षेप प्रयाणपात्रदिनर्हा ।"

रामचन्द्र-चरित पुराण अथवा पम्प रामायण—नागचन्द्र का यह ग्रन्थ 'लौकिक काव्य' है । यह ग्रन्थ कन्नड-साहित्य की अमूल्य निधि माना जाता है और 'पम्प रामायण' के नाम से प्रसिद्ध है । यो तो, कन्नड मे अनेक जैन-मतावलम्बियो ने रामायण लिखी हैं, किन्तु सर्वाधिक ख्याति-प्राप्त नागचन्द्र की ही 'पम्प रामायण' है ।

'पम्प रामायण' मे जैन-मतानुसारी रामायण ( सक्षेप में, 'जैन-रामायण') की कहानी दी गई है—अर्थात् नागचन्द्र के इस ग्रन्थ की कथा जैन-रामायण की कथा है । जैन-रामायण की कथावस्तु (story-plot) वस्तुतः प्राकृत-भाषा के सुप्रसिद्ध कवि विमलसूरि कृत 'पउम् चरिउ'* पर

* 'पउम् चरिउ' [अर्थात् 'पद्मचरित'] तीसरी शताब्दी की काव्य-रचना है जिसके आधार पर ही जैन सम्प्रदाय मे उपलब्ध रामायणो की रचना की गई है । 'पउम् चरिउ' ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण रचना है ।

आधारित है, और इसीलिए जैन-रामायण* तथा वाल्मीकि कृत 'रामायण' की कथा मे पर्याप्त अन्तर मिलता है। यही अन्तर नागचन्द्र कृत 'रामचन्द्र-चरित पुराण' और वाल्मीकि कृत 'रामायण' की कथाओ मे भी दिखाई देते हैं, जिनमे से कुछ मुख्य अन्तर नीचे दिये जा रहे हैं—

1. 'पम्प रामायण' का सम्पूर्ण वातावरण जैन-वातावरण है। सारा भारत देश जैन-मतावलम्बी है तथा कही ब्राह्मण तथा वैदिक धर्म का उल्लेख भी नही किया गया है। वनो मे रहनेवाले सारे आश्रमवासी जैन-यति हैं। यहाँ तक कि राम, रावण आदि भी जैन हैं।

2. दूसरे, 'राक्षस' शब्द का प्रयोग अपवाद-रूप मे मिलता है। सामान्य तौर पर उन लोगो को 'विद्याधर' कहा गया है, जो आकाश मे विचरण कर सकते हैं।

3 उत्तर भारत की उपलब्ध प्राय सभी रामायणो मे अनेक प्रकार की अलौकिक बातो का जिक्र हुआ है, मगर पम्परामायण मे अपेक्षाकृत अधिक स्वाभाविक और विश्वसनीय कथाश प्राप्त होते हैं। उदाहरणार्थ—

( i ) सुग्रीव, हनुमान आदि बन्दर न होकर मनुष्य हैं। हाँ, सुग्रीव की ध्वजा पर वानर का चित्र अवश्य बना हुआ है।

( ii ) लका पर अभियान के समय समुद्र को पार करने के लिए पत्थर के टुकडों से पुल का निर्माण नही हुआ, बल्कि राम की सेना ने नभोगमन-विद्या की सहायता लेते हुए आकाश-मार्ग से समुद्र को पार किया था।

( iii ) रावण के दस सिर नहीं थे, वस्तुत जन्म के समय दस दर्पणो मे उसका मुख प्रतिबिम्बित हुआ था। इसीलिए उसे 'दशमुख' कहा गया।

4. राम और लक्ष्मण ईश्वर के अवतार नहीं, मानव हैं।

---

* कन्नड भाषा मे अनेक साहित्यकारो ने जैन-रामायण लिखी हैं जिनका साकेतिक विवरण इस प्रकार है—

चन्द्रशेखर कृत 'कुमुदेन्दु रामायण' [सन् 1275 ई०], पद्मनाथ कृत 'रामचन्द्र चरित्र' [सन् 1700-1750] तथा गद्य-शैली मे लिखित देवचन्द्र की 'रामकथावतार' [ ? ]।

इनके अतिरिक्त कुछ अन्य ग्रन्थो मे जैन-रामायण की सक्षिप्त कथा मिलती है। वे ग्रन्थ हैं—

'चाउण्डराय पुराण' [978 ई०], नयसेन कृत 'धर्मामृत' [1112 ई०], नागराज कृत 'पुण्याश्रव' [1331 ई०] इत्यादि।

5. वनवास के काल मे हमेशा लक्ष्मण ने ही राम की ओर से शस्त्र उठाए, राम ने कभी युद्ध नही किया।

6. रावण की मृत्यु लक्ष्मण के हाथों हुयी, राम ने उसे नहीं मारा, क्योंकि राम आदर्श पुरुष हैं और जैन-मत के मानने वाले हैं, अतः वह जैन-मतानुसार हत्या नही कर सकते।

यही नही, अनेक छोटी-छोटी बातो मे भी पर्याप्त अन्तर मिलता है, उदाहरण के लिए—शत्रुघ्न और लक्ष्मण की माताएँ अलग-अलग हैं, एक नहीं, राम की माँ का नाम अपराजिता है, कौशल्या नही, सीता का एक जुड़वा भाई भी है।

जैसा कि कहा जा चुका है, नागचन्द्र की शैली पम्प से अधिक प्रौढ है, सम्भवत॰ इसीलिए उसे 'अभिनव पम्प' की उपाधि प्रदान की गई थी। उल्लेखनीय है, पम्प और नागचन्द्र की शैली मे पर्याप्त अन्तर है। पम्प की शैली में जहाँ एक ओर क्लिष्टता, ओज और गुत्थियाँ हैं, वही नागचन्द्र की शैली में सरसता, प्रसाद-गुण एव सरलता है। उसने स्वयं एक स्थल पर लिखा है—

"पद रचनेगे सज्जनश्रवणदोल्चेय तुप्पलचेय तीविदोल्।
मृदुवेने पोसवग रसभाव दोलोकुलियाडे पेलदनिभवपम्पम्।"

अर्थात्—'अभिनव पम्प की वाणी सज्जनो के हृदय मे इस तरह प्रवेश कर जाती है, जैसे हस के पख पानी को चीरते चले जाते हैं। वह मृदु और नये ढग की होने के साथ-साथ रस तथा भावो से ओतप्रोत है।'

नागचन्द्र की यह आत्म-प्रशसा बकवास-मात्र नही है बल्कि पूर्ण सार्थक है। उसकी कला पम्प की अपेक्षाकृत काफी मँजी हुयी है। उसकी काव्य-प्रतिमा अद्वितीय है।

## चाउण्डराय

संस्कृत, प्राकृत और कन्नड का प्रकाण्ड पण्डित चाउण्डराय गग नरेश राचमल्ल का मन्त्री और आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्ति का शिष्य था। कोमल-कान्त भावनाओं का कवि होने के साथ-साथ वह एक महायोद्धा भी था। उसने अनेक युद्ध लडे थे। श्रवणवेळगोळ में प्रतिस्थापित विशालकाय गोम्मटेश्वर की मूर्ति उसी ने बनवाई थी। श्री सिद्धगोपाल काव्यतीर्थ के अनुसार, "चाउण्डराय ब्राह्मण क्षत्रिय-वशी था और आचार्य अजितसेन का शिष्य था।" राचमल्ल ने उसे 'रायअण्णा' की उपाधि प्रदान की थी।

चाउण्डराय पुराण—पूर्णतया गद्य-शैली मे लिखे गये इस ग्रन्थ को

'त्रिपष्टि लक्षण महापुराण' भी कहते हैं; किन्तु यह ग्रन्थ अपने इसी नाम से सर्वाधिक प्रसिद्ध है। 'त्रिपष्टि' का अर्थ 'तिरेसठ' या 63 होता है। जैन-सम्प्रदाय मे मान्य 'त्रिपष्टि लक्षण'—अर्थात् 63 लक्षण—ये हैं : जैन-धर्म के 24 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 वासुदेव, 9 बलभद्र तथा 9 प्रति-वासुदेव।

सन् 978 ई० मे लिखे गये इस पुराण की कथावस्तु जिनसेन गुण-भद्र कृत 'सस्कृत महापुराण' से ली गई है। अनेक स्थलों पर उक्त ग्रन्थ का अनुवाद किया गया है। उल्लेखनीय है कि चाउण्डराय ने अनुवाद करते समय न तो उन अशो को विस्तार दिया है, न उन्हें अपनी मौलिकता का सहारा, वल्कि उन्हें बडी कुशलता के साथ अत्यन्त सक्षेप मे प्रस्तुत कर दिया है। लेखक का दृष्टिकोण इस ग्रन्थ में मुख्य रूप से जैन-धर्म का प्रचार करना रहा है। उसके विचार शास्त्र-सम्मत हैं।

'चाउण्डराय पुराण' की दूसरी विशेषता यह है कि इसके आरम्भ और अन्त मे कुछ पद्य हैं। बीच बीच में भी पदो का उपयोग किया गया है। लेकिन इतना होने पर भी यह कहना अनुचित न होगा कि इसकी गद्य-शैली अनुपम है, और वस्तुतः यह ग्रन्थ अपनी गद्य-शैली के लिए ही प्रसिद्ध है। उल्लेखनीय है, अन्य जैन-पुराणो में गद्य कम, पद्य अधिक होता था, किन्तु इस ग्रन्थ में गद्य अधिक, पद्य बहुत कम हैं।

तीसरे, दसवी शताब्दी की भाषा-शैली जानने का यह ग्रन्थ उत्तम साधन है। कहना न होगा, कथा-गद्य एव शास्त्र-गद्य इन दोनो का सफल समन्वय इस ग्रन्थ मे दीख पडता है। प्रचलित शब्दो का सौन्दर्य और शास्त्र-गद्य की सरसता के कारण ही 'चाउण्डराय पुराण' बहुत अधिक लोकप्रिय हो सका है।

चौथे, चम्पू-ग्रन्थों मे मिलनेवाली आलकारिक भाषा-शैली इसमे नही मिलती। इसके विपरीत इस पुराण मे कथा-गद्य की लोक-प्रचलित भाषा-शैली अपने स्वाभाविक 'देसी' रूप मे सरलता, लालित्य और गाम्भीर्य-युक्त होकर विद्यमान है।

### महत्व

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि 'चाउण्डराय पुराण' न तो विषय मे स्वतन्त्र है, न शैली मे, फिर भी पुरानी कन्नड भाषा में प्रचलित गद्य-शैली के अनूठे स्वरूप को लेकर एक महत्वपूर्ण रचना के रूप में कन्नड-साहित्य के इतिहास मे विशिष्ट स्थल पर विराजमान है।

## दुर्गसिंह

10वीं शताब्दी के अन्त और 11वी शताब्दी के आरम्भिक काल के चार कवियो का नामोल्लेख मिलता है। ये कवि हैं—गजांकुश, मनसिज चन्द्रभट्ट और दुर्गसिंह। इनमे से दुर्गसिंह के अतिरिक्त अन्य किसी भी कवि की रचना आज उपलब्ध नही है।

दुर्गसिंह बहुमुखी प्रतिभा का व्यक्ति था। उसका जन्म स्मार्त भागवत सम्प्रदाय के अनुयायी एक ब्राह्मण-परिवार मे हुआ था। इसीलिए उसने अपने गाँव मे हरि-हर ( विष्णु और शिव ) के मन्दिर बनवाये थे। वह 11वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे चालुक्य वशी नरेश जगदेकमल्ल जयसिंह का सेनापति ( दण्डनायक ) और मत्री ( सन्धिविग्रहिक ) था।

पंचतन्त्र—दुर्गसिंह ने अपने जीवन-काल मे केवल एक ही ग्रन्थ की रचना की थी। यह ग्रन्थ कोई मौलिक रचना न होकर वसुभाग भट्ट रचित ग्रन्थ 'पंचतत्र' का कन्नड-अनुवाद है।

उल्लेखनीय है, वसुभाग भट्ट ने गुणाढ्य के सुप्रसिद्ध पैशाची भाषा मे लिखे गये ग्रन्थ 'बृहद्कथा' से पाँच कथाओ को चुनकर उन्हें सकलित करते हुये 'पचतत्र' का नाम दिया था। वसुभाग भट्ट के 'पचतत्र' तथा विष्णु शर्मा के 'पचतत्र' मे पर्याप्त भिन्नता है। दुर्गसिंह ने वसुभाग भट्ट के 'पचतत्र' को ही, जो [ वसुभाग भट्ट कृत 'पचतत्र' ] आज उपलब्ध नही है, कुछ हेरफेर के साथ कन्नड मे अनुवादित किया था। अनुवाद-विषयक् इस तथ्य की जानकारी स्वय दुर्गसिंह ने दी है जिससे वसुभाग भट्ट की रचना का अस्तित्व प्रमाणित होता है। अब यह तथ्य और भी पुष्ट हो गया है कि इसी मूल ग्रन्थ के आधार पर जावा ( मलयेशिया ) मे भी तीन 'पचतत्र' लिखे गये थे जिनमे से दो ग्रन्थ गद्य तथा एक पद्य मे लिखित है। किन्तु दुर्गसिंह कृत "कन्नड़ पचतंत्र" गद्य-पद्य मिश्रित शैली मे है—अर्थात् यह चम्पू-शैली की रचना है।

इस ग्रन्थ की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता यह है—दुर्गसिंह ने मूल आधार-ग्रन्थ के प्रति अनुवाद करते समय पूरी निष्ठा का पालन किया है। इस बात को प्रमाणित करनेवाले कई तथ्य हैं—पहली बात तो यह, कि दुर्गसिंह की रचना मे कुछ ऐसी भी कथाएँ हैं जो विष्णुशर्मा के 'पचतंत्र' में नही मिलतीं। निश्चय ही ये कथायें वसुभाग भट्ट के ग्रन्थ मे रही होगी। दूसरे, इस ग्रन्थ मे बहुत-से जैन धर्म के पारिभाषिक शब्द और अन्य कई धार्मिक बातें मिलती हैं जो विष्णु शर्मा के ग्रन्थ में नही हैं। इस

प्रकार एक तथ्य यह सामने आता है कि दुर्गसिंह धार्मिक दृष्टि से उदारवादी था। उसने कथाओं का चुनाव धर्म के आधार पर नही, श्रेष्ठता के आधार पर किया था। यही कारण है, उसने वैदिक-धर्मी ब्राह्मण होते हुये भी जैन-धर्मपरक कथाओं को अपने ग्रन्थ स्थान मे दिया।

इस ग्रन्थ की तीसरी विशेषता यह है कि यद्यपि कथाओ की नीतियो मे दुर्गसिंह ने मूल ग्रन्थ का ही अनुसरण किया है तथापि कही-कही वर्णनो और बातचीत के दौरान उसने अपनी साहित्यिक मौलिकता से युक्त प्रतिभा का परिचय भी दे दिया है।

## पम्प युगीन अन्य साहित्यकार

ऊपर जिन प्रमुख साहित्यकारों तथा उनकी रचनाओ की विवेचना की गई है, उनके अतिरिक्त कन्नड-साहित्य के इस युग मे अन्य कई उल्लेखनीय साहित्यकार भी हुये हैं जिनका सक्षिप्त साहित्यिक परिचय यहाँ प्रस्तुत है।

### चन्द्रराज

चन्द्रराज का रचना-काल सन् 1040 ई० है। इनका लिखा हुआ केवल एक ही ग्रथ 'मदन-तिलक' उपलब्ध होता है। यह ग्रथ कामशास्त्र (Sexology) से सम्बन्धित है। अपने विषय का कन्नड में लिखित यह सबसे पहला शास्त्रीय ग्रन्थ है। कन्नड-भाषा के विकास के सदर्भ मे इस ग्रथ का बहुत महत्व है। स्वयं चन्द्रराज ने इसकी भाषा को 'नवीन-कन्नड' बतलाया है।

### श्रीधराचार्य

चालुक्य वंशी नरेश आहवमल्ल, जिसका दूसरा नाम सोमेश्वर प्रथम भी है, के राज्याश्रित आचार्य-कवि श्रीधराचार्य द्वारा दो ग्रथ लिखे गये बताये जाते हैं : 'जातक-तिलक और 'चन्द्रप्रभ चरित'।

'जातक-तिलक' ज्योतिष-शास्त्र (Astrology) से सबधित शास्त्रीय रचना है। कन्नड में इस विषय पर लिखी गई यह पहली रचना है। चन्द्रराज कृत 'मदन-तिलक' की भाति यह भी संकलित ग्रथ है तथा इसकी शैली पद्यात्मक है। इस ग्रन्थ का रचना-काल सन् 1050 ई० है।

श्रीधराचार्य लिखित दूसरा ग्रन्थ 'चन्द्रप्रभ चरित' बताया जाता है। इसकी रचना चम्पू शैली पर की गई थी, किंतु यह ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं है। इस ग्रन्थ के रचयिता के बारे मे कन्नड-विद्वान् आज भी असमजस में पडे

हुए हैं। जब तक ग्रंथ उपलब्ध नही होता, लेखक-निर्णय कर पाना बहुत कठिन है।

## नागवर्मा प्रथम

नागवर्मा प्रथम, ब्राह्मण-वंशी था। इसका आश्रयदाता कौन था ? इस विषय मे पर्याप्त मतभेद है। इसने दो ग्रंथो की रचना की थी जिनके नाम हैं—'कन्नड़ कादम्बरी' तथा 'छन्दोम्बुधि'।

'कन्नड़-कादम्बरी' नागवर्मा की महत्वपूर्ण साहित्यक रचना है। यह संस्कृत के प्रसिद्ध लेखक बाणभट्ट लिखित 'कादम्बरी' का कन्नड-अनुवाद है जिसमें नागवर्मा ने अपने पूर्ववर्ती कवियो पम्प, पोन्न, रन्न आदि की भांति अपने आश्रयदाता नरेश 'चंद्र' की स्तुति करते हुए अप्रत्यक्ष रूप में चंद्रापीड की कहानी प्रस्तुत की है। किन्तु यह 'चन्द्र' नामक राजा कौन था—इसका पता नही चलता। उल्लेखनीय है, पम्प, पोन्न, रन्न आदि कवि जैन-मताव-लम्बी तथा जन्म से ब्राह्मण होते हुए भी क्षत्रिय-गुण सम्पन्न थे। यही कारण है, उनकी रचनाओ म शान्त और वीर रस की प्रधानता दिखाई देती है। किन्तु नागवर्मा प्रथम वैदिक ब्राह्मण था। उसका ग्रन्थ 'कादम्बरी' शृंगार-रस-प्रधान रचना है।

नागवर्मा प्रथम मे असाधारण कवित्व-गुण सम्पन्न प्रतिभा थी। बाण-भट्ट रचित 'कादम्बरी' का, उसके लम्बे-लम्बे समासो तथा तथा श्लेषपरक अलंकार-युक्त पदो का दूसरी भाषा मे अनुवाद करना तो दूर की बात है, उसे समझ पाना भी बहुत कठिन है। नागवर्मा ने इस असाध्य कार्य को बडी कुशलता से पूरा कर दिखाया है। इतना ही नही, उसने संस्कृत के पूर्ण गद्य-शैली में लिखे ग्रंथ 'कादम्बरी' को गद्य-पद्यमय चम्पू शैली के काव्य-रूप मे सफलतापूर्वक कन्नड में प्रस्तुत किया है। 'कादम्बरी' के मूल कथानक, पात्रों की सजीवता और वर्णनो की स्वरस्यता को अक्षुण्ण रखते हुए, उसी के आधार पर उसने अपनी एक सर्वथा मौलिक चम्पू-रचना तैयार कर दी है। अनुवाद करते समय उसने कुछ अशो को तो ज्यो-का त्यो अनुवादित किया है, कुछ को संक्षिप्त करते हुए और कुछ अंश बिल्कुल ही छोड़ दिये हैं। उसकी रचना मे अनेक स्थलों पर मूल ग्रन्थ से भी अधिक सुन्दर भाव और पद-लालित्य देखने को मिलता है। उसकी काव्य-कला के सम्बन्ध में श्री सिद्धगोपाल काव्यतीर्थ का यह कथन निस्सन्देह सत्य है—"बाणभट्ट की वाणी यदि मूसलाधार पानी बरसाने वाला मेघ है, तो नागवर्मा की कला उस बरसते हुए पानी को बांध द्वारा एक जगह पर रोककर कन्द नामक छन्द की पद-रूपी क्यारियों मे बहाने वाले सिद्धहस्त माली का अद्भुत चमत्कार है।"

कहना न होगा, कन्नड-साहित्य की यह महत्वपूर्ण लब्धि है। इसके महत्व को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है—"नागवर्मा प्रथम द्वारा अनुवादित 'कन्नड़ कादम्बरी' संस्कृत से अनुवादित होने पर भी मौलिकता से युक्त होने के कारण कन्नड़-साहित्य की अमूल्य निधि है।"

'छन्दोम्बुधि' नागवर्मा प्रथम की दूसरी रचना है। यह काव्य-शास्त्रीय ग्रन्थ है। इसमे छन्द शास्त्र का सम्यक् विवेचन किया गया है। कन्नड़ भाषा मे लिखी गयी छद-शास्त्र-विषयक् यह पहली उपलब्ध रचना है।

## नागवर्मा द्वितीय

बारहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे चालुक्य वशी नरेश जगदेकमल्ल के आश्रय मे नागवर्मा द्वितीय ने कन्नड मे महत्वपूर्ण साहित्य रचा था। कहते हैं, नागवर्मा द्वितीय प्रसिद्ध कवि जन्न [रचनाकाल सन् 1206 ई० से 1230 ई०] का गुरु था। इसने साहित्य का अध्ययन करने के निमित्त विभिन्न शास्त्रीय विषयो पर विस्तृत विवेचनात्मक ग्रथ लिखे थे। नागवर्मा द्वितीय द्वारा लिखित ग्रथो में 'शब्द-स्मृति, 'भाषा-भूषण', 'काव्यावलोकन', 'वस्तु-कोश', 'छन्दोविचित' आदि के नाम उल्लिखित किये जाते हैं, जबकि उपलब्ध रचनायें केवल तीन हैं—'काव्यावलोकन', 'कर्नाटक भाषा-भूषण' तथा 'वस्तु-कोश'।

इसी सन्दर्भ मे यह बात ध्यान देने योग्य है कि 'कविराज-माग' के अन्तर्गत केवल अलकार-शास्त्र की, और नागवर्मा प्रथम रचित 'छन्दोम्बुधि' मे केवल छन्द-शास्त्र की ही विवेचना की गई है, जबकि नागवर्मा द्वितीय ने साहित्य के विभिन्न अगो (व्याकरण, भाषा, अलकार, छद आदि) की विवेचना अपने साहित्य मे उपस्थित की। विभिन्न काव्यागो का निरूपण करने वाले ग्रथो को कन्नड़ मे लिखकर नागवर्मा द्वितीय ने इतिहास मे ऊँचा स्थान बना लिया है। सच तो यह है कि वह केवल पूर्ववर्ती कवियों और आचार्यों का अनुकरण-कर्त्ता पण्डित ही नही था, बल्कि 'वह एक मौलिक विवेचक, विमर्शक और विद्वान् भी था।" ऐतिहासिक दृष्टिकोण से उसके साहित्य का महत्व बहुत अधिक है।

नागवर्मा द्वितीय द्वारा लिखित ग्रन्थो का सक्षिप्त परिचय इस प्रकार दे सकते हैं—

'काव्यावलोकन' नागवर्मा द्वितीय का पहला उपलब्ध ग्रन्थ है। इसके अन्तर्गत साहित्य [ अर्थात्—काव्य ] के सभी विभिन्न अगो की

पूर्ण एव सम्यक् विवेचना की गई है। ग्रन्थ का पहला भाग 'शब्द-स्मृति' है, जिसके अन्तर्गत कन्नड भाषा के व्याकरण की विवेचनात्मक चर्चा की गई है। अन्य भागो में काव्य-गुण, दोष, रीति, कवि-समय आदि की विवेचना हुयी है। ग्रन्थ मे उदाहरण के रूप मे पूर्ववर्ती कवियो तथा स्वय ग्रन्थकार द्वारा लिखित अनेक पद दिये गये हैं।

'कर्नाटक भाषा-भूषण' नागवर्मा द्वितीय का दूसरा ग्रन्थ है। इसकी रचना सस्कृत मे की गई है। इसके अन्तर्गत 269 सूत्रों मे कन्नड भाषा का व्याकरण दिया गया है। साथ ही उन सूत्रो की टीका (व्याख्या) भी दी गई है। सम्पूर्ण ग्रन्थ सस्कृत भाषा मे है।

'वस्तु-कोश' इस लेखक का तीसरा ग्रन्थ है। विविध छन्दों मे लिखा गया यह ग्रन्थ सस्कृत-कन्नड भाषाओ का कोश (dictionary) है। कन्नड भाषा का यह पहला शब्द-कोश है।

तेरहवीं शताब्दी के कवि जन्न ने अपने आचार्य-गुरु के लिए 'जिनेन्द्र-पुराणकर्ता' विशेषण का प्रयोग किया है। इस विशेषण के आधार पर यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि नागवर्मा द्वितीय ने अन्य ग्रन्थों के अलावा एक जैन पुराण भी लिखा होगा—और यह अनुमान सत्य भी हो सकता है, क्योकि उसका साहित्य उसकी असाधारण काव्य-प्रतिभा और कवित्व-शक्ति का परिचय दे सकने मे पूर्ण समर्थ है।

## नयसेन [सन् 1112 ई०]

नयसेन एक जैन साधु था। मारवाड जिले के मुगुन्द नामक कस्बे का निवासी नयसेन जैन-धर्माचार्य एव मुनि था। उसने 'धर्मामृत' शीर्षक से एक चम्पू ग्रथ लिखा। इसमे 14 आश्वास (सर्ग या परिच्छेद) हैं जिनके अन्तर्गत चौदह महारत्न कहलानेवाले गुणव्रतो मे से एक-एक पर आचरण करते हुए निर्वाण प्राप्त करनेवाले 14 महापुरुषो की कथाएँ हैं। नयसेन की शैली सरल, सुबोधगम्य और लोकप्रिय 'देसी' शैली है। उसने स्वय 'धर्मामृत' की भूमिका में लिखा है—"मैंने अपने युग के साहित्य में प्रयुक्त होनेवाले आवश्यक सस्कृत-शब्दो के प्रयोग से बचकर लोकप्रिय 'देसी' शैली का आश्रय लिया है।"

कहना न होगा, नयसेन से पहले के सभी जैन पुराण दुर्बोधगम्य प्रौढ़ शैली में लिखे गये थे, किन्तु कालान्तर मे शान्तिनाथ ने 'सुकुमार चरित' लिखकर जिस सरल, सुबोध शैली का आरम्भ किया था, नयसेन ने उसी को आगे बढ़ाते हुए महापुरुषो के जीवन-चरित्रो को जन-सामान्य के लिए प्रस्तुत किया है।

## कर्णपार्य [सन् 1140 ई०]

कर्णपार्य लिखित 'नेमिनाथ पुराण' के अन्तर्गत जैन-धर्म के 21वें तीर्थंकर की कथा के साथ-साथ कृष्ण, पाण्डव तथा महाभारत के युद्ध की भी कथाएँ सक्षेप में वर्णित मिलती हैं।

## जगद्दल सोमनाथ [सन् 1150 ई०]

इसने सस्कृत भाषा के प्रसिद्ध आयुर्वेद-ग्रंथ पूज्यपाद कृत 'कल्याण-कारक' का कन्नड़-अनुवाद किया है। कन्नड़ में वैद्यक-शास्त्र की यह प्राचीनतम पुस्तक है।

## ब्रह्मशिव [सन् 1150 ई० (लगभग)]

ब्रह्मशिव पहले जैन था। लिंगायत सम्प्रदाय स्वीकार करके उसे छोडने के बाद पुन जैन धर्म मे इसने प्रवेश लिया था। इसके दो ग्रन्थ हैं—'त्रैलोक्य चूडामणि' तथा 'समय-परीक्षा'। 'त्रैलोक्य चूड़ामणि' में 36 महावीर जिनके स्तुतिपरक पद्य हैं, तथा 'समय-परीक्षा' 15 अधिकारो का एक बडा ग्रंथ है। इसमें तद्‌युगीन जन-जीवन का सुन्दर चित्रण हुआ है। ये दोनों ग्रंथ मत-प्रचार की दृष्टि से लिखे गये हैं। इनमे जैन-धर्म की प्रशसा तथा अन्य सम्प्रदायो की खुलकर निंदा की गई है।

## कन्ति [सन् 1100 ई० (?)]

कन्ति एक जैन-भिक्षुणी थी। कन्ति के विषय में एक उक्ति प्रसिद्ध है। इस उक्ति के अनुसार, "अभिनव पम्प धर्ममूलक प्रश्न करता था और कन्ति उसके प्रश्नों का उत्तर दिया करती थी।" इस उक्ति से दो बातें स्पष्ट हैं कि कन्ति का ज्ञान विस्तृत एवं गहन था। दूसरे, उसका काल अभिनव पम्प के आसपास ही होना चाहिए। कन्ति द्वारा लिखित एकमात्र पुस्तक "कन्ति और हम्प (पम्प) की समस्याएँ" प्राप्त होती है जिसकी भाषा बहुत अधिक आधुनिकता लिए हुए है। अत इस ग्रन्थ की रचना कब हुयी थी, यह निश्चित नहीं कहा जा सकता।

### पम्प-युगीन साहित्य की विशेषताएँ

ऊपर कन्नड साहित्य के दूसरे युग 'पम्प-युग' के साहित्यकारों तथा उनके द्वारा लिखे गये ग्रंथो की सक्षिप्त विवेचना की गई है। उक्त विवेचना के आधार पर इस युग की कतिपय प्रमुख साहित्यिक विशेषताओ को सार-रूप मे निम्न प्रकार से लिखा जा सकता है—

1. इस युग के अधिकांश कवि जैन-मतावलम्बी थे। इनके अतिरिक्त कुछ शिलालेखो के लेखक और कन्नड-साहित्य के प्रणेता ब्राह्मण

साहित्यकार भी थे। इन लोगो की स्वतंत्र रचनाएँ नगण्य हैं। प्राय. सभी शिलालेखों के लेखक शैव ब्राह्मण थे जिनमे वीर रस की प्रधानता है।

2 काव्य-विषय की दृष्टि से इस युग में मुख्यतया दो प्रकार के काव्य लिखे गये—लौकिक तथा धार्मिक। इन दो प्रकारों के काव्य लिखने की परम्परा श्रीगणेश पम्प-पूर्व-युग मे ही गुणवर्मा प्रथम तथा अन्य पूर्ववर्ती कवियों द्वारा किया गया था।

3. लौकिक काव्यो की कथावस्तु रामायण तथा महाभारत से लेते हुए इस युग के कवियो ने ध्वन्यात्मक अथवा अपरोक्ष रूप से अपने आश्रय-दाता राजाओ के जीवन-चरित्र को प्रस्तुत किया है। फलस्वरूप तद्युगीन राजनैतिक परिस्थितियाँ एव जन-जीवन की बातें स्वत. चित्रित हो गई हैं। इस प्रकार की ध्वन्यात्मक पद्धति द्वारा किसी अन्य व्यक्ति का जीवन-चरित्र लिखना कन्नड़-साहित्य की प्रमुख विशेषता है।

4 धार्मिक काव्य—जिन्हे 'आगमिक काव्य' भी कहते हैं—मे तीर्थंकरों, जैन-धर्म की कथाओ मे आनेवाले चक्रवर्तियो तथा अन्यान्य महा-पुरुषों की जीवनियों (biographies) को चित्रित किया गया है। इस प्रकार की काव्य रचना का एकमात्र उद्देश्य जैन-धर्म का प्रचार करना ही रहा है। ऐसे काव्यो की रचना-स्वरूप ही इस युग मे एक नया काव्य-भेद सामने आया। इस काव्य भेद अथवा काव्य-रूप को 'जैन-पुराण' की संज्ञा दी गई जिसका पम्प-युग में पर्याप्त प्रचार हुआ।

5 'चम्पू' नामक काव्य-भेद इस युग मे अपने चरम विकास को प्राप्त हुआ और उसे साहित्याचार्यों द्वारा प्रामाणिकता प्राप्त हुयी। इस काव्य रूप का इतना अधिक प्रचार हुआ कि अन्त मे यह अन्धानुकरण का अवसर देनेवाली छायामात्र बनकर रह गया। यद्यपि चम्पू-काव्य मे गद्य-पद्य मिश्रित शैली ही होती है, किन्तु आगे चलकर उसमें कई अन्य बातो का भी सयोग हो गया। फलत सस्कृत चम्पू ग्रन्थो से भिन्न कन्नड भाषा मे एक नये प्रकार के 'चम्पू-काव्य' का जन्म हुआ जिसे 'कन्नड़ चम्पू-काव्य' कहा गया। इस काव्य-रूप मे 'देसी' [लोक-प्रचलित जन-सामान्य की कन्नड भाषा] तथा 'मार्ग' [रूढिगत सस्कारयुक्त साहित्यिक कन्नड़] के साथ साथ कवि की प्रतिभा तथा कवि-काल जैसी बातो का भी समन्वय दिखाई देता है। दूसरी भिन्नता यह है कि कन्नड के इस नये काव्य-रूप मे सस्कृत-महाकाव्य के मुख्य लक्षणों के सयोग के साथ-साथ कन्नड़ के 'कन्द' नामक विशिष्ट छदो से युक्त 'रगले', 'अक्कर', 'त्रिपदी' जैसे लोक छदो का समावेश भी हुआ।

इनके अतिरिक्त 'कन्नड चम्पू-काव्य' मे जैन-पुराणो की विशिष्ट वस्तुएँ, रस-निरूपण, मत-प्रतिपादन आदि विशेषताएँ भी अन्तर्निहित हैं।

6. इस युग की रचनाओ मे यद्यपि सभी प्रकार नवों रस प्रयोग मे आए हैं, किन्तु प्रधानता वीर रस, रौद्र रस [लौकिक काव्यो मे], अद्‌भुत रस तथा शान्त रस [धार्मिक काव्यो मे] की रही है। इस युग की एकमात्र रचना, नागवर्मा प्रथम द्वारा रचित, 'कन्नड कादम्बरी' ही ऐसा अपवाद है जिसमे शृगार रस की प्रधानता है।

7. इस युग के साहित्य पर सस्कृत-साहित्य तथा भाषा का गहरा प्रभाव रहते हुए भी उसे सस्कृतमय नहीं कह सकते। वास्तव मे इस युग के कवियो ने अपनी प्रतिभा के बल पर सस्कृत के अपरिहार्य प्रभाव को बनाये रखकर, उसका समुचित ढग उपयोग करते हुए कन्नड के देशज प्रभाव को बनाये रखने का पूरा प्रयत्न किया है। जिन ग्रथो में सस्कृत का आवश्यकता से अधिक अनुकरण किया गया है, वहाँ कवि की प्रतिभा कुठित हो गयी है और सर्वत्र एक प्रकार की यान्त्रिकता, एकरूपता और नावीन्य-शून्यता दिखाई देती है।

8 इसी युग मे जब साहित्य प्रौढता की स्थिति पर पहुँच गया और उसका मर्यादित स्वरूप निर्धारित हो गया तो सरल भाषा मे गद्य की अधिकता लिए हुए चम्पू-शैली में कथा-साहित्य की रचना आरम्भ हुयी जिसका प्रमाण है—दुर्गसिंह का 'पचतत्र' और नयसेन का 'धर्मामृत'। नयसेन ने तो प्रौढ कवियो की सस्कृत का अनुकरण करते रहने की परम्परा के विरुद्ध कार्य करते हुए नवीन कन्नड का बिगुल फूंक ही दिया। उसने जन-साधारण की भाषा में जैन-धर्म का प्रचार किया। नयसेन के बाद ब्रह्मशिव ने एक कदम और आगे बढकर समाज की आलोचना करते हुए 'समय-परीक्षा' के माध्यम से अपने मत का प्रचार किया।

9. पूर्व-पम्प-युग में 'वड्डाराधने' के माध्यम से जिस गद्य-कथा-शैली का शिलान्यास हुआ था, इस युग में उसी कथा-गद्य-शैली ने 'चाउण्डराय पुराण' के अन्तर्गत अपना विशिष्ट स्वरूप बना लिया।

10. इस युग के ब्राह्मण साहित्यकारों की लगभग सभी रचनायें अनुवादित ग्रन्थ हैं। उन्होंने सस्कृत-ग्रन्थो का कन्नड अनुवाद करके कन्नड़-साहित्य मे 'अनुवाद साहित्य' को विशिष्ट स्थान दिलाया। सन् 1070 ई० मे ब्राह्मणवशी नागवर्माचार्य द्वारा लिखित 'चन्द्र-चूड़ामणि-शतक' ही एकमात्र मौलिक और स्वतन्त्र रचना है। कन्नड-साहित्य में लिखा गया यह पहला शतक है।

11. कन्नड-साहित्य के तृतीय युग 'बसव युग' का आरम्भ इसी युग के अन्तिम काल (11वी सदी के अन्त तथा 12वीं शताब्दी के आरम्भ) मे हो गया था।

## पम्प-युगीन साहित्य का मूल्यांकन

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि पम्प-युग मे विविध-विषयक् साहित्य लिखा गया। दो शताब्दियों के इस साहित्यिक युग मे अनेक जाज्वल्यमान साहित्यकारो ने अपना अपूर्व योग दिया। इस युग के साहित्य में महाकवि आदि पम्प द्वारा चलाई गई चम्पू-काव्य-परम्परा आश्चर्यजनक गति से अंकुरित, पुष्पित और पल्लवित हुयी। साहित्य मे वीर रस के साथ-साथ धार्मिक भावना के अद्भुत समन्वय से साहित्य के प्रत्येक अगों मे समन्वयशीलता का एक नया पौधा विकसित, पुष्पित हुआ। चम्पू-काव्य अपनी प्रौढ़ता की चरम सीमा पर पहुँचकर धीरे-धीरे जन-साधारण के बोधगम्य स्तर पर लालित्य और सरलता को लेकर नीचे उतरता चला आया।

यद्यपि यह सच है कि इस युग पर संस्कृत भाषा और ग्रन्थो का प्रचुर प्रभाव रहा है, यहाँ तक कि महाकवियो मे लेकर साधारण कवि तक इस प्रभाव से अपने को मुक्त नही करा सके हैं, किन्तु साथ ही इस सत्य को भी झुठलाया नही जा सकता कि कन्नड साहित्य के भावी युग मे पनपनेवाले क्रान्तिकारी-परिवर्तनमूलक बीजो का आरोपण इसी युग मे हो गया था।

10वी शताब्दी मे आदि पम्प, रन्न और पोन्न जैसे प्रतिभाशाली महाकवियों ने जो अमूल्य ग्रन्थ कन्नड-साहित्य को अर्पित किये, उनके आधार पर ही 10वीं शताब्दी का कन्नड़-साहित्य का स्वर्ण-युग कहा जाता है।

11वीं शताब्दी में यद्यपि कोई चोटी का साहित्यकार नही दिखाई देता है, न ही इस शताब्दी का साहित्य 10वीं शताब्दी के समान स्तर का है, तथापि वह निस्सार भी नहीं है। उसमे 10वीं शताब्दी की परम्परा को जारी रखते हुये भी, उसकी प्रौढ़ता को जन-सामान्य के स्तर पर जैन-मतावलम्बी लेखको तथा ब्राह्मणो द्वारा लाया गया।

# 5. कन्नड़-साहित्य का तीसरा युग : बसव-युग

## परिचय

कन्नड-साहित्य का तीसरा युग 'बसव-युग' कहलाता है। इसका नामकरण युग के महान् वीर-शैव धर्म अथवा लिंगायत सम्प्रदाय के संस्थापक, युग-पुरुष, भक्ति भण्डार बसवेश्वर के नाम पर किया गया है। इस युग की काल-सीमा सन् 1160 से लेकर सन् 1400 ई० तक है। अर्थात् इस युग मे लगभग 400 वर्षों का कन्नड-साहित्य समाहित किया गया है।

किन्तु, जैसा कि इस युग के नाम से स्पष्ट है, इसका नामकरण लिंगायत-सम्प्रदाय के संस्थापक बसलेश्वर के नाम पर किया गया है। अत. इस युग में केवल वीर-शैव सम्प्रदाय से सम्बन्धित साहित्य—जो 'वचन-साहित्य' के नाम से प्रसिद्ध है—की ही रचना हुयी हो, ऐसा नही है। इस युग के सम्पूर्ण साहित्य को निम्नलिखित चार विभागों में बाँटा जा सकता है—

1. वचन-साहित्य,
2. शिव-भक्ति साहित्य,
3. जैन धर्मपरक साहित्य,

तथा, 4 ब्राह्मण लेखको द्वारा लिखा गया साहित्य।

उल्लेखनीय है, इस युग से पहले का जन-जीवन और साहित्य अधिकांशतः परम्परागत था। किन्तु बसव-युग से एक नई क्रान्ति का सूत्रपात हुआ। पूर्ववर्ती परम्पराओ और रूढ़ियो को तोडकर जीवन और साहित्य

को एक नई दिशा प्रदान की गई। धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र मे अनेक मौलिक परिवर्तन आए और इनके विरोधस्वरूप गहरी प्रतिक्रियाएँ हुयी। फलत प्राचीनता और नवीनता का सघर्ष हुआ जिसका गहरा प्रभाव कन्नड-साहित्य पर पड़ा। जन-जीवन मे एक नये प्रकार की धार्मिक श्रद्धा, आध्यात्मिक तेज और परीक्षण बुद्धि पनपने लगी। आचार्य-कवियो के साथ-साथ आध्यात्मिक व्यक्तियों तथा 'अनुभावियो' ने साहित्य सृजन किया और कन्नड-साहित्य में एक नये प्रकार का साहित्य फलने-फूलने लगा।

## बसव-युगीन राजनीतिक व धार्मिक उथल-पुथल

बसव युगीन कर्नाटक प्रदेश की राजनैतिक व धार्मिक परिस्थितियो को सकेत रूप मे इस प्रकार बताया जा सकता है—

1. ग्यारहवीं शताब्दी के समाप्त होते होते कल्याण के चालुक्य वश का वैभव विक्रमादित्य षष्ठम् और सोमेश्वर तृतीय तक उन्नति के शिखर पर जा पहुँचने के बाद पतन की ओर अग्रसर हो गया।

2. चालुक्यों के बाद कळचूरि वश का अभ्युदय हुआ और बिज्जल 'निजभुज-बलचक्रवर्ती', महामण्डलेश्वर हो गया। उस समय चालुक्य वश की गद्दी पर नाममात्र के लिए तैलप तृतीय बैठा हुआ था। वास्तव मे राज्य-सचालन का सारा भार बिज्जल के हाथो मे ही था। बिज्जल का 20-25 वर्षो का राज्यकाल राजनीतिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण न होते हुए भी धार्मिक दृष्टि से बहुत अधिक महत्वपूर्ण था। बसवेश्वर इसी बिज्जल का एक मन्त्री था।

3 उधर दक्षिण कर्नाटक में होयसल वश ने, विष्णुवर्धन के समय से प्रबल होकर राज्य-विस्तार आरंभ किया।

4. कळचूरि वश का सूर्य कुछ ही समय बाद अस्त हो गया और उत्तर कर्नाटक मे यादवों का अभ्युदय हुआ।

5 13वी शताब्दी में यादवो और होयसलो के बीच निरन्तर चलते रहने वाले सघर्ष से उत्तर कर्नाटक दुबल होता चला गया। इस अवसर का लाभ उठाया मुसलमान बाह्मनी राज्यो ने। इनके लगातार हमले कर्नाटक पर होने लगे। अलाउद्दीन खिलजी और मलिक काफूर ने होयसलों तथा यादवों को कुचलकर उन्हें दिल्ली का सामन्त बना दिया। तत्पश्चात् क्रूर हिंसा का ताण्डव-नृत्य आरम्भ हुआ। मन्दिरों के विनाश से जनता में हाहाकार मच गया। दक्षिण भारत में मदुरा मुसलमानो की राजधानी बनी। मदुरा

के होयसल वंशी राजा की खाल खिंचवाकर उसे मदुरा के द्वार पर लटका दिया गया। दक्षिण भारतीय हिन्दू संस्कृति के लिए यह समय बड़ा ही दुर्भाग्य-पूर्ण रहा।

6. तदुपरान्त 14वीं शताब्दी के आरम्भिक चरण में विद्यारण्य की प्रेरणा और होयसल राजाओं के चातुर्य से विजयनगर में हरिहर और बुक्क ने मिलकर संगम वंश का राज्य स्थापित किया। ये दोनों सगे भाई थे और इनके पिता-संगमदेव मूलतः होयसल राजाओं के वंशज थे। विजयनगर राज्य शीघ्र ही अभेद्य-शक्ति का केन्द्र बनकर साम्राज्य बन गया।

7. 15वीं शताब्दी के आते-आते विजयनगर साम्राज्य ने मुसलमानों की प्रगति को रोककर, जन-जीवन को संगठित करते हुये विभिन्न हिन्दू धर्मों को प्रश्रय दिया।

इस प्रकार 12वीं शताब्दी (मध्य) से पन्द्रहवीं शताब्दी तक कर्नाटक में अनेक राज्यों का उत्थान पतन, अभ्युदय और अस्तापन हुआ। उथल-पुथल से भरी निरन्तर परिवर्तनशील राजनीतिक परिस्थितियों के साथ ही जन-जीवन पर भी गहरा असर पड़ा। धर्म, कला तथा साहित्य इन परिवर्तनों के प्रभाव से अछूते नहीं रह सके। राजनीतिक उथल-पुथल के साथ ही जन जीवन में भी उतार-चढ़ाव आए। इस प्रकार के प्रभावों को निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है—

8. चालुक्य-राज्य में उनके साथ-साथ समाज और साहित्य भी निरन्तर उन्नति और प्रगति के पथ पर अग्रसर होता रहा, और जब-जब उन पर हमले हुये, समाज पर भी गहरा आघात पहुँचा।

9. फिर आया, विजयनगर साम्राज्य का काल। इस काल में साहित्य, कला, शिक्षा, संस्कृति, वैभव तथा विभिन्न हिन्दू धर्म सम्प्रदायों में पारस्परिक समन्वयता आदि के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुयी। मुस्लिम राजाओं के हमलों से त्रस्त, भयभीत जन-जीवन को नवीन धर्म-सम्प्रदायों, अथवा मतों एवं पथों के अभ्युदय से बड़ा सहारा मिला।

10. कहना न होगा, 12वीं शताब्दी के मध्य तक जैन-धर्म अपनी उन्नति के चरम शिखर पर पहुँचने के बाद क्रमशः धूमिल पड़ता गया, उसमें शुष्कता और निष्प्राणता आती चली गई, और अब वह मात्र रूढ़ियों का ढेर बन गया था। उसके पास अपने प्राचीन उत्कर्ष की गौरव-गाथा के अलावा शेष कुछ भी नहीं बचा था। अब तो वह उसी की रक्षा करने में लगा हुआ था, जो कुछ भी उसके पास राज्याश्रय समाप्त हो जाने के बाद

बच गया था। उसमे इतनी भी शक्ति शेष नही रह गयी थी कि वह प्रतिक्रियास्वरूप पैदा होकर लोकप्रिय होने वाले भक्ति-प्रधान नवीन सम्प्रदायो के आकर्षण को रोक सके। वह लगभग मृतप्राय हो गया था।

11. दूसरी ओर वैदिक-धर्मावलम्बी लोग नीरस, आकर्षणरहित, कोरे आचार का एक भयानक जाल फैलाये हुए थे। धार्मिक दम्भ, अन्ध-विश्वास और ऊँच नीच की भावना से जनता मे अन्दर ही अन्दर ज्वालामुखी पनप रहा था। जनता इन लोगो के जाल से बचने का रास्ता ढूंढ रही थी।

12. ऐसे ही समय मे बसवेश्वर का उदय हुआ। बसवेश्वर ने अपने प्रभुदेव, सिद्धराम आदि सहयोगी 'शिवशरणों' [लिंगायत सम्प्रदाय के आचार्य] के साथ मिलकर त्रस्त समाज के लिए एक नया मार्ग प्रशस्त किया, उसकी बुराइयो के विरुद्ध युद्ध आरम्भ किया। बसवेश्वर का यह नया सम्प्रदाय 'वीर-शैव मत' अथवा 'लिंगायत-सम्प्रदाय' के नाम से कर्नाटक मे प्रसिद्ध हुआ।

13. बसवेश्वर के युग मे देश मे अनेक शैव सम्प्रदाय प्रचलित थे। कर्नाटक मे उस समय 'वैदिक पथी आराध्य शैव-मत' तथा 'आगमनिष्ठ पाशुपत-सम्प्रदाय' के अलावा काश्मीर, तमिळ देश ( आधुनिक तमिळ-नाडु – मद्रास राज्य) तथा आन्ध्र मे भी शैव-मतो का प्रचार था। बसवेश्वर तथा उसके अनुयायियो* ने इन सभी शैव-सम्प्रदायो का गहन अध्ययन करने के उपरान्त सबका सार ग्रहण करते हुए अपने नये मत 'वीर-शैव' या 'लिंगायत' सम्प्रदाय के द्वारा सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र मे नयी क्रान्ति पैदा की।

लिंगायत-सम्प्रदाय के लक्ष्य को स्पष्ट करते हुए श्री आर० एस० मुगलि का यह मत उल्लेखनीय है "उनका [ शिवशरणो का ] मुख्य लक्ष्य किसी नये सम्प्रदाय की स्थापना करना या दूसरे प्रचलित मतो का खण्डन करना नही था, बल्कि वे मानव-प्रेम, नीति-निष्ठा, शिव-भक्ति और मानव-समानता के सिद्धान्तो को मानने वाली एक नयी समाज-व्यवस्था तथा उसी के आदर्शों के अनुरूप उच्च शरण-मार्ग पर चलने वाले दिव्य जीवियों अनुभाव** गोष्ठी की स्थापना का स्वप्न देखते थे। 'मनसा-वाचा-

---

* लिंगायत अथवा वीर शैव सम्प्रदाय के अनुयायियो तथा वचन-साहित्य के लेखको को 'शिवशरण'—अर्थात् 'शिव की शरण मे आया हुआ' —कहते हैं।

** शिव-तत्व [ 'शिव' शब्द के दो अर्थ हैं—'भगवान् शकर' और 'कल्याण' ] के प्रेम मे तल्लीनता, उसके साथ एकता व तादात्मयता

कर्मणा' से वे इस मार्ग का अनुगमन करते थे।'' 'मगर तद्युगीन साम्प्रदायिक समाज इन ( लिंगायत सम्प्रदाय ) के सिद्धान्तो को पचा न सका। कुछ समय बाद ही वह अपने पुराने ढर्रे पर चलने लगा। मुस्लिम आक्रमणो से त्रस्त जनता मूक, विमूढ-सी देखती रही, और अन्त मे विजयनगर-साम्राज्य की छत्रछाया मे एक होकर एकत्र हुयी। वैदिक, जैन और लिंगायत—जैसे सभी सम्प्रदायो ने अपने सारे पारस्परिक वैर-विरोधों को भुलाकर एक नया समन्वय-मार्ग ग्रहण किया—यहाँ तक कि इस्लाम भी अपने को इस सम्मिलित ग्रथन से अलग न रख सका।''' और इस तरह कन्नड-सस्कृति ने अपने ढग से विविधता मे एकता लाते हुए उसे प्रमाणित कर दिखाया।''

## लिंगायत-सम्प्रदाय : सक्षिप्त परिचय

जैसा कि अभी कहा जा चुका है, जैन-धर्म की निरन्तर बढती हुयी रूढिबद्धता, तथा निष्प्राणता एवम् वैदिक धर्म की नीरस आचार-पद्धति की प्रतिक्रिया-स्वरूप कर्नाटक में, देश भर के समस्त प्रचलित शैव-सम्प्रदायों की अच्छाइयो को आधार मानकर, बिज्जल के मन्त्री, तद्युगीन महापुरुष बसवेश्वर ने अपने सहयोगियो की सहायता से जन-जीवन का उद्धार करने के उद्देश्य से एक नया पथ 'वीर-शैव सम्प्रदाय' अथवा 'लिंगायत-सम्प्रदाय चलाया। बसवेश्वर द्वारा चलाया गया यह लिंगायत-सम्प्रदाय केवल कर्नाटक तक ही सीमित रहा। इसके अनुयायियो की सख्या सबसे अधिक बेळगाँव, बीजापुर तथा धारवाड जिले मे है। कुछ प्रभाव आन्ध्र मे भी दृष्टव्य होता है। अतएव इस सम्प्रदाय का सक्षिप्त परिचय देना यहाँ आवश्यक-सा हो जाता है।

### लिंगायत सम्प्रदाय के लक्षण

लिंगायत सम्प्रदाय के कतिपय प्रमुख लक्षण निम्न हैं—

1 लिंगायत लोग ( स्त्री या पुरुष दोनो ) एक शिव-लिंग को चाँदी या लकडी की डिबिया मे बन्द करके किसी तागे की सहायता से यज्ञोपवीत

---

स्थापित करने की अनुभूति को लिंगायत सम्प्रदाय के अन्तर्गत 'अनुभव' या 'अनुभाव' कहते हैं, तथा जो आध्यात्मिक व्यक्ति ऐसा अनुभव करते हैं, वे 'अनुभावी' कहलाते हैं। अनुभाव की स्थिति वह स्थिति है जबकि मनुष्य शिव-प्रेम मे इतना डूब जाता है, इतना मस्त हो जाता है कि उसे अपना अस्तित्व ही याद नही रहता। वह शिवैक्य की स्थिति मे पहुँच कर एकाकार हो जाता है।

की तरह गर्दन मे लटकाकर पहनते हैं। लिंग-धारण करने की यह क्रिया द्विजो के उपनयन-संस्कार की भाँति लिंगायत-सम्प्रदाय मे 'लिंग-धारण-संस्कार' कहलाती है।

2 ये लोग शाकाहारी अर्थात् निरामिष-भोजी होते हैं।

3. इनके हाथ का पकाया हुआ भोजन ब्राह्मणो के अलावा सभी खा लेते हैं। न तो ब्राह्मण इनके हाथ का पका भोजन खाते हैं, न ये लोग ब्राह्मणो के हाथ का पका हुआ भोजन खाते है। इस प्रकार ब्राह्मणो और लिंगायतो के बीच गहरा विरोध भाव पाया जाता है। इसका मूल कारण ब्राह्मणो की अहमन्यता, अपने को सर्वश्रेष्ठ, सर्वोपरि समझने की दम्भमूलक भावना और छुआछूत की अस्पृश्यतामूलक भावना ही रही है जिसके विरोधस्वरूप ही लिंगायत-सम्प्रदाय का जन्म और प्रचार हुआ है।

4 कोई भी व्यक्ति, चाहे वह किसी धर्म का हो, किसी जाति का हो—यहाँ तक कि, अछूत भी—लिंग धारण करके इस सम्प्रदाय मे दीक्षित हो सकता है। जातिभेद लिंगायत-सिद्धान्त के विरुद्ध है।

5 इनमे मुर्दों (dead bodies को जमीन मे गाड़ने की प्रथा है। ये लोग मुर्दों को जलाते नही हैं।

6 इनमे विधवा-विवाह सर्वमान्य और विहित है।

7 प्राचीन धर्म-ग्रन्थो की सख्या 28 है तथा ये सभी सस्कृत मे लिखे हुए हैं। ये ग्रन्थ शिव-आगम कहलाते हैं। सस्कृत की एक पुस्तक 'शिवगीता' पर इनकी विशेष श्रद्धा है। सस्कृत न जाननेवाले लोग 'बसव-पुराण' तथा 'चन्नबसव-पुराण' को ही धर्मग्रन्थ मानकर पढ़ते हैं, परन्तु विद्वान् लोग संस्कृत मे लिखे आगम-ग्रन्थो को ही सर्वोच्च एव प्रामाणिक मानते हैं।

8 इनका मूल पचाक्षरी मन्त्र 'नमः शिवाय' तथा षडाक्षरी मन्त्र 'ॐ नमः शिवाय' है।

लिंगायत-सम्प्रदाय के दर्शन, सिद्धान्तो आदि के सम्बन्ध मे विस्तृत जानकारी के लिए पाठकों को कोई प्रामाणिक पुस्तक देखनी चाहिये। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि अपने युग में कर्नाटक में लिंगायत-सम्प्रदाय सर्वाधिक लोकप्रिय हुआ तथा इसे राज्याश्रय भी प्राप्त था।

## (1) वचन-साहित्य

लिंगायत-सम्प्रदाय के अनुयायियो—शिवशरणो ने उपदेश के रूप मे जो कुछ भी साहित्य लिखा, वह 'वचन-साहित्य' कहलाता है। वचन-

साहित्य के कुछ प्रमुख साहित्यकारो ( शिवशरणो ) का साकेतिक विवरण तालिका के रूप मे देने के बाद उनकी कृतियो पर विचार किया जायेगा।

प्रमुख वचनकार

| लेखक | काल | रचनायें |
|---|---|---|
| 1. बसवेश्वर या बसव | 12वी शताब्दी का मध्य भाग (लगभग) | 1000 के लगभग फुटकर वचन। |
| 2. अल्लमप्रभु या प्रभुदेव | " | कुछ फुटकर वचन। |
| 3. सिद्धराम | " | 1 मिश्रस्तोत्र-त्रिविधि, 2. बसवस्तोत्र-त्रिविधि 3. अष्टावरणस्तोत्र त्रिविधि, 4. कालज्ञान, 5. मन्त्रगोप्य, 6. 851 फुटकर वचन। |
| 4. चेन्न बसवण्ण या चन्न बसवेश्वर | " | 1 वचन, 2. करण-हसुगे, 3 मिश्रार्पण, 4 मन्त्रगोप्य, 5 कालज्ञान, 6 रुद्रभारत की दृष्टि। |
| 5. महादेवियक्का | " | 1. योगाग-त्रिविधि, 2 वचन। |

इस तालिका से स्पष्ट है कि वचन-साहित्य के पाँच ही प्रमुख रचनाकार हैं जिन्होने उपदेश के द्वारा वचन साहित्य की सर्जना करते हुए कन्नड-साहित्य को एक नई दिशा दी। आगे इन वचनकारो के जीवन-साहित्य का सक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

## पूर्व-बसवेश्वर वचन-साहित्य

बसवेश्वर आदि शिवशरणों द्वारा रचित साहित्य को वचन-साहित्य कहकर पुकारा जाता है, किन्तु वचन-साहित्य की रचना बसवेश्वर से काफी पहले आरम्भ हो चुकी थी। जेडर दासिमय्या उर्फ देवर दासिमय्या, शंकर दासिमय्या, प्रभुदेव आदि लेखको ने बसवेश्वर से पूर्व ही वचन-लेखन आरम्भ कर दिया था। इनके लिखे वचन दृष्टान्तो तथा कहावतो के रूप मे

बहुत प्रसिद्ध हैं। प्रभुदेव को ही 'प्रभुलिंग' तथा 'अल्लमप्रभु' कहकर पुकारा जाता था। वह बड़ा ज्ञानी था। लेकिन चूँकि बसवेश्वर को अधिक महत्व दिया गया है, अतः प्रभुदेव के साहित्य की विवेचना बसवेश्वर के बाद की जायेगी।

उल्लेखनीय है, प्रभुदेव ज्ञान-योगी थे और बसवेश्वर कर्म-योगी। इस तरह दोनो ही एक-दूसरे के पूरक थे।

## बसवेश्वर

जीवन-वृत्त—बसवेश्वर को प्राय बसव के नाम से पुकारा जाता है। यह लिंगायत-सम्प्रदाय के सस्थापक के रूप मे प्रसिद्ध हैं, किन्तु वास्तविकता तो यह है कि बसवेश्वर ने किसी नये धर्म अथवा सम्प्रदाय का प्रवर्तन नहीं किया अपितु देश भर में प्रचलित अनेक शैव-सम्प्रदायो से उपयोगी सिद्धान्तों को लेकर, उन्हे समन्वित करके एक नया नाम दिया—'लिंगायत-सम्प्रदाय'।

बसवेश्वर का जन्म 12वीं शताब्दी के आरम्भिक काल मे आराध्य (लिंगायत) ब्राह्मण परिवार मे हुआ था। इनका जन्म स्थान बागेवाडि (जिला बीजापुर) है। उनका आराध्य-देवमन्दिर कृष्णा और मलप्रभा नदियों के संगम-स्थल पर स्थित 'सगमेश्वर' नामक शिव-मन्दिर था। यही कारण है, इनके वचनो के अन्त में सर्वत्र 'कूडलसंगमदेवा' सम्बोधन आता है जो स्पष्टत उनके आराध्य-देव सगमेश्वर के लिए है। किन्तु श्री गुरुनाथ जोशी इस मत से सहमत नहीं हैं। उनके अनुसार, "'कूडलसंगमदेवा' बसव का साहित्यिक उपनाम था और वह इसी नाम से रचना करते थे।" श्री जोशी का यह मत काफी हद तक सही भी हो सकता है क्योंकि हिन्दी-साहित्य के मध्यकालीन सन्त-साहित्य के रचयिताओ (कबीर, नानक, दादू आदि) की 'बानियों' में सर्वत्र कवियो के नाम देखने को मिलते हैं।

बसवेश्वर की पहली-पत्नी उनके मामा की बेटी* थी। उनके मामा कलचुरि वंशी नरेश बिज्जल† के प्रधानमंत्री थे जिनके मरने पर वह

*दक्षिण भारत में सगे मामा की पुत्री से विवाह करने का रिवाज बहुत अधिक है। दक्षिण भाषाओ मे सम्भवतः इसीलिए माँ के भाई तथा ससुर (father-in law) दोनों के लिए 'मामा' शब्द ही प्रयुक्त होता है। कर्नाटक मे सगी बड़ी बहन (real elder sister) की बेटी से भी विवाह करने की प्रथा है।

†बिज्जल का राज्य-काल सन् 1156-1167 ई० है। इसकी राजधानी कल्याण थी।

पद बसवेश्वर को मिला। बसवेश्वर का भांजा और दामाद चेन्न बसवेश्वर था। इन दोनो ने मिलकर लिंगायत धर्म की स्थापना और उसका प्रचार किया। लिंगायत लोग बसवेश्वर को नान्दी (शिव का वाहन) का अवतार तथा चेन्न बसवेश्वर को साक्षात् शिव का अवतार मानते हैं।

बिज्जल का मन्त्री होने के कारण बसवेश्वर ने अपने पद का लाभ उठाया और धीरे-धीरे सारे अधिकार अपने हाथ में ले लिए। परिस्थिति का ज्ञान होने पर बिज्जल ने उसे दबाने का प्रयत्न किया परन्तु असफल रहा। कुछ समय बाद बसवेश्वर के अनुयायियो ने बिज्जल की हत्या कर दी। बिज्जल के पुत्र ने जब बसवेश्वर से अपने पिता की हत्या का बदला लेना चाहा तो वह मालाबार भाग गये। वहीं उनकी मृत्यु हुयी। बसवेश्वर का एक नाम 'बसवण्णा' भी है।

## बसवेश्वर का वचन-साहित्य

बसवेश्वर और उनके अनुयायियो ने समाज की बुराइयां दूर करके एक नये आदर्श समाज की स्थापना के उद्देश्य जो साहित्य लिखा वह 'वचन' कहलाया। ये वचन जनता मे प्रचलित बोलचाल की सीधी, सरल भाषा मे गद्य-शैली मे लिखे गये हैं। जन-साधारण को सीधी-सादी भाषा मे दिया गया उपदेश ही वचन कहलाता है। इन वचनों का परस्पर एक-दूसरे से कोई सम्बन्ध नही होता। प्रत्येक वचन स्वतन्त्र अस्तित्व लिए हुए होता है। इन्हे गद्य-गीत भी कह सकते हैं। हर वचन के अन्त मे कवि का आराध्य-देव सम्बोधित होता है।

बसवेश्वर ने अपने पूर्ववर्ती अथवा समकालीन वचनकार अल्लम प्रभु (उर्फ प्रभुदेव) के ज्ञान और वैराग्य को अपने लिंगायत-धर्म की आधार-शिला मानकर एक नये क्रान्तिकारी मार्ग-मत का पथ प्रशस्त किया। वह शिव-भक्त तथा कर्मयोगी थे। उनका व्यक्तित्व जितना महान् था उतना ही मानवीय भी। उनकी आर्त्त-भक्ति, कर्ममय जीवन के झंझटों और सामाजिक बुराइयो की निन्दा—इन सब मे प्रतिकूल परिस्थितियो से जूझते हुए ऊंचा उठकर जीवन को महान् बनाने की सहज सौन्दर्य-युक्त रम्य अभिव्यक्ति उनके वचनो मे हुयी है।

बसवेश्वर के आध्यात्मिक वचनो मे जहां आत्म-निरीक्षण ने अन्तरग-निरीक्षण का रूप ले लिया है, वही उनके वचनो में स्पष्ट बहिरग-निरीक्षण भी देखने को मिलता है। सामाजिक बुराइयो का कठोर एव वास्तविक चित्रण करते हुए बसवेश्वर ने उनकी बहुत हँसी उड़ायी है तथा नयी समाज-व्यवस्था

के सिद्धान्तो को घोषित किया। सामाजिक कुरीतियो की तीखी आलोचना करते समय कही-कही तो बहुत ही कडवी, किन्तु सीधी-सादी भाषा का प्रयोग किया गया है। उदाहरणार्थ बसवेश्वर का एक वचन प्रस्तुत है—

"भक्तों (शिवभक्त या लिगायत) को देखकर तुम (वे लोग, जो अवसरवादी होते हैं और समय को देखकर रग बदलते हैं) सिर मुँडाकर (बौद्ध) भिक्षु, जैन-साधुओ के सामने नगे (दिगम्बर, और ब्राह्मणो के सामने हरिनाम जपने वाले (वैष्णव) ब्राह्मण बन जाते हो—जैसा देखते हो, वैसे बन जाते हो, इस प्रकार का वेश्यापुत्रो-जैसा आचरण (व्यवहार) मत करो। अरे! कूडलसगमदेव को पूजकर दूसरे देवताओ के सामने सिर झुकाने वाले, और ऐसा करने के बाद भी अपने को भक्त कहने वाले इन अज्ञानियो को क्या कहूँ ?"

और—'पत्थर के नाग के सामने तो दूध रखते हो, मगर जब असली नाग दिखता है तो कहते हो, 'इसे पत्थर से मारो'! खाने वाले (जीवित) भक्त को देखकर तो कहते हो, 'आगे जाओ', और न खाने वाले पत्थर के शिव-लिंग के सामने भोजन रखते हो!"

इस प्रकार बसवेश्वर ने समाज की तीखी आलोचना की है। लेकिन ऐसा करते समय बसवेश्वर सदा कल्याणकारी सद्भावनाओ से प्रेरित रहे हैं। उनकी आलोचना पक्षपात-रहित है। उन्होने वैदिक-अवैदिक, लिंगायतेतर समाजो मे जहाँ कही भी बुराई देखी, खुलकर बहुत ही स्पष्ट शब्दो मे कह दी है। उनकी आलोचना किसी व्यक्ति या सम्प्रदाय से द्वेषमूलक नही है। उनका लक्ष्य सदैव अन्याय और वैषम्य से उत्पीडित समाज और उसकी दुर्व्यवस्था ही रहा है। यद्यपि यह सच है कि उनकी आलोचना मे हिन्दी के प्रसिद्ध सन्त-कवि कबीरदास का-सा बहुत अधिक तीखापन, कटुता, निष्ठुरता और असहनशीलता आ गई है।

उल्लेखनीय है, बसवेश्वर केवल धर्म-सस्थापक या समाज-सुधारक ही नही थे, बल्कि एक महान् भक्त कवि भी थे। प्रायः उन्हे 'भक्ति-भण्डारी' के नाम से भी पुकारा जाता है। उनके वचनो मे जहाँ एक ओर सुधार-भावना दिखाई देती है, वहीं दूसरी ओर भक्ति की सरस मजुल धारा भी प्रवाहित हुयी है। भक्ति-भावना से परिपूर्ण बसवेश्वर का यह वचन दृष्टव्य है—

"जिस ओर देखता हूँ, तुम्हीं हो देव,
समस्त विस्तार की आत्मा, तुम्हीं हो देव,
विश्वतो चक्षु तुम्हीं हो देव,
विश्वतो मुख तुम्हीं हो देव,

विश्वतो बाहु तुम्हीं हो देव,
विश्वतो पाद तुम्हीं हो देव,
हे देव कूडलसंगम देव !"

साहित्यिक दृष्टि से भी बसवेश्वर के वचनो का सौन्दर्य अनुपम है। उनका वचन-साहित्य लालित्य-गुण युक्त, हृदय-स्पर्शी है। उनके वचनो मे अगर आध्यात्मिक गहनता है तो जीवन की सरलता भी। अल्लम प्रभु की भाँति बसवेश्वर के साहित्य में उलझाव-पूर्ण कठिन चामत्कारिक वचन ( उलटबासियाँ ) बहुत कम मिलती हैं। बसवेश्वर ने लगभग 1000 वचन लिखे है।

## अल्लम प्रभु

जीवन-वृत्त—अल्लम प्रभु का वास्तविक नाम अल्लम था। बाद मे इनके कृत्यों से प्रभावित होकर जनता ने इन्हे अल्लम प्रभु, प्रभुदेव, प्रभुलिंग आदि नामों से अभिहित किया। इनका जन्म प्राचीन बनवासी प्रान्त और वर्तमान मैसूर राज्य के बळ्ळेगावी ग्राम में हुआ था। ये गोग्गेश्वर महादेव ( शिव ) के आराधक थे और रूप तथा मृदंग-वादन मे सिद्धहस्त थे। एक दिन गोग्गेश्वर-मन्दिर मे कामलता नामक एक युवती को देखकर ये उस पर आसक्त हो गये और अन्त मे दोनो का प्रणय परिणय मे बदल गया। किन्तु कामलता सन्निपात ज्वर का शिकार होकर चल बसी। यही से अल्लम के हृदय मे वैराग्य जागृत हुआ। अनिमिषटय नामक शिवयोगी से दीक्षा लेकर कई वर्षों तक तपस्या करके इन्होने परम सिद्धि प्राप्त की। तत्पश्चात् अद्वैत तत्व का उपदेश देते हुए ये कल्याण पहुँचे। वहाँ बसवेश्वर से इनकी भेंट हुयी। बसवेश्वर का आडम्बरपूर्ण आचरण देखकर इन्होने अपने उपदेशों से उसके अहकार का नाश किया। फलस्वरूप बसवेश्वर और उसके सहयोगियो ने इन्हें अल्लम प्रभु की सज्ञा देते हुए 'अनुभव मंटप'* का भार इन पर

*श्री चेन्नप उत्तंगी ने अथक परिश्रम से शोध करके यह सिद्ध कर दिया है कि 'अनुभव-मंटप' के अनेक नाम—धर्मगोष्ठी, तत्व-गोष्ठी, शिव तत्व गोष्ठी, अनुभव-गोष्ठी, शिवानुभव गोष्ठी, ओड्डोलग, ओलग (दरबार), पुरातन-समिति, अध्यात्म गीत-गोष्ठी आदि—थे जिसके सभापति अल्लम प्रभु थे। यह मटप सभी जातियो के लिए खुला था। इस सस्था ने केवल धर्म-जागरण व प्रचार का कार्य ही नहीं किया, बल्कि एक प्रकार से सर्वोदयी समाज की स्थापना का अशत सफल प्रयास भी किया।

डा० नन्दीमठ के अनुसार, अनुभव-मटप की स्थापना बसवेश्वर द्वारा की गई थी।

'बेडगिन वचन' कहलाते हैं और कबीर की 'उलटबासियों' के समान होते हैं।

इनके वचनो मे केनोपनिषद् और कठोपनिषद् के गूढ़ ज्ञानपरक सुन्दर तत्वों का सयोजन हुआ है। इनके वैराग्यपरक उपदेश अनेक स्थलो पर भगवान् बुद्ध की याद दिलाते हैं। इनका दर्शन गूढ़ अद्वैतवादी दर्शन है।

प्रभुदेव के सम्बन्ध मे लिखे गये दो जीवन-चरितात्मक ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं हरिहर कृत 'प्रभुदेव रगले' और चामरस कृत 'प्रभुलिंग-लीला।' इनकी विवेचना अन्यत्र की जायेगी।

## चेन्न बसवेश्वर

परिचय—यह बसवेश्वर का दाहिना हाथ था। बसवेश्वर इसके मामा (माता के भाई और ससुर दोनो) थे। इसी को प्राय चन्न बसवेश्वर चन्न बसव और चेन्न बसवण्णा आदि नामो से भी पुकारा जाता है। लिंगायत लोग इसे 'साक्षात् शिव का अवतार' मानते हैं। एक किंवदन्ती (myth) के अनुसार, बसवेश्वर की बड़ी बहन नागलाम्बे अविवाहित अवस्था मे अपने भाई के साथ कल्याण चली गई थी। वहाँ कक्कय्य नामक एक शिव-योगी के प्रसाद से उसने कुमारी अवस्था मे ही षण्मुखस्वामी (भगवान् शिव) का अवतार समझे जाने वाले एक बालक को जन्म दिया जो आगे चलकर चेन्न बसव के नाम से प्रसिद्ध हुआ। लिंगायत धर्म के प्रसार-प्रचार का गुरुतर कार्य-भार बसवेश्वर ने इसी को सौंपा हुआ था।

### चेन्न-साहित्य

अल्लम प्रभु ने चेन्न बसव को 'महाज्ञानी' कहा है, किन्तु इन दोनो की ज्ञान-निष्ठा में पर्याप्त अन्तर है। चेन्न 'क्रियाज्ञानी' था। उसमे ज्ञान की अपेक्षा मत-प्रचार की भावना बहुत अधिक थी। इसके अनेक वचन बहुत अधिक लम्बे हैं जिनमें सिद्धान्तो का विवरण और प्रचार की भावना अधिक है। इसकी वचन-शैली मे मनोहारिता कम, नीरसता अधिक है। वचनों मे अन्य देवताओं की निन्दा और दम्भी धर्माचार्यों की बहुत तीखी आलोचनाओ के पीछे एक धर्म-प्रचारक का आवेश स्पष्ट दिखाई देता है। इसके वचनो मे ज्ञान की पराकाष्ठा देखने को मिलती है। 'षट्स्थल सिद्धान्त'* के निरूपण

---

* लिंगायत-धर्म के अन्तर्गत, गुरु 'अष्टावरणों'—गुरु, लिंग, जगम, पादोदक, प्रसाद, विभूति, रुद्राक्ष तथा मन्त्र—के महत्व का उपदेश देकर भक्त को साधना का जो मार्ग दिखलाता है वही साधना-मार्ग 'षट्स्थल सिद्धान्त-मार्ग' कहलाता है। इसके अन्तर्गत भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शक्ति-विशिष्टाद्वैत, शुद्ध आचरण, पवित्र जीवन आदि की विवेचना की गई

का जो कार्य-भार बसवेश्वर ने चेन्न को सौंपा था, उसे इसने बडी कुशलता से निभाया था।

चेन्न ने 'षट्स्थल-वचन', 'वचन-करण हसुगे', 'मिश्रार्पण', 'कालज्ञान', 'मन्नगोप्य' और 'रुद्रभारत की दृष्टि' आदि ग्रन्थो की रचना की है। 'करण-हसुगे' नामक अपनी पुस्तक मे इसने देह की रचना, मनोव्यापार, इन्द्रियो का कार्य, सप्त-व्यसन, षडूर्मी आदि का विस्तृत वर्णन किया है तथा प्रवृत्ति एव निवृत्ति-मार्गों को अन्तर बताते हुए निवृत्ति-मार्ग को उत्तमसाधना-मार्ग घोषित किया है। यह पुस्तक 'विजय भैरवी' नामक पुस्तकपर आधारित बताई जाती है।

ज्ञान तत्व से बोझिल चेन्न के वचनो में से एक वचन उदाहरणार्थ प्रस्तुत है, देखिये—

"काल-कल्पित कुछ न होकर तुमसे ही तू हुआ,
है न?
तुम्हारे परमानन्द के प्रभाव के परिणाम में—
अनन्तकाल ही था न?
तुम्हारी स्थिति तुम स्वय जानते हो,
है न?
तुम्हारा सत्यभाव तुम ही जानते हो न?
कूडल चेन्नसंगमदेव।"

बसवेश्वर की भाति चेन्न के वचनो के अन्त मे सदैव 'कूडलचेन्न-सगमदेवा' को सम्बोधन हुआ है। कहना न होगा, चेन्न के वचनो मे साहित्यिक गुण है तो, मगर बसवेश्वर और अल्लम प्रभु-जैसी साहित्यिक गहराई चेन्न मे नही है।

## सिद्धराम

जीवन-वृत्त—सिद्धराम कर्मयोगी तथा चेन्न बसवण्णा का परम शिष्य था। यह एक भक्त-योगी भी था। इसका जन्म सोलापुर मे हुआ था। जब यह निरा बालक था तो इसे आलसी और जडभरत कहकर पुकारा जाता था। यह अकर्मण्य था। अत' इसे गायो को चराने का काम सौंपा गया। वहीं एक वृक्ष के नीचे बैठकर इसने शिव-लिंगार्चन आरम्भ किया। कहते हैं, इसकी पूजा और भक्ति से प्रसन्न होकर मल्लिकार्जुन (भगवान् शिव) ने इसे दर्शन दिये और भोजन के लिए भात (पकाया हुआ चावल) मांगा। किन्तु सिद्धराम जब भात लेकर वहाँ पहुँचा तो वह अन्तर्धान हो चुके थे। यह देखकर व्याकुलमना

---

है। षट्स्थल के 6 सोपान ये हैं—भक्त-स्थल, महेश्वर-स्थल, प्रसादी-स्थल, प्राणलिंगी-स्थल, शरण-स्थल तथा ऐक्य-स्थल।

सिद्धराम उनकी खोज मे भटकता हुआ श्रीशैल पहुँचा, जहाँ इसे मल्लिकार्जुन के दर्शन प्राप्त हुए। उन्होने इसका आमन्त्रण भी स्वीकार कर लिया। सोला-पुर वापस आकर इसने एक भव्य मल्लिकार्जुन मन्दिर निर्मित कराया। अपना सर्वस्व त्याग कर यह यति और योगी हो गया। अनुमान है, इसका वास्तविक नाम राम था, किन्तु मल्लिकार्जुन को सिद्ध कर लेने के कारण ही इसे सिद्धराम के नाम से पुकारा गया।

एक बार जब यह जनता के निमित्त एक तालाब का निर्माण करवा रहा था, अल्लम प्रभु वहाँ पहुँच गये। दोनो मे शास्त्रार्थ हुआ। फलस्वरूप सिद्धराम निष्काम-कर्म-भावना के तत्व तथा अद्वैतवादी दर्शन से बेहद प्रभावित हुआ। इसने चेन्न बसवेश्वर को गुरु रूप मे स्वीकार किया और अद्वैत सिद्धांत का ज्ञान प्राप्त किया। 'अहं ब्रह्मास्मि' तत्व का बोध हो जाने पर इसने तालाब के पास एक गुफा बनवाकर चिर-समाधि लगा ली। किन्तु समाधिस्थ होने के पूर्व इसने अपने शिष्यो को कर्मयोग का उपदेश देने के उपरात मल्लिकार्जुन की सेवा-सम्बन्धी सारे निर्देश दे दिये थे।

## सिद्धराम-साहित्य

सिद्धराम रचित वचन सख्या में 851 है जिनमे कर्मयोग और वैराग्य-परक ज्ञान-भक्ति की सुन्दर विवेचना की गई है। सिद्धराम के व्यक्तित्व मे योग-तत्व की विशिष्टता थी जिसके सम्बन्ध मे लिखते हुए इसने स्वय कहा है —"भक्त हो तो बसवेश्वर जैसा हो, सन्त हो तो प्रभुदेव जैसा हो, भोगी हो तो हमारे गुरु चेन्न बसवेश्वर जैसा हो, और योगी हो तो मुझ जैसा हो।'

सिद्धराम रचित अन्य पुस्तकें ये हैं—मिश्रस्तोत्र-त्रिविधि, बसवस्तोत्र-त्रिविधि, अष्टावरणस्तोत्र-त्रिविधि, कालज्ञान, मन्त्रगोप्य आदि।

इसके प्रत्येक वचन के अन्त मे अन्य वचनकारो की भाति 'कपिलसिद्ध-मल्लिकार्जुन' का सम्बोधन आता है। सिद्धराम द्वारा प्रतिपादित कर्मयोग का सुन्दर उदाहरण यह वचन है; देखिए—

"शरीरधारी को नवनीत (मक्खन) की तरह रहना चाहिए। उसे मुकुर (दर्पण) के प्रतिबिम्ब की तरह, पहाड़ी जंगलो के दावानल की तरह, आषाढ के प्रचण्ड मारुत (तूफान) की तरह, सर्व में सर्व की तरह बनकर रहना चाहिए।'

## महादेवियक्का

जीवनवृत्त—महादेवियक्का का जन्म उडुतडी में हुआ था। आयु के

साथ ही चेन्नमल्लिकार्जुन देव (भगवान् शिव) के प्रति उसके हृदय में प्रेम और भक्ति की भावना प्रगाढ़ होती गई। युवती होने पर वहाँ का राजा कौशिक उसके रूप-सौन्दर्य पर मुग्ध हो गया। कौशिक ने उससे विवाह करना चाहा, किन्तु महादेवि तो पहले ही से चेन्नमल्लिकार्जुन देव को अपना पति मान चुकी थी, अतः उसने पहले तो इन्कार कर दिया परन्तु बाद मे अपने माता-पिता की इच्छा के आगे उसे झुकना पड़ा। कुछ शर्तों के साथ उसने पिता के दुःख दूर करने के लिए कौशिक के साथ विवाह कर लिया। लेकिन कौशिक अपनी बात पर दृढ़ न रहा। उसने शर्तें तोड दीं। उसी समय महादेवि ने भी राज-महल का परित्याग कर दिया। चेन्नमल्लिकार्जुन देव के प्रति हृदय मे प्रेम की भावना प्रबल हो उठी और महादेवि अपने प्रिय को ढूंढती हुयी, भटकती हुयी अन्त में कल्याण जा पहुँची जहाँ बसवेश्वर की कृपा-स्वरूप उसे 'इष्ट-लिंग' की प्राप्ति हुयी। इसी 'इष्टलिंग' में उसे चेन्नमल्लिकार्जुन के दर्शन हुए।

महादेवियक्का-साहित्य

महादेवियक्का को शिव-भक्तों के बीच अपने व्यक्तित्व और वचनों के कारण बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त है। यद्यपि प्रचलित दन्त-कथाओं के आधार पर पम्प-युगीन कन्ति कन्नड-साहित्य प्रथम महिला कवियित्री ठहरती है, किंतु उसकी पुस्तक के आधार पर उसका काल और अस्तित्व दोनो ही विवाद की वस्तु रहे हैं। इसके अतिरिक्त साहित्यिक दृष्टि से भी कन्ति और महा-देवियक्का की तुलना नही की जा सकती। कन्ति के साहित्य में ज्ञान प्रधान है जबकि महादेवि मे भावना। वस्तुतः दर्शन और गद्य-काव्य के सम्मिलित दृष्टिकोण से महादेवियक्का कन्नड़-साहित्य की प्रथम कवियित्री हैं।

महादेवि के जीवन-कृतित्व में आध्यात्मिक साहस और सिद्धि की रम-णीयता दर्शनीय है। सामाजिक बन्धनो को तोड फेंकनेवाली, बन्धन युक्त विवाह-सस्था की रचमात्र भी परवाह न करनेवाली, चेन्नमल्किार्जुन के प्रेम की दीवानी महादेवि के साहित्य मे अपूर्व ज्ञान, सहनशीलता, लोकानुभव तथा विरक्ति के तत्व सहज ही देखे जा सकते हैं। प्राय. सभी आलोचकों ने उसे "कन्नड़-साहित्य का मीरा" कहकर सम्बोधित किया।

महादेवि का एक-एक वचन अर्थगर्भित एव महत्त्वपूर्ण है। हिन्दी के सन्त-कवियों कबीर आदि) तथा सूफी कवियों (जायसी आदि) के समान लौकिक प्रेम के रूप में आध्यात्मिक प्रेम का वर्णन महादेवि ने किया है। उदाहरणार्थ वियोग-शृगार का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

"मेरे दुःखी मन के लिए सब कुछ उल्टा हो गया है। मन्द पवन झुलसाने वाली लू (गर्म हवा) बन गया है, चन्द्रिका धूप बन

गई है। हे भ्रमर-समूह, आम्रवृक्षो, हे चन्द्रिका, हे कोयल ! मैं तुम सबसे विनती करती हूँ, अगर मेरे प्रभु चेन्नमल्लिकार्जुन देव तुम्हें कहीं दिखाई दें तो मुझे बुलाकर उनके दर्शन करा दो।"

मिलन की उत्कट अद्वैत-भावना का यह चित्र देखिए—

"मैंने तुमको चाहा, तुमने चाहा मुझको,
तुम मुझसे न बिछुड़ना, मैं भी न बिछड़ूँगी तुमसे
मेरी और तुम्हारा जगह अलग-अलग क्या ?
तुम दयालु हो, मैं जानती हूँ इसे,
तुम जैसे रखवागे, रहूँगी मैं वैसे ही,
वैसे रहनेवाली भी हूँ,
तुम जानते हो इसे, हे चेन्नमल्लिकार्जुन देव !"

तात्पर्य यह कि महादेवियक्का के वचनों में आत्मानुभूति और आध्यात्म से परिपूर्ण कवित्व-गुण विद्यमान है। उसने समाज-सुधार तथा उपदेशपरक वचनो की रचना अधिक नही की है। उसके साहित्य मे 'शरण (भक्त, सती), लिंग (शिव) पती' की भावना स्पष्ट देखने को मिलती है।

वचनो के अतिरिक्त महादेवियक्का लिखित एक छोटी पुस्तक 'योगांग-त्रिविधि' भी प्राप्त होती है। इसमे त्रिपदी छन्द मे लिखे गये 67 पद हैं। इन पदो मे से कुछ तात्विक-दर्शन से सम्बन्धित हैं और कुछ वैयक्तिक जीवन से।

## अन्य वचनकार

ऊपर जिन वचनकारो की चर्चा की गई है उनके अतिरिक्त इसी काल मे अन्य अनेक शिवशरणो तथा शिवरणाओ (महिला शिव-भक्तो) ने अपने-अपने ढग से वचन कहे हैं। लगभग 200 से अधिक वचनकारो के नाम तथा उपनाम प्राप्त हुए हैं जिनका अलग-अलग निवास-स्थान तथा काल नहीं ज्ञात हो सका है, तथापि अनुमान के आधार पर इन सबका काल 12वी शताब्दी का मध्य भाग माना जा सकता है। इन लोगो मे शिवलक मचण्ण, श्रीपति पण्डित, मल्लिकार्जुन पण्डित, रेवण मरुलसिद्ध, एकोरामितन्दे, पण्डिताराध्य, विश्वेश्वर, चौडय्या, माचय्या, मारय्या, चन्दय्या, जेडर दासिमय्या आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

इन वचनकारो की रचनाओ में वैराग्य, भक्ति, अनुभाव, लिंगायत-तत्व, आचार-धर्म, दम्भी समाज की कटु आलोचना, शरण-स्तुति आदि बातो का निरूपण मिलता है। अधिकाश वचनकार या तो मामूली पढ़े-लिखे थे, या बिल्कुल निरक्षर। अनुभाव-मंटप मे सम्भवत कुछ ऐसे पेशेवर लेखक लोग रहते थे जो इनके उद्गारो को लिपिबद्ध कर लिया करते थे।

श्री एम० आर० श्रीनिवासमूर्ति के अनुसार, "इन वचनो मे भक्ति, ज्ञान, वैराग्यपरक आध्यात्मिक विचार एव नीति, समाज मे स्त्रियो का स्थान आदि लौकिक विचारो की जो गगा बही है, वह सम्पूर्ण द्रविड-साहित्य मे अन्यत्र नही मिलती।" इन वचनो के उद्देश्यो का सार बताते हुए श्रीनिवास-मूर्ति ने लिखा है—"साहित्य ही दर्शन है, दर्शन ही साहित्य है! सत्य ही सौन्दर्य है, सौन्दर्य ही सत्य है।"

## वचन-साहित्य की विशेषताएँ

सम्पूर्ण वचन-साहित्य का अध्ययन करने के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मध्य युगीन कन्नड़ की गद्य-शैली में लिखे गये वचन अनुभाव-मटप के शरणों के हृदय से नि सृत आध्यात्मिक उद्गार तथा भावगीत हैं।

श्री आर० एस० मुगलि के शब्दो मे, "केवल कन्नड मे ही नही, अपितु समस्त विश्व-साहित्य मे वचन-साहित्य-जैसा साहित्य-रूप बिरला ही देखने को मिलता है। पवित्र बाइबिल (Holy Bible) और केम्पीज तथा मार्कस ओरेलियस की कृतियों में भी चिन्तनपरक गद्य-काव्य तथा भावगीतात्मक गद्य-काव्य देखने को मिलता है, परन्तु वचनो का अनुभाव गद्य निराला ही है।"

सक्षेप मे, विषय और शैली की दृष्टि से सम्पूर्ण वचन-साहित्य की निम्नलिखित विशेषताएँ बताई जा सकती हैं—

1 अनुभावो की गूढताजन्य सूक्ष्मता के साथ साथ उक्तियो की सहजता एव अलकार-रम्यता।

2 लौकिक जीवन से दिये गये उदाहरणों और कहावतों की भरमार।

3 सात्विकताजन्य सहज स्फूर्ति और तत्व सम्बन्धी श्लेष वाणी।

4 अपने इष्टदेव के सामने विनम्र भक्ति-भावना का प्रदर्शन तथा अन्तरग-निरीक्षण की प्रवृत्ति।

5 अपने पेशे के अनुकूल (जैसा कि हिन्दी के सत-कवि कबीर ने किया है) उपमा देते हुए परमार्थ-धर्म का निरूपण।

6. प्रत्येक वचन के अन्त मे अपने-अपने इष्टदेव को किया गया सम्बोधन।

7 लालित्य और माधुर्य-गुण के साथ-साथ कही-कही सात्विक सन्ताप से प्रेरित कठोर भाषा मे की गई तीखी आलोचना।

8 भाषा मे प्राचीन तथा नवीन कन्नड मे परिवर्तन-काल की मध्य-कन्नड शैलियो [मार्ग और देशी शैलियो] का सुन्दर समन्वय।

9 प्राचीन कन्नड के व्याकरण के अनुसार अमान्य अनेक प्रयोग ।

10. मध्य कन्नड के अनेक ऐसे पदों का उपयोग, जो न तो पुरानी कन्नड मे मिलते हैं, न नवीन कन्नड मे ।

## (२) बसव-युगीन शिव-भक्ति साहित्य

जिस तरह बाढ से उफनती हुई नदी का पानी आसपास की जमीन के एक बहुत बडे हिस्से मे फैलता जाता है, ठीक उसी प्रकार शिवशरणो और उनका वचन-साहित्य एकबारगी ही सारे कर्नाटक प्रदेश में फैल गया । यह बाढ जिस तेजी से आई थी, उसी तेजी के साथ इसका जन-प्रभाव भी समाप्त होता चला गया ।

इसी समय कुछ शैव-मतावलम्बी साहित्यकारों ने प्रबन्ध-काव्यों (epics) के रूप मे शैव-साहित्य की रचना की । ये साहित्यकार अधिकाशतः शैव थे । इनके शिव-भक्तिपरक साहित्य और लिंगायतो के वचन-साहित्य में मूलतः ये तीन अन्तर थे—

(i) वचनो की शैली गद्य होती थी और इनकी पद्य-शैली ।

(ii) वचनो की भांति इनके फुटकर साहित्य में उपदेशात्मकता नहीं है, भक्ति की उत्कटता और भावनाओं की प्रबलता उभरकर सामने आई है ।

(iii) इन साहित्यकारो ने प्रबन्ध काव्यो की रचना करके अपने पाडित्य और कवि-प्रतिभा का प्रदर्शन किया है ।

तात्पर्य यह, कि इन शिवभक्त साहित्यकारों ने सरस भक्तिपरक साहित्य की रचना की है, वचनकारो की भांति मत-प्रचार करना इनका उद्देश्य नहीं रहा है । इस वर्ग के कवियो मे हरिहर, राघवांक और पद्मरस के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । नीचे इन्हीं तीनों की साहित्य-सम्पदा पर विचार करेंगे ।

### हरिहर

इस वर्ग के शैव कवियो मे हरिहर का नाम विशेष उल्लेखनीय है । यह एक महान् शिवभक्त कवि था । इसने अपने-आपको 'शिव कवि' कह-कर पुकारा है । इसकी कृतियो मे भक्ति की अजस्र धारा प्रवाहित हुयी है । रचनाओ मे इसका व्यक्तित्व पूर्ण स्पष्ट होकर सामने उभरा है । इसके व्य-क्तित्व मे समग्रता है, सन्तुलन नही, उत्साह है, निग्रह नही—और यही हरिहर के व्यक्तित्व का सौन्दर्य है ।

#### हरिहर-साहित्य

हरिहर लिखित पांच काव्य ग्रथ उपलब्ध हुए हैं—पम्पाशतक, रक्षा-शतक, मुडिगेय-अष्टक, गिरिजा-कल्याण तथा शिवगणद रगलेगलु ।

पम्पाशतक तथा रक्षाशतक—हरिहर कृत ये दोनो शतक* भावावेशपूर्ण भक्तिपरक रचनायें हैं जिनमे भक्ति की सहज भावपूर्ण रम्य सरिता खुलकर बही है। इनमे कवि ने अपने व्यक्तिगत जीवन की कथा कही है। उत्कट भक्ति, तन्मयता, व्यग्रता, उद्गारो की पुनरावृत्ति इन ग्रथो की विशेषताएँ हैं। ये शतक भाव गीत हैं जिनमे कल्पना की अपेक्षा भाव-शक्ति तथा सुन्दर शैली के दर्शन होते हैं। इनमें तत्व और वीर-शैव मत का सरस-गुण-युक्त निरूपण किया गया है। लिंगायत सम्प्रदाय की छ विशिष्ट अवस्थाओ —जिन्हें 'षट्स्थल' कहा जाता है—में से महेश्वर स्थल की भक्ति हरिहर-साहित्य का प्राण है। उल्लेखनीय है, सन् 1070 ई० के लगभग पम्प-युगीन नागवर्माचार्य ने कन्नड़ में 'चन्द्र-चूडामणि शतक' [अथवा 'वैराग्य-शतक'] के नाम से पहला शतक लिखा था। किन्तु शैव-साहित्य मे हरिहर कृत ये ग्रथ पहले शतक हैं।

मुडिगेय अष्टक—यह हरिहर की पाडित्य-पूर्ण छोटी-सी रचना है। इसमें 'क्ष' अक्षर का अनुप्रास लिए हुए 8 पद हैं जिनमे भगवान् विरूपाक्ष देव की सर्वश्रेष्ठता प्रतिपादित की गई है।

गिरिजा-कल्याण—हरिहर की यह तीसरी महान् कृति ही उसकी कीर्त्ति का आधार-स्तम्भ है। प्रौढ़ काव्य-परम्परा के अनुसार चम्पू-शैली मे लिखा गया यह एक महाकाव्य है। इस महाकाव्य में 'गिरिजा' [गिरि+जा=पर्वतराज हिमालय की पुत्री पार्वती] के विवाह† की कथा का सविस्तार वर्णन हुआ है। स्वय हरिहर ने अपनी इस रचना की प्रशसा करते हुए इसे

---

*'शतक' सख्याश्रित-मुक्तक-काव्य का एक उपभेद है। शतक का अर्थ होता है, 100। अतएव शतक ग्रथो मे एक ही विषय पर एक ही प्रकार के 100 या 100 से अधिक ( किन्तु 1000 से कम ) छन्दों का संग्रह होता है।

और, मुक्तक वह काव्य-रूप है जिसमें पूर्वापर-प्रसग-निरपेक्ष रस-चर्वणा की सामर्थ्य होती है, अर्थात् ऐसी चमत्कारपूर्ण फुटकर काव्य-रचना जिसका एक-दूसरे से कोई सबध न हो, परन्तु जिसमें अभिव्यक्ति की पूर्णता हो मुक्तक काव्य कहलाती है। अग्निपुराण के अनुसार "मुक्तक श्लोक एवैकश्चमत्कारक्षम सताम्" और काव्यानुशासन के अनुसार "एकेन छन्दसा वाक्यार्थसमाप्तौ मुक्तकम्।"

—हिन्दी साहित्यकोश, भाग 1, पृष्ठ 649 651।

†दक्षिण भारतीय भाषाओ मे 'कल्याण' का अर्थ 'विवाह' होता है।

"नवरस से परिपूर्ण, नव्य तथा पावन" बतलाया है। इस ग्रथ की नवीनता यही है कि कथावस्तु, वस्तु-सयोजन, वर्णन-शैली जैसे तत्वो को अपनी पूर्ववर्ती प्राचीन काव्य-परम्परा से लेकर, उसमे कुछ नई बातें जोडकर उनके द्वारा कवि ने अपने व्यक्तित्व का प्रकाशन किया है। नवीनता की दृष्टि मे इसकी कथावस्तु मे कुछ ऐसी बातें मिलती हैं जो इस काल तक के किसी भी कन्नड चम्पू-काव्य मे नही मिलती। दूसरे, इसकी कथा सयोजन-शैली भी पूर्ववर्ती चम्पू-काव्यो से पूरी तरह भिन्न एव नई है। चित्रात्मकता हरिहर के इस काव्य की एक और नई विशेषता है जो पूर्ववर्ती काव्य-ग्रन्थो मे अप्राप्य है। प्रत्येक घटना का वर्णन हरिहर ने इतनी बारीकी के साथ किया है, जैसे कि वह स्वय उन घटनाओ को देख रहा हो।

हरिहर के इस ग्रथ पर सस्कृत-महाकवि कालिदास कृत 'कुमारसम्भवम्' का भी व्यापक प्रभाव पडा है, किन्तु जैसा कि इसके शीर्षक मे ही स्पष्ट है, इसमे पार्वती के जन्म से लेकर शकर के साथ विवाह तक की कथा का ही विस्तार हुआ है, जबकि 'कुमारसम्भवम्' मे पार्वती के जन्म से लेकर कुमार कार्त्तिकेय का जन्म होने तक की कथा मिलती है। 'गिरिजा-कल्याण' की कथा पुराणो से ली गई है तथा बृहस्पति का दूतत्व, विष्णु द्वारा कामदेव की खुशामद, ब्रह्मचारी वेषधारी शिव पर कुपित पार्वती द्वारा भस्म-प्रहार आदि घटनाएँ हरिहर की व्यक्तिगत कल्पनाएँ हैं।

वस्तुत इस ग्रन्थ मे पार्वती-विवाह तथा देवासुर-सग्राम की कथा है जिसे किसी सीमा तक प्रतीकात्मक-अर्थयुक्त रूपक भी कहा जा सकता है। उल्लेखनीय है, 'गिरिजा-कल्याण' की पार्वती, उसके पिता हिमवान, पार्वती की माँ, नारद, कामदेव, कामदेव की पत्नी रति, बृहस्पति आदि पात्रों मे दैवीय गुणो की अपेक्षा मानवीय गुण अधिक हैं। सत्यत इन्हें मानव-पात्रो के रूप मे ही चित्रित किया गया है।

श्री सिद्धिगोपाल काव्यतीर्थ के अनुसार, "यद्यपि 'गिरिजा-कल्याण' की कथा मे कही-कही विसगति आ गई है, किन्तु अन्त मे कथा ने ऐसा मोड लिया है जो देखते ही बनता है। काव्य मे आद्योपान्त वर्णनो की बाढ-सी आ जाने के कारण पूर्वार्द्ध मे कथागति कुछ मन्द हो गई है, किन्तु उत्तरार्द्ध मे कथा-गति तेज हो गई है। हरिहर के वर्णनों मे सन्दर्भजन्य औचित्य है जो इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि सवेग कथा कहने की कला हरिहर की जन्म-जात प्रतिभा है। साथ ही आनन्द-सभ्रम, भक्ति तथा वीर रस के स्थलो पर कवि की लेखनी एकदम जोश से भर जाती है।"

श्री आर० एस० मुगलि के मतानुसार "महाकवि हरिहर कृत 'गिरिजा-कल्याण' उसका सत्काव्य है, महाकाव्य नहीं।" अपने इस कथन को प्रमाणित करने के लिए श्री मुगलि ने निम्न चार कारण बताये हैं—

1. काव्य की पूर्ववर्ती परम्परा* को अपनाने की प्रवृत्ति और अपनी प्रतिभा की नवीनता दिखलाने के मोहस्वरूप ही इस काव्य में अपरिपक्वता और असगति दिखाई देती है। परम्परागत 18 वर्णनो के मोह मे फँसकर कवि ने सर्वत्र उनके सन्दर्भित औचित्य पर ध्यान नही दिया है। उदाहरण के लिए, नारद जी पर्वतराज हिमालय के साथ वेश्याओ का मोहल्ला देखने जाते हैं •आदि।

2 कवि अपने पात्रो मे देवत्व तथा मानव-गुणों का ठीक तरह सम्मिश्रण नहीं सका है। उदाहरण के लिए, पार्वती शिव की अर्द्धांगिनी आदि-शक्ति और बाल्यकाल से ही शिवमय थी, यह सब दिखलाने के बाद पार्वती के चरित्र-गुण कहीं तो दिव्यता की पराकाष्ठा पर पहुँच जाते हैं, और कही मानव-गुण अपनी सीमा पार कर जाते हैं।

3. पौराणिक कथाओ के अनुसार, तारकासुर का वध करनेवाले कुमार कार्त्तिकेय का जन्म ही पार्वती-विवाह का मुख्य उद्देश्य था। किन्तु कुमार-जन्म की सूचना मात्र भी कवि ने नही दी है। अत पार्वती-विवाह का उद्देश्य अधूरा रह गया है।

4' किन्तु उपर्लिखित काव्य-दोष के होने पर भी पार्वती-जैसे पात्र की कल्पना करके उसके अनुरूप कथा-विन्यास की रचना करते हुए, काम दहन, रति-विलास, ब्रह्मचारी-वेषधारी शिव आदि का रसोत्कट निरूपण करते हुए, निरर्गल व्यक्ति-विशिष्ट की शैली अपनाते हुए, असाधारण कल्पना शक्ति का परिचय देते हुए शिव-कविता प्रसन्न-ललित नए चम्पू की रचना करके हरिहर ने अपना महाकवित्व प्रमाणित कर दिया है। 'रगले' छन्द मे भी उच्च कोटि की कविता की जा सकती है, इस सम्भावना को सबसे पहले हरिहर ने ही महाकाव्य लिखकर प्रमाणित कर दिखाया है।

शिवगणद् रगलेगलु—हरिहर की यह पाँचवी रचना है। लगभग

---

* सस्कृत मिश्रित कन्नड-काव्य शैली 'मार्ग-शैली' कहलाती है। पम्प-युग मे चूँकि इसी शैली मे अधिकतर काव्य-रचना हुयी, इसीलिए इस शैली के अनुसार बाद मे लिखे गये काव्यो को 'मार्ग-परम्परा के अनुसार लिखा गया काव्य' की सज्ञा दी गई।

## राघवांक

यह महाकवि हरिहर का भांजा, दामाद और शिष्य था तथा अपने-आपको "चतुर कवि-नरेश हम्पा [पम्पा] के [स्वामी] हरीश्वर [शिव] का वरसुत" मानता था। इसने अपने गुरु हरिहर द्वारा निर्देशित मार्ग को अपनाया और उस मार्ग पर विशिष्ट चाल से चला। यह अपने उपास्य-देव हरीश्वर का कट्टर भक्त था। इसने काव्य-लक्ष्य, विषय और शैली को अपने आचार्य से प्राप्त की, किन्तु काव्य-रूप, कथा-वस्तु और निरूपण-पद्धति के क्षेत्र में इसने अपनी स्वतन्त्र प्रतिभा प्रदर्शित की। अपने आचार्य की तरह यह चम्पू-काव्य के मोह में नहीं पड़ा। इसने अपना सारा साहित्य 'षट्पदी' छन्द में लिखा। हरिहर के काव्य में जो महोत्साह अपने असंयमित रूप में दिखाई देता है, वह राघवांक की कविता में आकर संयमित हो गया है। इसकी कविता बाढ़ से उफनती नदी की तरह न होकर मन्द गति से बहने वाली शान्त, संयमित नदी के समान है।

## राघवांक-साहित्य

राघवांक ने छह ग्रन्थों की रचना की थी—सोमनाथ चरित, वीरेश चरित, सिद्धराम पुराण, हरिश्चन्द्र चरित, शरभ चरित तथा हरिहर-महत्व। इनमें से प्रथम चार ग्रन्थ प्रकाशित, 'शरभ चरित' अप्रकाशित तथा 'हरिहर-महत्व' अप्राप्य है।

सोमनाथ चरित—राघवांक का यह ग्रन्थ उसकी सबसे पहली रचना है जिसके अन्तर्गत आदय्या नामक एक ऐसे शिव-भक्त की कथा है जिसने पुलिगेरे में सौराष्ट्र से सोमनाथ महादेव का लिंग (शिव लिंग) लाकर स्थापित किया और अनेक चमत्कार दिखलाकर वहाँ के जैनियों को शैव बनाया। यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि अपने इस ग्रन्थ में राघवांक पूर्ववर्ती कन्नड-काव्यों के रूढ़िवादी, परम्परागत 18 वर्णनों के मोह से विलग नहीं हो सका है। अनेक स्थलों पर उसको उचित-अनुचित का भी ज्ञान नहीं रहा है। कथा-संयोजन भी दोषपूर्ण है; उदाहरणार्थ—सौराष्ट्र से पुलिगेरे की ओर जाते समय आदय्या अपनी विवाहिता पत्नी को भुला देता है और पुलिगेरे पहुँचकर जब वह एक जैन-सुन्दरी पद्मावती के प्रेम में फँस जाता है तो एक बार भी उसे अपनी पत्नी की याद नहीं आती। वह इस बात पर भी ध्यान नहीं दे पाता है कि उसकी प्रेयसी जैनमतावलम्बी है, और वह शैव। दो-तीन महीने बाद जब उसकी आँखें खुलती हैं तो वह पद्मावती को भी शैव बना लेता है।

इस प्रकार चरित्र-विकासगत दोषो, वर्णनो में साम्प्रदायिकता तथा शैलीगत विषमता होने पर भी राघवाक ने अपने काव्य-नायक आदय्या की एकनिष्ठ शिव-भक्ति, कष्टो को सहन करने की क्षमता आदि का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है। सत्व-परीक्षा के प्रसग मे आदय्या और यति के बीच जो वार्त्तालाप हुआ है, उसमे कवि की सवाद-योजना और नाटकीयता देखते ही बनती है।

वीरेश चरित—127 पदो मे लिखे गये दो सन्धियों के इस छोटे-से काव्य-ग्रन्थ मे राजा दक्ष के यज्ञ-विध्वस की कथा वर्णित हुयी है। ग्रन्थ षट्पदी छन्द मे है।

सिद्धराम चरित—9 सन्धियो ( अथवा सर्गो ) में बँटा हुआ यह एक बृहताकार ग्रन्थ है जिसमे सिद्धराम नामक शिवभक्त की कथा है। सिद्धराम के बारे मे राघवाक ने स्वय लिखा है, "वह मनुष्य नही, कारण-रुद्र था, शिव-ज्ञानी था।" इसी सिद्धराम के जन्म, बाल्यावस्था, सिद्धि-प्राप्ति, लोकोपकारी कार्यों तथा चमत्कारो का अत्यन्त आकर्षक वर्णन राघवाक ने किया है। उसने सिद्धराम के इस चारित्रिक सत्य को आधार-शिला मानकर, कि "वह महान् विश्वप्रेमी, मानवतावादी, कर्मयोगी था," एक अत्यन्त सुन्दर और कलात्मक स्वर्ण-मन्दिर खडा कर दिया है, मगर सिद्धराम के वचनों मे झलकने वाला विकसनशील व्यक्तित्व ग्रन्थ मे चित्रित नहीं हुआ है। अपनी इस रचना के बारे में राघवाक ने स्वय लिखा है—"इस काव्य के कुछ अशों मे, विशेषकर आरम्भिक सन्धियो मे, 'सौन्दर्य का उपवन' और 'रस-कुण्ड' है।"

बालक सिद्धराम के खो जाने पर उसकी माँ का करुण रुदन और मल्लिनाथ को खोजते हुए सिद्धराम की भक्ति, ये दोनो ही प्रसग 'कथा-रस की तरगों' मे पाठक के मन को इस तरह डुबो देते हैं कि वह तन्मय हो जाता है। इस प्रसग के बाद से ही चमत्कारपूर्ण उपकथाएँ आकर जहाँ एक ओर इसे 'पुण्य-काव्य' बना देती हैं, वही कथानक की स्वाभाविक गति मे अवरोध उत्पन्न करती हैं। लेकिन मात्र गति का धीमा होना काव्य-दोष नही होता। वस्तुत. इस काव्य तक आते-आते राघवाक की कहानी कहने की कला पूर्ण परिपक्व हो चुकी थी। उसने अपनी भाषा और शैली दोनो ही को काफी परिमार्जित कर लिया था।

श्री आर० सी० हिरेमठ के मतानुसार, "'सिद्धराम चरित' एक श्रेष्ठ काव्य और आदर्श पुराण दोनो ही है····अधिक स्पष्ट शब्दो में इसे 'मानवता के मदार-वृक्ष पर खिला महाकाव्य-पुष्प' कहा जा सकता

है। वस्तु, स्वरूप, सत्व आदि सभी दृष्टियो से एक नई क्रान्ति का सन्देश देने वाली यह एक पूर्ण स्वतन्त्र एव मौलिक रचना है, कन्नड-साहित्य में उच्च स्थान को प्राप्त करने मे समर्थ एक उच्च कोटि की रचना है।"

किन्तु श्री आर० एस० मुगलि 'सिद्धराम चरित' को 'आदर्श पुराण' मानने से इन्कार करते हैं। उनका कहना है, "पुराण मे तो साम्प्रदायिक विषयो तथा कथाओं की गुंजाइश होती है, मगर पुराण जब काव्य का रूप धारण करना चाहे तो उप काव्य-नियमो का पालन करना चाहिए। ऐसा करने के लिए पुराण-काव्य मे सम्प्रदाय से सम्बन्धित बातें कथा-सूत्र के चारो ओर सुग्रथित तथा सुसम्बद्ध होनी चाहिए। इस दृष्टि से राघवांक कृत 'सिद्धराम चरित' उच्च कोटि का एक पुराण-काव्य तो बन गया है, परन्तु वह आदर्श पुराण बन सका है, यह कहना धृष्टता होगी। वस्तुत इस विषय में पूरी सफलता केवल आदि-कवि पम्प कृत 'आदि-पुराण' और कुमार व्यास कृत 'गदुगिन भारत' को ही प्राप्त हुयी है। 'श्रेष्ठ कलाकृति' कहने की अपेक्षा इस काव्य को 'महासमर्थ कवि की सत्कृति' कहना हमे अधिक उचित प्रतीत होता है।"

हरिश्चन्द्र चरित—राघवांक की यह अन्तिम और सर्वोत्कृष्ट काव्य-रचना है जिसमे उसकी समस्त शक्तियो का पूर्ण विकास हुआ दिखाई देता है। यहाँ आकर कवि की सारी साम्प्रदायिक भावनाएँ सौन्दर्य-बोध के सामने निर्जीव-सी हो गई हैं। राघवांक ने अपनी इस कृति को 'बेजोड', 'महाकृति', 'सर्वथा निर्दोष' तथा 'नवीन काव्य-कन्यका' माना है। उसने पुराणो मे वर्णित प्रसिद्ध राजा हरिश्चन्द्र की कहानी को लेकर यह महाकाव्य तैयार किया है। सच तो यह है कि 'हरिश्चन्द्र चरित' ही राघवांक की कीर्ति का आधार-ग्रंथ है।

राघवांक के इस महाकाव्य मे सर्वत्र उसकी नाटकीय प्रतिभा के दर्शन होते हैं। कहना न होगा, 'सोमनाथ चरित' मे महाकवि राघवांक की जो नाट्य-प्रतिभा प्रस्फुटित हुयी थी, उसका पूर्ण एव चरम विकास 'हरिश्चन्द्र चरित' मे हुआ है। यह सच है कि राघवांक की यह रचना उसकी "बेजोड़ महाकृति, नवीन काव्य-कन्यका" है, किन्तु यह 'सर्वथा निर्दोष' भी है, यह नहीं कहा जा सकता। कुछ दोष इसमे अपने-आप आ गये हैं, उदाहरणार्थ—विश्वामित्र (खलनायक) का आकस्मिक चरित्र-परिवर्तन नितान्त अस्वाभाविक प्रतीत होता है। सत्यवादी हरिश्चन्द्र के चरित्र मे भी कुछ ऐसी ही बातें देखने को मिलती हैं, जैसे—शिकार पर जाने से पहले

की पूरी रात हरिश्चन्द्र ने वेश्याओ की गली मे घूमते हुये बिताई। सिर्फ इतनी-सी बात को कहने के लिए ही कवि ने 74 पद लिख डाले हैं। इस प्रकार के अनावश्यक वर्णन अनेक स्थलो पर दृष्टव्य होते हैं जिनके फलस्वरूप काव्य मे गति-शैथिल्य-दोष और पात्रो के चरित्रों में विशृंखलता के दोष पैदा हो गये हैं। इस प्रकार के कतिपय दोषो से युक्त होने पर भी यह महाकाव्य राघवांक की सर्वश्रेष्ठ कलाकृति है जो भावी कवियों के लिए एक नवीन मार्ग को प्रशस्त करते हुए एक नये युग का आह्वान करता है।

सक्षेप में, श्री सिद्धगोपाल काव्यतीर्थ के शब्दो में कह सकते हैं कि "राघवांक का यह ग्रन्थ उसकी महान् कृति है, धार्मिकता से परे जाकर लिखी गयी एक महान् अलौकिकतायुक्त 'लौकिक काव्य-रचना' है। केवल कन्नड ही नही, समग्र भारतीय वाड्मय को दिया गया राघवांक का यह अतुलनीय उपहार है। वस्तुत. यही वह महाकृति है जहाँ पहुँचकर राघवांक ने अपने आचार्य हरिहर को भी काफी पीछे छोड दिया है, जहाँ उसने अपने गुरु के महोत्साह को बाँध कर काव्य को कलात्मकता और नाटकीयता-जैसे दो नवीन तत्व अर्पित कर दिये हैं।"

## राघवांक का महत्व

राघवांक अद्वितीय प्रतिभाशाली महाकवि था। उसके सम्पूर्ण साहित्य का अध्ययन यह बताता है कि यद्यपि उसकी शैली पर पूर्व-प्रचलित मार्ग-शैली तथा हरिहर की शैली की छाप है, तथापि अन्त मे उसमें अपनी निजी विशिष्टता भी है। कहीं तो पूर्व-प्रचलित काव्य-परम्परागत आलंकारिकता और सस्कृत भाषा का व्यामोह दिखाई देता है, और कहीं हरिहर के उद्गार और पुनरोक्तियाँ दिखाई देती हैं। लेकिन इतना होने पर भी राघवांक का काव्य प्रवाहपूर्ण और सयत है—और वस्तुत, यही उसकी मौलिकता है। अपने गुरु हरिहर की गद्य-शैली को राघवांक ने अपनाया तो है, पर उसे पद्य-रूप देकर। उसने गद्य-शैली मे कुछ भी नही लिखा, जो कुछ भी लिखा, पद्य-शैली मे लिखा। सगीतात्मकता उसके साहित्य की मूलभूत, प्राथमिक विशेषता है। मध्यकालीन कन्नड भाषा का सम्मिश्रण भी उसके साहित्य मे मिलता है।

षट्पदी छन्द में महाकाव्य लिखने वाला राघवांक पहला कवि है। उसने इस छन्द के अनेक ऐसे भेदो को अपने साहित्य मे आविष्कृत करके स्थान दिया है जो उसके पहले कभी नहीं देखे गये थे। वास्तव मे,

राघवांक क्रान्तिकारी कवि था जिसने गुरु भक्ति मे अपने व्यक्तित्व को नहीं खोया। वह स्वतन्त्र प्रकृति का श्रेष्ठ महाकवि था। कन्नड-साहित्य के इतिहास मे राघवांक का महत्व केवल इसी एक तथ्य से आँका जा सकता है कि उसने अपनी प्रतिभा के बल पर षट्पदी छन्द मे काव्य-रचना करके जिस नये मार्ग को प्रशस्त किया था, बाद मे अनेक कवियो ने उसी मार्ग का अनुसरण किया।

## केरेय पद्मरस

यह होयसल वशी नरेश नरसिंह बल्लाल का मन्त्री और सेनापति था। बेलूर मे एक तालाब बनवाने के कारण यह 'केरेय पद्मरस' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके लिखे दो ग्रन्थ उपलब्ध होते है—'सानन्द चरित्र' और 'दीक्षाबोध'।

'सानन्द चरित्र' संस्कृत मे लिखा गया ग्रन्थ है।

'दीक्षाबोध' पद्मरस की कन्नड-रचना है जिसमे गुरु-शिष्य-सवाद-रूप मे लिंगायतो की दीक्षा से सम्बन्धित साम्प्रदायिक-सात्त्विक विषयों का वर्णन 'रगळे' छन्द मे किया गया है। पद्मरस की काव्य-शैली प्रवाहपूर्ण तथा प्रसाद-गुण युक्त है। भक्ति के आवेशजन्य वर्णनो तथा पर-तत्व के स्वरूप-निर्धारण मे उसकी सहज प्रतिभा प्रस्फुटित हुयी है।

सन् 1385 ई० मे पदमरस के एक वंशज पद्मणांक ने 'पद्मराज-पुराण' शीर्षक से उसका जीवन-चरित्र लिखा है। इस ग्रन्थ की विवेचना आगे के पृष्ठों मे की जायेगी।

## बसव-युगीन अन्य शैव कवि

बसव-युग के लिंगायत-साम्प्रदायी वीर-शैव वचनकारो—बसवेश्वर, अल्लम प्रभु, चेन्न बसवेश्वर, सिद्धराम तथा महादेवियक्का (बसव-युगीन पचरत्न)—तथा भक्ति-रस के शैव-कवियो—हरिहर, राघवांक तथा पद्मरस [बसव युगीन कवित्रय]—के अतिरिक्त 12वी, 13वी शताब्दी मे अन्य अनेक शिव-भक्त कवियो ने शैव-साहित्य-रचना की। पूर्वोक्त आठ शैव-साहित्यकारो को छोडकर शेष शैव-साहित्यकारों को सम्बन्धित तालिका आगे प्रस्तुत की जा रही है।

| | कवि का नाम | रचना-काल | रचनायें |
|---|---|---|---|
| 1 | कुमार पद्मरस | 12वी-13वी सदी का सक्रमण-काल | सानन्द-चरित्र । |
| 2. | पाल्कुरिके सोमनाथ | 12वी-13वी सदी का सक्रमण-काल | बसव पुराण, शील-सम्पादन, सहस्रगणनाम, सद्गुरुरगळे, रामेश्वर-शतक आदि । |
| 3. | सोमराज | " | 'शृगार-सार' उपनाम 'उद्भट काव्य' । |
| 4. | भीमकवि | 14वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध | बसव-पुराण । |
| 5. | पद्मणाक | सन् 1385 ई० | पद्मराज-पुराण । |

इन पाँचो कवियो का सक्षिप्त साहित्य-परिचय निम्नलिखित है

## कुमार पद्मरस

यह केरेय पद्मरस का पुत्र था तथा इसका लिखा केवल एक ही ग्रथ 'सानन्द्-चरित्र' प्राप्त है । इस ग्रथ मे कुमार ने 'नम शिवाय' के पचाक्षरी मन्त्र की महिमा का वर्णन किया है ।

## पाल्कुरिके सोमनाथ

यह एक प्रसिद्ध शैव कवि था । आन्ध्र मे जन्मा सोमनाथ बाद में कर्नाटक मे आकर बस गया था । कन्नड और तेलुगु दोनो भाषाओं का पण्डित होने के कारण दोनो ही भाषाओ मे इसने पुस्तकें लिखी हैं । भक्त-भण्डारी, युग-प्रवर्तक बसवेश्वर का जीवन-चरित्र सबसे पहले इसी ने 'बसव-पुराण' के नाम से तेलुगु मे लिखा था । बाद मे लगभग 200 वर्ष बाद भीमकवि ने इसे कन्नड मे अनूदित किया । मूल-ग्रन्थ अप्राप्य है । इसके लिखे अन्य ग्रन्थो में शील-सम्पादन, सहस्रगणनाम, सद्गुरुरगले आदि अनेक छोटी धार्मिक पुस्तको तथा स्तोत्रो के नाम लिए जाते हैं जिनमे साहित्यिकता की मात्रा नगण्य है । एक अन्य ग्रन्थ 'रामेश्वर शतक' भी इसी की रचना बताई जाती है, किन्तु इस सम्बन्ध मे विद्वान् अभी एकमत नही हो पाये हैं कि इसका वास्तविक रचनाकार पाल्कुरिके सोमनाथ ही है, या अन्य कोई कवि ।

लालित्य । मार्ग-शैली की प्रधानता है । प्रौढ-काव्य के व्यामोह मे पडने के फलस्वरूप इसमे अनावश्यक रूप से सस्कृत शब्दो को ठूँसा गया है ।

## (3) बसव-युगीन जैन-साहित्य

पम्प-युग का अध्ययन करते समय हमने देखा था कि उस युग मे जैन-धर्म उन्नति के शिखर पर पहुँच गया था तथा राज्याश्रय प्राप्त होने के फल-स्वरूप उत्कृष्ट कोटि का जैन-साहित्य लिखा गया था । साथ ही यह भी स्पष्ट हुआ था कि उस युग मे यद्यपि जैन-साहित्य की प्रधानता रही थी, किन्तु साथ-साथ भागवत-सम्प्रदायी वैदिक-मतावलम्बी ब्राह्मण कवियो द्वारा भी साहित्य लिखा गया था । 12वी शताब्दी के आरम्भ होते-होते जैन-धर्म का ह्रास होना आरम्भ हुआ और शताब्दी का मध्य आते-आते इसने राज्याश्रय खो दिया । अब इसका स्थान वीर-शैव सम्प्रदाय अथवा लिंगायत सम्प्रदाय ने ले लिया । अनेक राजाओ ने वीर-शैव सम्प्रदाय को प्रश्रय देकर इसका पोषण किया । फलत प्रचुर मात्रा मे शैव-साहित्य की रचना हुई ।

स्मरणीय है, राज्याश्रय खो देने के बाद भी बसव युग मे अनेक जैन-कवियो ने जैनपरक साहित्य की रचना की । साथ ही साथ ब्राह्मण कवियो द्वारा भी साहित्य-रचना चलती रही । अन्य अनेक विषयो पर भी साहित्य लिखा गय । आगे इन तीनो प्रकार के साहित्य पर अलग-अलग विचार किया जायेगा ।

### बसव-युगीन जैन-कवि

इस युग के उल्लेखनीय जैन-कवियो का साकेतिक तालिकाबद्ध परिचय नीचे दिया जा रहा है :

| जैन-कवि | रचना-काल | आश्रयदाता | रचनाएँ और स्वरूप |
|---|---|---|---|
| 1. नेमिचन्द्र | 12वी-13वी सदी का सक्र-मण-काल | रट्टराज लक्ष्मण देव तथा होयसलवशी बल्लाल राजा का प्रधान मन्त्री पद्मनाथ | 1. लीलावती प्रबध— चम्पू-काव्य<br>2. नेमिनाथ पुराण— „ |
| 2. बोप्पण्णा पण्डित | „ | — | 1. गोम्मट स्तुति<br>2. निर्वाण लक्ष्मीपति नक्षत्रमालिका } —? |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 3 | अग्गल | सन् 1189ई० | — | चन्द्रप्रभ पुराण—चम्पू |
| 4 | आचण्णा | सक्रमण-काल | — | 1. वर्धमान पुराण—चम्पू<br>2 श्रीपदाशीति—94 पद |
| 5 | बंधुवर्मा | ? | — | 1 हरिवंशाभ्युदय—चम्पू<br>2 जीवसम्बोधने— ? |
| 6 | पार्श्व पण्डित | सन् 1205ई० | — | पार्श्वनाथ पुराण—चम्पू |
| 7. | जन्न | सन् 1206-1230 ई० | होयसल वंशी राजा बल्लाल नरसिंह | 1. अनेक शिलालेख<br>2 यशोधर चरित—चम्पू<br>3 अनन्तनाथ पुराण—,,<br>4. अनुभव मुकुट—कामशास्त्र |
| 8. | आण्डय्या | 13वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध | — | कब्बिगर काव—ध्वनि-काव्य |
| 9. | कुमुदेन्दु | ,, | — | कुमुदेन्दु रामायण—मार्ग-काव्य |
| 10 | गुणवर्मा द्वितीय | ,, | — | पुष्पदन्त पुराण— (पुराण-काव्य) |
| 11 | कमलभव | ,, | — | शान्तीश्वर पुराण— (पुराण-काव्य) |
| 12 | महाबल | 14वीं सदी—पूर्वार्द्ध | — | नेमिनाथ पुराण— (पुराण-काव्य) |
| 13 | मधुर | 14वीं सदी—उत्तरार्द्ध | — | 1. धर्मनाथ पुराण— (पुराण-काव्य)<br>2 गोम्मट-स्तुति— |
| 14. | हस्तिमल्ल | ,, | — | पूर्व-पुराण—गद्य-ग्रन्थ |

उक्त तालिका से बसव-युगीन जैन-धर्मावलम्बी साहित्यकारो का साकेतिक परिचय प्राप्त होता है जिनके द्वारा रचित साहित्य की विवेचना यहाँ की जायेगी।

## नेमिचन्द्र

बसव-युगीन जैन-साहित्यकारो मे नेमिचन्द्र का नाम सर्वोपरि है। यह सुप्रसिद्ध ब्राह्मण कवि रुद्रभट्ट का समकालीन, मित्र और होयसलवंशी नरेश वीर बल्लाल नरसिंह का दरबारी पण्डित-कवि था। यह महापण्डित और शृगार-रस-प्रेमी था। इसके लिखे दो ग्रथ हैं . 'लीलावती प्रबन्ध' और 'नेमिनाथ पुराण'।

लीलावती प्रबन्ध—यह ग्रथ अपने सक्षिप्त नाम 'लीलावती' से ही प्राय जाना जाता है। इस प्रबन्ध-काव्य की रचना नेमिचन्द्र ने रट्टराज लक्ष्मण देव के आश्रय में की थी। शृगार-रस-प्रधान इस काव्य मे प्रिय के स्वप्न-दर्शन

से उत्पन्न प्रणय, नायक-नायिका का संयोग, दोनों प्रेमियो का बिछुड़कर अन्त मे पुन मिलन से सम्बन्धित वृत्तान्त का वर्णन किया गया है। काव्य की नायिका लीलावती है और नायक कन्दर्प देव।

उल्लेखनीय है, लीलावती की इस प्रेम कथा का मूल कथानक सुप्रसिद्ध सस्कृत-नाटककार सुबन्धु कृत गद्य-काव्य 'वासवदत्तम्' से गृहीत है। इसी गद्य-काव्य के आधार पर नेमिचन्द्र ने अपने 'लीलावती' चम्पू-काव्य की रचना की है। शैली पर भी महाकवि बाणभट्ट और सुबन्धु की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। यहाँ तक कि सुबन्धु कृत 'वासवदत्तम्' और नेमिचन्द्र कृत 'लीलावती' के पात्रो के नामो में कुछ अन्तर अवश्य मिलता है, किन्तु पूर्वार्द्ध की कथा दोनो की एक है। कथा के उत्तरार्द्ध मे भी नेमिचन्द्र ने नाममात्र को ही परिवर्तन किया है। अभिप्राय यह है कि इस प्रबन्ध-काव्य की कथावस्तु मूलत बाणासुर की कथा, सुबन्धु कृत 'वासवदत्तम्' तथा बाणभट्ट की 'कादम्बरी' और कालिदास कृत 'विक्रमोर्वशीय' से प्रभावित अवश्य है, परन्तु उसमे विशिष्टता लाने के लिए नेमिचन्द्र ने कथानक मे जैन-धर्म का पुट दे दिया है।

वर्णनो की भरमार कथा-गति को मन्द और बोझिल बना देती है। कहीं पर तो ये वर्णन शृगार के स्थायी-भाव रति का पोषण करते हैं, परन्तु कही पर यही वर्णन असगति पैदा करने की वजह बन गये हैं। मार्ग-काव्य-परम्परागत वर्णनो में फँसे नेमिचन्द्र पर यहाँ भी सुबन्धु की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। श्री सिद्धगोपाल काव्यतीर्थ के मत मे, "इतना सब कुछ होने पर भी 'लीलावती' न अनुवाद है, न अनुकरण। उसका कल्पना-चमत्कार और शब्द-सम्पत्ति अपनी है।" किन्तु हमारी सम्मति मे यह मत तर्कसगत नहीं है। यद्यपि यह सच है कि नेमिचन्द्र ने अपनी इस मान्यता, कि 'स्त्री-रूप ही रूप है, शृगार-रस ही रस है, को 'लीलावती' में प्रतिपादित करते हुए अपनी विशिष्टता अवश्य दिखलाई है; तथापि यह भी सच है कि "नेमिचन्द्र का 'लीलावती' सुबन्धु की 'स्वप्नवासवदत्तम्' का अनुकरणमूलक स्वतन्त्र कन्नड़ अनुवाद है।"

**नेमिनाथ पुराण**—यह चम्पू-काव्य है। इसकी रचना नेमिचन्द्र ने होयसल-वशी नरेश वीर बल्लाल नरसिंह के प्रधानमत्री पद्मनाथ की प्रेरणा से प्रेरित होकर की थी। इसके अन्तर्गत यदुवश और कुरुवश* की कथा,

* जैन मत के अनुसार, 20वें तीर्थंकर मुनिव्रत तथा 22वें तीर्थंकर नेमिनाथ का वश वही था जो श्रीकृष्ण का था। नेमिनाथ, श्रीकृष्ण और बलराम के चचेरे भाई तथा उन्ही की तरह कृष्ण-वर्ण के ( साँवले रग के )

विशेष रूप से कृष्ण की कथा, का वर्णन हुआ है। इस कथा के माध्यम से जैन-मतावलम्बी नेमिचन्द्र ने जैन धर्म के प्रति अपनी निष्ठा और अपने आश्रयदाता राजा बल्लाल की विष्णु-भक्ति, दोनो ही की सन्तुष्टि की है। कहते हैं, इस ग्रन्थ में कवि ने कृष्ण-लीला और कस-वध की कथा को विस्तार से प्रस्तुत किया था; किन्तु यह पूरा ग्रन्थ अप्राप्य है। इस ग्रन्थ के उपलब्ध भाग मे केवल कस-वध तक की कथा ही मिलती है, अतः इस अपूर्ण ग्रन्थ को 'अर्द्धनेमि' भी कहा जाता है। कुछ लोगो की यह भी मान्यता है कि नेमिचन्द्र अपने इस ग्रन्थ को पूर्ण नही कर सका था, इसके पूर्व ही उसकी मृत्यु हो गई थी।

उल्लेखनीय है, नेमिचन्द्र ने इस ग्रन्थ की रचना 10वीं शताब्दी के चाउण्डराय कृत चाउण्डराय पुराण', 11वी शताब्दी ( उत्तरार्द्ध के कर्ण-पार्य कृत 'नेमिनाथ पुराण', तथा अनेक सस्कृत एव प्राकृत ग्रन्थो के आधार पर—विशेषकर 'चाउण्डराय पुराण' का अनुकरण करते हुए—की थी। लेकिन इसके बावजूद भी 'नेमिनाथ पुराण' की कुछ अपनी अलग विशेषताएँ हैं, जिनका उल्लेख करना आवश्यक सा प्रतीत होता है।

इस ग्रन्थ की सर्वप्रथम विशेषता यह है कि, पूर्ववर्ती जैन-पुराणो मे मिलने वाली 'भवावली'-जैसी क्लिष्टता और धर्म का नीरस, बेजान प्रचार इसमे नहीं है। दूसरे, इसमे आनेवाला हर पात्र जीवित और स्वाभाविक है। उदाहरणार्थ, इसका कृष्ण चाउण्डराय अथवा कर्णपार्य के कृष्ण की तरह ईश्वर की कृपा से पलने वाला कोमल शिशु न होकर अपनी शक्ति से यशस्वी बनने वाला अद्वितीय शूरवीर है। नेमिचन्द्र की यह पात्र-जन्य विशेषता 'लीलावती' मे भी नही उभर पाई है। उसके पात्र कठपुतली की तरह निर्जीव दिखाई देते हैं, जबकि इसके पात्र साधारण मनुष्य की भाँति चलते-फिरते, कार्य करते हुए दिखाई देते हैं। तीसरे, पात्रो मे देवत्व नहीं मिलता—जैसे वासुदेव और कृष्ण कारण-पुरुष होते हुए भी अति-मानव (super human being) अथवा ईश्वर के अवतार-रूप मे चित्रित नही हुए हैं। चौथे, लीलावती की तरह वर्णनो के प्रति कवि का मोह यहाँ भी बना हुआ है। किन्तु यहाँ के वर्णन केवल अलकार-प्रदर्शन और वाक्-चातुर्य के प्रदर्शन हेतु

---

थे। जैन लोग इसी वश को 'यदुवश' तथा 'हरिवश' के नाम से पुकारते हैं, अत कृष्ण कथा इसी वश-कथा का एक भाग मानी जाती है।

और चूँकि कौरव-पाण्डव के पूर्वज महाराजा कुरु थे, अत जैन लोग महाभारत की कथा को 'कुरुवश-कथा' भी कहते हैं।

ही नही हैं, अपितु उनमे भावात्मकता और निरीक्षण की परिपक्वता भी निहित है।

इस प्रकार नेमिचन्द्र की यह रचना 'लीलावती' से कही अधिक श्रेष्ठ है। श्री आर० एस० मुगलि ने नेमिचन्द्र की इस रचना का मूल्यांकन करते हुए लिखा है "इस ग्रन्थ मे महाकाव्य का सत्व तो है, परन्तु सिद्धि नहीं। अतएव इसे उच्चकोटि का सत्काव्य तो कहा जा सकता है, किन्तु महाकाव्य नही।"

श्री मुगलि ने नेमिचन्द्र का साहित्यिक मूल्यांकन करते हुए लिखा है—"वह पम्प और रन्न की सीमा तक नही' पहुँचता····अगर नेमि मे वर्णन का मोह कम होता, प्रमाण-ज्ञान अधिक होता और जीवन-दर्शन मे गम्भीरता होती तो वह भी महाकवि हो सकता था। कल्पना सम्पत्ति और वाक्-चातुर्य होने पर भी गम्भीर दर्शन तथा औचित्य बुद्धि के अभाव मे उसे महाकवि का पद नहीं दिया जा सकता। यही बात नेमिचन्द्र जैसे अनेक अन्य कन्नड-कवियो पर भी लागू होती है।"

## बोप्पण्णा पण्डित

इसका उपनाम सुजनोत्तस था। यह जैन-मतावम्बी था। इसने 'गोम्मट स्तुति' और 'निर्वाण लक्ष्मीपति नक्षत्रमालिका' शीर्षक से दो छोटी पुस्तकें लिखी हैं। दोनो ही ग्रन्थों मे 28-28 पद हैं। इसके सम्बन्ध में उल्लेखनीय है कि यह जैन-मतावलम्बी होते हुये भी सकीर्ण धार्मिक मनोवृत्ति का व्यक्ति नहीं था। इसकी उदारवादी धार्मिक विचारधारा इसके निम्न पद से पूर्णत स्पष्ट हो जाती है—

"परमेश परमेष्टि शम्भु अभव,
ब्रह्मशिव शकर।
स्मरसहारंकमच्युत सुरहर बुद्ध जिन—
विष्णुवेदरहस्य, प्रभुशुद्ध नेन्दु नेगलिन्तप्प नामालिय··
निर्वाण लक्ष्मीपति।"

## अग्गल

यह जैन कवि था जिसने सन् 1189 ई० मे जैनियो के 8वें तीर्थंकर चन्द्रप्रभ के जीवन-चरित पर आधारित 'चन्द्रप्रभ-पुराण' लिखा था। पूर्ण रूप से जैन-काव्य-परम्परा का अनुगमन करनेवाले इस ग्रन्थ मे कवि की प्रतिभा और मौलिकता अत्यल्प मात्रा मे दिखाई देती है। ग्रन्थ मे 18 आश्वास हैं।

उल्लेखनीय है, सन् 1050 ई० मे श्रीधराचार्य-उपनामधारी पम्प-युगीन कवि श्रीविजय ने भी 'चन्द्रप्रभ चरित' नाम से तीर्थंकर चन्द्रप्रभ का जीवन-चरित लिखा था, जो अप्राप्य है। अतएव अग्गल कृत 'चन्द्रप्रभ पुराण' ही इस तीर्थंकर का एकमात्र उपलब्ध चरित-काव्य है।

## आचण्णा

इस जैन-कवि ने दो पुस्तकें लिखी थी। इसका पहला ग्रथ 'वर्धमान पुराण' है जिसके अन्तर्गत कवि ने जैन-धर्म के चौबीसवें तथा अन्तिम तीर्थंकर वर्धमान का चरित प्रस्तुत किया है। इस ग्रथ के बारे मे कहा जाता है कि इसकी रचना का कार्य आचण्णा के पिता ने आरम्भ किया था, किन्तु वह इसे पूरा न कर सके थे। अपने पिता की मृत्यु के उपरान्त आचण्णा ने इस काव्य को पूर्ण किया था। ग्रथ मे 18 आश्वास हैं तथा यह पुराण भी अग्गल के पुराण-जैसा ही प्राचीन आचार्यों द्वारा प्रतिपादित प्रौढ शैली मे लिखा गया अलकारो से बोझिल पाण्डित्यपूर्ण काव्य-ग्रन्थ है।

आचण्णा की दूसरी रचना 'श्रीपदाशीति' है। इसमें कवि ने पच-नमस्कार-महिमा का वर्णन 94 पदों मे किया है।

## बन्धुवर्मा

बन्धुवर्मा कृत दो ग्रथ 'हरिवशाभ्युदय' तथा 'जीवसम्बोधने' प्राप्त होते हैं। इनमे से 'हरिवशाभ्युदय' चम्पू-काव्य है। प्रौढ शैली में इस काव्य के अन्तर्गत तीर्थंकर नेमिनाथ के जीवन-चरित के साथ-साथ गौणत महाभारत तथा कृष्ण आदि की कथाओं का भी वर्णन किया गया है। वस्तुत. यह ग्रन्थ प्राचीन काव्यो का अन्धे की तरह किया गया अनुकरण मात्र है। न इसमे कोई शैली-गत नवीनता है, न विषयगत और न काव्य-रूपगत।

'जीवसम्बोधने' अपने ढग की एक अनूठी प्रौढ़ काव्य-रचना है। इसमे 12 परिच्छेद हैं जिनके अन्तर्गत जैन-धर्म के सिद्धान्त बतलाए गये हैं। हर परिच्छेद के आरम्भ मे एक जैन-सिद्धान्त है जिसको समझाने के लिए उसी परिच्छेद मे एक कथा कही गयी है। उल्लेखनीय है, सन् 1112 ई० और सन् 1150 ई० में लिखे गये क्रमश नयसेन कृत 'धर्मामृत' तथा ब्रह्म-शिव कृत 'समय-परीक्षा' में कथाओ द्वारा सिद्धान्तो को समझाया गया है। किन्तु इन तीनों मे भेद है। 'धर्मामृत' में सिद्धान्त पक्ष दब गया है और कथा प्रधान हो गई है, 'समय-परीक्षा' में कथा-तत्व दब गया है, सिद्धान्त-निरूपण का उद्देश्य मुख्य हो गया है, परन्तु 'जीवसम्बोधने' इन दोषो से सर्वथा मुक्त है। वैराग्य और नीतिपरक उपदेशो को जिस मर्मस्पर्शिता के साथ बन्धुवर्मा ने

अपनी प्रभावोत्पादक शैली के साथ प्रस्तुत किया है, वह वास्तव में सराहनीय है। सच तो यह है कि " 'जीवसम्बोधने' अपने पूर्ववर्ती ग्रंथों 'धर्मामृत' और 'समय-परीक्षा' की तुलना में कहीं अधिक श्रेष्ठ है।"

## पार्श्वपण्डित

पार्श्वपण्डित नामक इस जैन-कवि ने सन् 1205 ई० में 23वें जैन-तीर्थंकर पार्श्वनाथ का जीवन-चरित 'पार्श्वनाथ पुराण' नाम से लिखा था पार्श्वनाथ की कन्नड में यह पहली जीवनी है। इसमें पम्प-युगीन नागचन्द्र के काव्य-जैसा प्रसाद गुण मिलता है। यह एक उच्चकोटि का 'पण्डित-कवि' और महाकवि जन्न का समकालीन था।

## जन्न

परिचय—बसव-युगीन साहित्यकारों में जन्न का नाम बहुत आदर के साथ लिया जाता है। युग के श्रेष्ठ कवियों में एक जन्न भी था। कुछ आलोचकों ने तो इसकी प्रतिभा को आदि-कवि पम्प के समकक्ष ठहराया है। यह पम्प युगीन कवि सुमनोबाण का पुत्र, नागवर्मा द्वितीय का शिष्य, मल्लिकार्जुन का साला तथा केशिराज का मामा था। होयसलवंशी नरेश वीर बल्लाल नरसिंह के दरबार में इसे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। बल्लाल राजा द्वारा प्रदत्त 'कवि-चक्रवर्ती' की उपाधि से विभूषित जन्न ने अपने सम्बन्ध मे यह गर्वोक्ति कही है—"खड़ा होने पर मैं सेनापति, बैठने पर मंत्री और साहित्य-रचना करने लगूँ तो कवि हूँ।" जन्न की यह गर्वोक्ति उसकी चतुर्मुखी प्रतिभा की साक्षी है। इसने अपने-आपको 'दान का सागर' बताया है। अपने ही द्वारा प्रदत्त इस विशेषण को सार्थक करने के लिए जन्न ने अनेक जैन-मन्दिर बनवाये थे। यह जैन-मतावलम्बी था।

## जन्न-साहित्य

जन्न ने अनेक शिलालेखों के माध्यम से अपने साहित्यिक-जीवन की नींव बहुत पहले ही डाल दी थी, जबकि इसका ग्रंथों के रूप मे साहित्य-रचना करने का काल सन् 1206-1230 ई०, अर्थात् 24 वर्ष, है। इस लम्बे समय मे जन्न ने कुल तीन ग्रंथों का प्रणयन किया—'यशोधर-चरित', 'अनुभव-मुकुट' तथा 'अनन्तनाथ पुराण'।

यशोधर-चरित—सन् 1206 ई० में रचित जन्न का यह छोटा-सा, 310 पदों का, काव्य उसकी सबसे प्रसिद्ध रचना है। इस काव्य के अन्तर्गत जन्न ने जैन-परम्परा के अनुसार चली आ रही एक परम्परागत प्रसिद्ध कहानी

का वर्णन किया है। उज्जयिनी-नरेश यशोधर इस काव्य का कथा-नायक है जिसके इर्द-गिर्द ही सारी कथावस्तु चक्कर काटती है। इस कथा के मूल स्रोत वादिराज कृत सस्कृत के चम्पू-काव्य 'यशस्तिलक' और 10वी शताब्दी के सुप्रसिद्ध अपभ्र श-भाषा के महाकवि पुष्पदन्त कृत अपभ्र श-महाकाव्य 'जसहर चरिउ' नामक ग्रथ हैं। 'यशस्तिलक' की सम्पूर्ण कथा को ही यत्किंचित परिवर्तन के साथ जन्न ने 'यशोधर-चरित' मे प्रस्तुत किया है। इस सम्बन्ध मे जन्न ने स्वय लिखा है, "मैंने सस्कृत, प्राकृत और कन्नड मे कही गई कथा को ही सरस पद-पद्धति मे कहा है," किन्तु कन्नड मे जन्न से पहले लिखी गई यह कथा अब उपलब्ध नही है। यद्यपि इस कथा का वर्णन आज उपलब्ध होनेवाली दो हस्तलिखित प्रतियो मे मिलता है, परन्तु ये दोनो ही जन्न के काफी बाद की रचनाएँ हैं। तमिळ भाषा मे यही कथा 'यशोधरकावियम्' शीर्षक से मिलती है।

'यशोधर-चरित' की कथा अहिंसा के महत्व का प्रतिपादन करने वाली एक बहुत ही सीधी-सादी कथा है जिसे जन्न ने अपनी प्रतिभा का उपयोग करके अत्यन्त प्रभावशाली सुन्दर काव्य का रूप दे दिया है। वादिराज के ग्रन्थ 'यशस्तिलक' मे वर्णित राजा यशोधर की कथा को ज्यो-का त्यो प्रस्तुत करते हुये भी जन्न ने अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन कर ही दिया है। श्री० के० वी० राघवाचारी के शब्दों मे, "कुल मिलाकर जन्न का यह काव्य वादिराज के सस्कृत काव्य का सरल कन्नड-अनुवाद है।" परन्तु इस ग्रन्थ के बारे मे केवल इतना ही कहना पर्याप्त नहीं है। सच तो यह है कि जन्न ने 'यशस्तिलक' का अनुवाद करते समय अपने सौन्दर्य-बोध का यथेष्ट उपयोग किया है। वास्तव मे, इस अनुवाद के मूल मे जन्न का यह उद्देश्य निहित है कि वह वादिराज के आधार पर एक सुन्दर, सरस शब्द-चित्र तैयार करना चाहता था। यही कारण है, कथा के कुछ अशों को तो उसने विस्तार दिया है, कुछ को सक्षिप्त कर दिया है और कुछ को अनावश्यक मानकर छोड़ दिया है। अनेक स्थलो पर भावपुष्टि और अर्थप्रसाद के लिए उसने कई नवीन बातें भी जोड दी हैं।

'यशोधर-चरित' के सम्बन्ध मे श्री सिद्धगोपाल काव्यतीर्थ का यह मन्तव्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि "कवि-धर्म और जैन-धर्म का परस्पर समन्वय करने की जो होड आदि पम्प से जन्न तक के कवियो मे लगी हुयी थी, जन्न उनमे सबसे आगे निकल गया है। उसने काव्य-धर्म का निष्ठा से पालन करते हुए न केवल जैन-धर्म का तत्व बतलाया है, बल्कि विश्व-धर्म के रहस्य को भी सूचित किया है· ·मानव-स्वभाव, विधि-

विलास, धर्म तत्व आदि को बतलाते हुए जन्न ने 'यशोधर-चरित' में उज्ज्वल रीति से एक प्रणय-समस्या को चित्रित करके हिंसा-अहिंसा का परिणाम दिखलाया है; और इस प्रकार 'कान्ता-सम्मत' कोमल ढंग से नीति का उपदेश दिया है।"

छन्दों की दृष्टि से भी यह एक पूर्णतः नवीन प्रकार की काव्य-रचना है।

अनन्तनाथ पुराण—जन्न की यह दूसरी श्रेष्ठ रचना है, जिसके अन्तर्गत 14 आश्वासों में 14वें तीर्थंकर अनन्तनाथ की कथा को कविता-बद्ध किया गया है। संस्कृत में लिखे गये 'उत्तर पुराण' और पम्प-युगीन कन्नड़ के 'चाउण्डराय पुराण' में तीर्थंकर अनन्तनाथ की अत्यन्त लघु कथा आती है। जन्न ने अपनी कवित्व-प्रतिभा का कलात्मक उपयोग करके इसी छोटी-सी कथा में परम्परागत चम्पू-काव्य के 18 वर्णनों तथा जैन-पुराणों की अष्टांग रूढ़ियों को आबद्ध करते हुए एक श्रेष्ठ, पाण्डित्य-पूर्ण महा-काव्य की रचना कर दी है।

उल्लेखनीय है, काव्य में अनन्तनाथ के पंच-कल्याण* का अत्यन्त सुन्दर एवं हृदयग्राही ढंग से वर्णन करने के बाद भी उसमें वही पुरानी साम्प्रदायिक रूढ़ियाँ और तत्सम्बन्धी विवरण हैं जिन्हें पढ़ते समय प्रायः पाठक ऊब जाता है।

दूसरी मुख्य बात यह, कि यद्यपि मुख्य कथा बहुत छोटी है, फिर भी जन्न ने अपनी प्रतिभा के प्रयोग से चण्डशासन से सम्बन्धित प्रासंगिक कथा** को जोड़कर मुख्य कथा की कमी को पूरा कर दिया है। चण्डशासन

---

*पंच-कल्याण—तीर्थंकर [अर्थात् पैगम्बर, या Prophet] का गर्भावतार, उसका जन्म-अभिषेक, परिनिष्क्रमण ( गृहत्याग ), कैवल्य-ज्ञान ( ज्ञान की प्राप्ति ) तथा निर्याण ( निर्वाण ); ये पांच तत्व जैन-दर्शन के अन्तर्गत 'पंच-कल्याण' कहलाते हैं।

** किसी भी कथा-प्रधान साहित्यिक रचना—नाटक, उपन्यास अथवा महाकाव्य—में प्रायः दो प्रकार की कथाएँ मिलती हैं : 'मुख्य कथा' तथा 'प्रासंगिक कथा'। मुख्य कथा वह मूल कथा या कहानी होती है जिसके आधार पर रचना की जाती है, और जो रचना के सर्वप्रमुख पात्र नायक, अथवा किसी समस्या, अथवा स्थान आदि से सम्बन्धित होती है। किन्तु प्रायः मुख्य कथा के साथ-साथ ऐसी भी कथाएँ आती हैं जो नायक के चरित्र को उभारने में सहयोग देती हैं और आवश्यकता के अनुरूप या

से सम्बन्धित यह प्रासागिक कथा दुखान्तक† की है । एक विद्वान् आलोचक के मतानुसार, "अनन्तनाथ पुराण रूपी घोर वन मे केवल यही एक सौन्दर्य-निकुज है । यह प्रासागिक कथा सार-रूप मे इस प्रकार है—चण्डशासन अपने बाल-मित्र वसुषेण की पतिव्रता पत्नी सुनन्दा पर आसक्त हो जाता है, और उसे धोखा देकर अपने साथ सुनन्दा को बुला ले लाता है । किन्तु चण्ड का हर प्रयास विफल होता है । वह सुनन्दा को अपनी ओर किसी भी तरह आकर्षित कर पाने मे सफल नही हो पाता है । अन्त मे चण्ड अपने अन्तिम अस्त्र का उपयोग करता है । वह सुनन्दा को वसुषेण का कटा हुआ नकली सिर दिखाकर अपना काम सिद्ध करना चाहता है , लेकिन यहाँ भी चण्ड असफल रहता है । कटे हुए सिर को देखते ही सुनन्दा प्राण त्याग देती है । तब वासना का पुतला चण्ड सुनन्दा के शव का ही आलिगन करता है और उसी आलिगनबद्ध अवस्था मे आत्महत्या कर लेता है । कुछ देर बाद जब वसुषेण युद्ध के इरादे से चण्ड के घर पहुँचता है तो वहाँ का दृश्य देखकर उसका मन विरक्त हो जाता है और वह वैराग्य ले लेता है ।

इस प्रकार उक्त प्रासंगिक कथा के माध्यम से जन्न ने पुरुषमूलक प्रणय-समस्या को बडे सुन्दर ढंग से चित्रित किया है । इसी तरह 'यशोधर चरित' मे जन्न ने स्त्रीमूलक प्रणय-समस्या को चित्रित किया है । एतदर्थ, उसके दोनों ही काव्य समाज की वासनाजन्य प्रेम से सम्बन्धित अत्यन्त महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक समस्या को उद्घाटित करते है । समस्या-प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से ये दोनो काव्य कन्नड-साहित्य के ऐसे उज्ज्वल और अनमोल रत्न हैं जिनके समकक्ष कन्नड के पूर्ववर्ती जन्न-साहित्य का कोई भी ग्रन्थ नहीं ठहरता—और इस दृष्टि से जन्न कन्नड़ साहित्य में पहला समस्यामूलक साहित्यकार था ।

सक्षेप मे, 'अनन्तनाथ पुराण' का अध्ययन इस तथ्य को प्रमाणित कर देता है कि परम्परागत वर्णनो एव अतिशय आलकारिकता ने तीर्थंकर अनन्तनाथ की मूर्ति पर एक गहरा आवरण डाल दिया है ।

---

तो बीच ही मे समाप्त हो जाती हैं, या मुख्य कथा के साथ-साथ अन्त तक चलती रहती है । ऐसी सह-कथाओ को 'प्रासागिक कथाएँ' कहते हैं ।

† दुखान्तक कथा उस कथा को कहते हैं जिसका अन्त दुखद (tragic) हो ।

श्री के० वी० राघवाचारी का मत है, "इस रचना में से शास्त्रो मे बताये गये महाकाव्य के लक्षण झलके पड़ते हैं," अर्थात् शास्त्रीय दृष्टि से यह ग्रन्थ निर्वंशादिक महाकाव्य है। पाण्डित्यपूर्ण एक प्रौढ़ काव्य-रचना है।

अनुभव मुकुट—जन्न की यह तीसरी और अन्तिम कृति है जिसका रचना-काल अज्ञात है। यह कामशास्त्रीय ग्रन्थ है। इसका आधार-ग्रन्थ संस्कृत के महान् सूत्रकार वात्स्यायन का 'कामसूत्रम्' है।

## आण्डय्या

यह जैन-कवि था। इसकी लिखी एकमात्र काव्य-रचना 'कब्बिगर काव' अपने ढंग की एक निराली काव्य-र है। इस ग्रन्थ मे न तो किसी जैन तीर्थंकर का चरित्र वर्णित है, न कोई लौकिक कथा; वरन् इसकी कथा पूर्णरूपेण काल्पनिक है। कन्नड में कवि-कल्पना का यह पहला चमत्कार है, जिसमें कवि की कल्पना-शक्ति अपने चरमत्व पर पहुँची दिखाई देती है। इस काव्य का कथा-सार इन शब्दो मे बताया जा सकता है—"एक बार कामदेव-परिवार के अगभूषण चन्द्र को शिव चुरा लाए। इस पर क्रोधित होकर काम ने शिव पर आक्रमण कर दिया और उन्हें पराजित करके दण्ड देते हुए अर्ध-नारीरूप बना दिया। दण्डित एव अपमानित होने पर शिव ने श्राप दे दिया, फलत. काफी समय तक काम वेश बदल कर इधर-उधर छिपता रहा। फिर एक दिन उसको युद्ध-प्रवृत्ति जागृत हुयी और वह शिव से युद्ध करने चल दिया। रास्ते मे एक जैन मुनि उसकी भेंट हुयी। अज्ञानवश काम ने उसे दण्ड देना चाहा, परन्तु वह ऐसा न कर सका। उसका सारा शरीर अचानक उस श्रमण के तेज को देखकर भय से कांपने लगा। तब भयभीत काम ने उस श्रमण को साष्टांग प्रणाम किया।"

इस प्रकार कवि आण्डय्या ने लौकिक जीवन की प्रेरक-शक्ति काम ( sexuality ), से दूर रहनेवाले तथा सयमित जीवन वितानेवाले जैन साधु तथा उससे हारने पर भी उसे श्राप देने वाले शिव की कथा को ध्वनि-काव्य के रूप मे प्रस्तुत किया है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं, इस ग्रन्थ मे लोक-दर्शन की ध्वनि निहित है। कुछ विद्वानो का मत है, "आण्डय्या ने इस काल्पनिक कथा के माध्यम से अपने आश्रयदाता कदम्ब वंशी राजा ( काव ) की विजय-गाथा को प्रस्तुत किया है।"

कुछ भी हो, आण्डय्या ने कन्नड-साहित्य के इतिहास मे 'कब्बिगर काव'—अर्थात् 'कवियो का रक्षक'—के माध्यम से ऐसा प्रशसनीय साहसी कार्य किया है जो अद्वितीय है, जिसका दूसरा उदाहरण सम्पूर्ण कन्नड-साहित्य मे नही मिलता। अपने इस काव्य की रचना शुद्ध कन्नड भाषा मे करके उसने यह प्रमाणित कर दिखाया है कि सस्कृत शब्दो का प्रयोग किये बगैर भी विशुद्ध कन्नड़ मे ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं। यद्यपि आण्डय्या की भाषा मे सस्कृत शब्दों के तद्भव रूप अवश्य पाये जाते हैं, फिर भी इस दिशा में किया गया आण्डय्या का यह प्रयास बहुत अधिक प्रशसनीय माना जाना चाहिए। इसे कन्नड़-साहित्य का दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि आण्डय्या के इस प्रयास को, उसकी भाषा-क्रान्ति का, बाद के किसी भी लेखक ने नहीं अपनाया। वास्तव मे, इस दृष्टि से आण्डय्या एक महान्, क्रान्तिकारी कवि था।

## कुमुदेन्दु

बसव-युगीन जैन कवियो मे अन्तिम सर्वाधिक महत्वपूर्ण कवि के रूप मे कुमुदेन्दु का नाम लिया जा सकता है। 13वी शताब्दी-उत्तरार्द्ध मे कुमुदेन्दु नामक एक जैन साधु ने षट्पदी छन्द मे जैन परम्परा के अनुसार रामायण लिखी। कुमुदेन्दु कृत यह रामायण अपूर्ण रूप मे प्राप्त हुयी है, और इसमे से भी केवल 8 सन्धियाँ एक भाग मे पुस्तकाकार रूप मे प्रकाशित हुयी हैं। कुमुदेन्दु ने इसकी रचना नागचन्द्र उर्फ अभिनव पम्प कृत 'रामायण' के आधार पर की है। इस ग्रन्थ की सर्वप्रमुख विशेषताएँ छन्द वैविध्य और सगीतात्मकता हैं—अर्थात् हर सन्धि मे अलग-अलग षट्पदी छन्द हैं, साथ-साथ उन्हें किस राग ताल मे गाया जायेगा, यह भी बताया गया है। इस प्रकार यह एक सगीत प्रधान काव्य है जिसके छन्दो मे परम्परागत लक्षणो से कुछ भिन्नता है। वर्णनो मे शैथिल्य दोष भी है। परन्तु इतना सब होते हुए भी इस 'कुमुदेन्दु रामायण' मे संगीत-तत्व की प्रधानता है, प्रौढ काव्य के सारे गुण हैं, और साथ ही प्राचीन तथा नवीन काव्य-शैलियो का सम्मिश्रण है।

कहना न होगा, 'कुमुदेन्दु रामायण' इस तथ्य का ज्वलन्त प्रमाण है कि इस युग मे जैन कवियो का मार्ग-काव्यो के प्रति परम्परागत मोह समाप्त हो चला था और वे भी षट्पदी छन्द मे रचना करने लगे थे।

## गुणवर्मा द्वितीय

गुणवर्मा द्वितीय ने सन् 1230 ई० के आसपास प्राचीन मार्ग काव्य-

शैली का अनुकरण करते हुए 18 वर्णनो का सहारा लेकर 14 आश्वासो से युक्त बृहत् चम्पू-ग्रन्थ 'पुष्पदन्त पुराण' की रचना की थी।

## कमलभव

कमलभव लिखित 'शान्तीश्वर पुराण' 16 आश्वासो मे बँटा पुराण-काव्य है। इसके अन्तर्गत 16वें जैन-तीर्थंकर शान्तीश्वर का चरित वर्णित हुआ है। आकार मे यह पुराण सन् 940 ई० मे रचित पोन्न कृत 'शान्तीश्वर पुराण' से भी ज्यादा बडा है। इसमे पाण्डित्य-प्रदर्शन है, कवि-समय-वर्णन है, सुन्दर कल्पनाएँ हैं, परन्तु वह माधुर्य और हृदयग्राहिता नहीं है जो पाठक को प्रभावित कर सके।

## महाबल

कमलभव के समान ही पाण्डित्य का प्रदर्शन करते हुए महाबल नामक एक जैन-कवि ने 16 आश्वासो से आबद्ध 'नेमिनाथ पुराण' लिखा था। अनुमान है, महाबल पूर्वोक्त जैन-कवि कमलभव का समकालीन कवि था।

## मधुर

14वी शताब्दी के अन्तिम भाग मे मधुर कवि ने दो पुराणो की रचना की। वे हैं—'धर्मनाथ पुराण' और 'गोम्मटस्तुति'। ये दोनो पुराण बसव-युग के अन्तिम जैन-पुराण हैं। इनके बाद बहुत अर्से तक कन्नड मे जैन-पुराणो की रचना नही हुयी। इस दृष्टि से मधुर कृत इन पुराणो का बहुत अधिक ऐतिहासिक महत्व है।

## हस्तिमल्ल

हस्तिमल्ल लिखित केवल एक ग्रन्थ 'पूर्व-पुराण' प्राप्त होता है। बसव-युग मे लिखी गयी यह एकमात्र विशुद्ध गद्य-रचना है।

## (4) बसव-युगीन ब्राह्मण लेखकों का साहित्य

पम्प-युगीन कन्नड-साहित्य का अध्ययन करते समय हमने देखा था कि पम्प-युग में जैन-कवियो की अपेक्षा ब्राह्मण-कवियो की सख्या कम थी, सख्या की दृष्टि से उनमें दो और एक का अनुपात था, परन्तु बसव-युग मे तो ब्राह्मण-कवियो की सख्या बेहद कम हो गई थी। बसव-युगीन ब्राह्मण-कवियो अथवा वैष्णव-साहित्य की रचना करने वाले साहित्यकारो का तालिकित (tabulated) परिचय निम्न ढग से दे सकते हैं—

| कवि | रचना-काल | रचनाएं | विषय | स्वरूप |
|---|---|---|---|---|
| रुद्रभट्ट | सन् 1180-1230 (?) ई० | 1. जगन्नाथ विजय | — | धार्मिक प्रौढ काव्य |
| | | 2 रसकलिके | रसशास्त्र | शास्त्रीय ग्रन्थ |
| देवकवि | ? | कुसुमावलि | कथा-प्रधान | चम्पू |
| नरहरि तीर्थ | सन् 1624 ई० (लगभग) | फुटकर पद | भक्ति | — |
| चोण्डरस | सन् 1300 ई० (?) | अभिनवदश-कुमार चरित | — | अनुवाद |

उक्त चार कवियों के अतिरिक्त बसव-युग में तीन अन्य ब्राह्मण-कवि—अभिनव मगराज, कविमल्ल तथा अभिनव चन्द्र—भी हुए हैं जिनका वर्णन बाद में 'बसव-युगीन शास्त्रीय साहित्य' के अन्तर्गत किया जायेगा। यहाँ केवल उपर्युक्त चारों कवियों की विवेचना ही अभीष्ट है।

## रुद्रभट्ट

बसव-युग का सर्वश्रेष्ठ भागवत-सम्प्रदायी ब्राह्मण कवि रुद्रभट्ट है। यह महाकवि नेमिचन्द्र का समकालीन, उसी की तरह बल्लाल राजा का आश्रित तथा दरबारी पण्डित कवि था। स्मार्त वैदिक ब्राह्मण होते हुये भी यह विष्णु और शिव को समान समझने वाला भागवत-सम्प्रदायी था। यह भगवान् विष्णु का परम भक्त था।

### रुद्रभट्ट का साहित्य

रुद्रभट्ट ने अपने जीवन-काल मे कुल दो ग्रन्थ लिखे थे—'जगन्नाथ विजय' और 'रसकलिके'। 'रसकलिके' रस-शास्त्र से सम्बन्धित ग्रन्थ था जो उपलब्ध नहीं है; अत रुद्रभट्ट की कीर्ति का आधार उसका एकमात्र उपलब्ध ग्रन्थ 'जगन्नाथ विजय' ही है।

जगन्नाथ विजय—रुद्रभट्ट ने इसकी रचना राजा बल्लाल के एक अन्य मन्त्री चन्द्रमौलि की प्रेरणा पाकर की थी। स्वय रुद्रभट्ट के अनुसार इस ग्रन्थ की रचना के पीछे दो उद्देश्य कार्यरत हैं ग्रन्थ की रचना का पहला उद्देश्य है, कृष्ण-चरित्र का विस्तार करते हुए भक्ति मार्ग द्वारा ज्ञान की प्राप्ति, और दूसरा, अपनी पाण्डित्य-प्रतिभा के द्वारा सस्कृत व कन्नड की प्रौढ काव्य-परम्परा के अनुरूप एक काव्य की रचना करना।

'जगन्नाथ विजय' की कथावस्तु संस्कृत के 'विष्णु-पुराण' पर आधारित है। प्रौढ़ काव्य शैली को अपनाते हुए रसावेश मे कवि ने अनेक स्थलो पर 'विष्णु पुराण' की कथा मे अनेक परिवर्तन कर दिये हैं। काव्य-परम्परागत 18 वर्णनो का पारम्परिक मोह यहाँ भी दिखाई देता है। फलस्वरूप कुछ स्थानों पर अनौचित्य अवश्य आ गया है, परन्तु ये वर्णन अधिक लम्बे और ऊब पैदा करने वाले नहीं हैं। काव्य मे विष्णु-भक्ति स्थायी है। इसका सतत पोषक रस अद्भुत रस है। स्थान-स्थान पर यह भक्ति ज्ञान मे बदल गई है। उनका भागवत-दर्शन और औपनिषदिक दर्शन इस ग्रन्थ मे छलका पडता है। उदाहरणार्थ एक स्थान पर रुद्रभट्ट लिखता है—"तू ही जगत् का सहार करनेवाला शूली [अर्थात् शिव] है, तू ही जगत् की सृष्टि करने वाला ब्रह्मा और तू ही जगत् की रक्षा करने वाला विष्णु है; तू ही सर्वेश, सर्वज्ञ, सर्वभूतमय है, तुझसे पृथक् कुछ नहीं है।"* इसी प्रकार एक अन्य स्थल पर बाणासुर के सन्दर्भ मे विष्णु के सम्बन्ध मे शिव कहते हैं, "मुझमे और विष्णु मे कोई भेद नही है····एक ही मूर्ति त्रिमूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु, शिव) बन जाती है।"

उल्लेखनीय है, सम्पूर्ण कन्नड-साहित्य में रुद्रभट्ट वह पहला वैदिक ब्राह्मण कवि था जिसने भक्ति प्रधान धार्मिक काव्य लिखा। अतएव इस दृष्टि से उसकी इस रचना को 'एक क्रान्तिकारी साहसिक कदम' की सज्ञा दी जा सकती है। यद्यपि रुद्रभट्ट से पहले भी कुछ ब्राह्मण कवियो ने कन्नड-साहित्य मे अपना योगदान दिया था—नागवर्मा, दुर्गसिंह, चन्द्रराज आदि ने केवल अनुवाद-ग्रन्थ लिखे थे। केवल नागवर्माचार्य ही ऐसा कवि था जिसने 'वैराग्य शतक' शीर्षक से तात्विक ग्रन्थ लिखा था। परन्तु रुद्रभट्ट धार्मिक-कथा-काव्य के क्षेत्र मे सर्वप्रथम और सर्वप्रसिद्ध कवि था। उसने इस क्षेत्र मे एक सर्वथा नवीन, क्रान्तिकारी कार्य किया था। इस सम्बन्ध मे उसने स्वय लिखा है—"पोसतेने पेळ्वि, तिर्दुव अरिवु।" अर्थात् 'नये ढग का कथन, सशोधित ज्ञान।' इसी आत्म-विश्वास का निर्वाह पूरे काव्य में करते हुए उसने अन्त मे ग्रन्थ का समापन इन शब्दो के साथ किया है: "रुद्रभट्ट कृत वैष्णव-काव्य रसार्णव।" चूँकि रुद्रभट्ट शिव और विष्णु मे कोई भेद नही मानता था, अत उसकी इस रचना को 'वैष्णवकाव्यरसार्णव' के साथ साथ 'शैवकाव्यरसार्णव' भी कहा जा सकता है।

## रुद्रभट्ट और नेमिचन्द्र की तुलना

जैसा कि कहा जा चुका है, ये दोनों समकालीन और बल्लाल राजा

*रुद्रभट्ट कृत 'जगन्नाथ विजय' के पाँचवें अध्याय के 19वें पद का अनुवाद।

के दरबारी पण्डित कवि थे। अतएव भिन्न सम्प्रदायो के अनुयायी होते हुए भी कवि होने के कारण दोनों में परस्पर प्रेम और सौहार्द्र का होना स्वाभाविक था।

उल्लेखनीय है, दोनो कवियों ने कृष्ण-चरित को विस्तार दिया है; किन्तु चूंकि दोनो ही भिन्न मतावलम्बी थे, अत सम्प्रदायगत भिन्नता होने के कारण दोनो ही की दृष्टियो तथा वर्णनो मे भिन्नता दिखाई देती है। स्मरणीय है, नेमिचन्द्र जैन था और रुद्रभट्ट वैष्णव।

अलकार-वैभव और कल्पना-शक्ति मे दोनो समान हैं, किन्तु स्वभावोक्ति मे नेमि रुद्र से कहीं आगे निकल गया है।

दोनों की शैली पर प्रौढ़ सस्कृत के साथ-साथ शुद्ध कन्नड और देशज की छाप है। यहाँ रुद्र की शैली मे नेमि की अपेक्षा लालित्य और प्रसाद गुण अधिक दिखाई देता है।

ध्यातव्य है, नेमि शृगार-प्रेमी था और रुद्र भक्ति-प्रेमी। दोनों ही के काव्य मे अपने-अपने स्वभाव की वृत्तियाँ स्पष्ट मुखर हुयी हैं।

दोनो ही कवियो मे श्रेष्ठ कवित्व गुण तो है, परन्तु श्रेष्ठ काव्य की सिद्धि किसी मे नहीं मिलती।

## देवकवि

बसव-युगीन श्रेष्ठ ब्राह्मण कवियो में रुद्रभट्ट के बाद देवकवि की गणना होती है। इसने 'कुसुमावलि' शीर्षक से एक चम्पू-काव्य लिखा था। इसका कथानक सुबन्धु कृत 'वासवदत्ता' (सस्कृत) तथा नेमिचन्द्र के 'लीलावती प्रबन्ध' के अनुसार ही ज्यो-का-त्यो है। अन्तर केवल इतना है कि 'लीलावती' में नायक-नायिका में परस्पर स्वप्न-दर्शन से प्रेमोत्पत्ति होती है, जबकि 'कुसुमावलि' मे चित्र-दर्शन से। शेष कथानक वही है। सम्पूर्ण ग्रन्थ पूर्णतया परम्परागत प्रौढ़ काव्य-मार्ग की शैली में लिखा गया है।

## नरहरितीर्थ

नरहरितीर्थ का नाम इस युग के वैष्णव-साहित्य में सर्वोपरि है। यह 13वीं सदी के अन्त और 14वीं शताब्दी के आरम्भ मे अनुमानतः जीवित थे। सर्वमान्य रूप से नरहरितीर्थ को 'दास-साहित्य का प्रवर्त्तक' कहा जाता है। इनका विस्तृत परिचय अगले अध्याय में 'दास-साहित्य' के अन्तर्गत दिया जायेगा, यहाँ केवल पूर्वोक्त परिचय ही अपेक्षित है।

## चौण्डरस

इसका काल सम्भवतः 1300 ई० है। इसने सस्कृत के आचार्य-कवि

दण्डी कृत 'दशकुमारचरित' कन्नड अनुवाद 'अभिनवदशकुमारचरित' शीर्षक से किया था।

इन जैन-कवियो के अतिरिक्त भी कुछ ऐसे जैन-मतावलम्बी साहित्य-कार हुए हैं जिनका काल 14वी शताब्दी रहा है और जिन्होंने गद्य-शैली में साहित्य-रचना की थी।

वृत्तविलास नामक जैन-लेखक ने 'धर्म-परीक्षा' नामक सस्कृत ग्रथ का कन्नड़ मे अनुवाद किया। इस अनुवाद-रचना मे जैन-धर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करने वाली कहानियाँ हैं।

'नागराज' ने 'पुण्याश्रव' नामक सस्कृत पुस्तक का अनुवाद किया। इसके अन्तर्गत जैन मतानुसार गृहस्थ-धर्म की विवेचना करते हुए एक-एक गुण के प्रमाण-स्वरूप 52 महापुरुषो की कहानियाँ हैं।

'रत्नाकरण्डक' नामक अपने ग्रन्थ मे आयतवर्मा ने जैन-सम्प्रदाय के तीन रत्नो—रत्नत्रय—का विश्लेषण किया है।

## (5) बसव-युगीन शास्त्रीय ग्रन्थ साहित्य

बसव-युग मे अनेक साहित्यकार ऐसे भी हुए हैं जिन्होने काव्य तो नहीं रचे, किन्तु शास्त्रीय साहित्यिक ग्रथों की रचना की है। ऐसे कन्नड-लेखक निम्न हैं—

| लेखक | ग्रन्थ | स्वरूप | सम्प्रदाय |
|---|---|---|---|
| 1. कविकाम | श्रृंगार रत्नाकर | अलंकारपरक शास्त्रीय रचना—सस्कृत-ग्रथो पर आधारित कन्नड़ में लिखा गया रस-शास्त्र विषय पर पहला ग्रथ। | ? |
| 2 मल्लिकार्जुन | सूक्ति-सुधार्णव | सकलन। | जैन |
| 3. केशिराज | शब्दमणिदर्पण | प्राचीन कन्नड का विस्तृत एवं प्रामाणिक व्याकरण-ग्रथ। | जैन |
| 4 माघनन्दी | 1. शास्त्रसार समुच्चय | सस्कृत-ग्रन्थो की कन्नड़ टीकाएँ। | जैन |
| | 2 पदार्थसार | टीका | |
| 5. बालचंद्र | द्रव्य-संग्रह सूत्र | टीका। | जैन |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 6 | रट्टकवि | रट्टमत | वर्षा-शास्त्र से सम्बन्धित ग्रंथ। | जैन |
| 7. | मगराज | खगेन्द्रमणि दर्पण | विषो से सम्बन्धित वैधक ग्रन्थ। | जैन |
| 8 | अभिनव मगराज | अभिनव निघण्टु | शब्द-कोष। | ब्राह्मण |
| 9. | कविमल्ल | मन्मथ विजय | कामशास्त्र। | ब्राह्मण |
| 10 | अभिनव चन्द्र | ? | अश्व-शास्त्र। | ब्राह्मण |

## बसव-युगीन साहित्य की विशेषतायें

बसव युगीन साहित्य की उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचना से दो विशेष तथ्य सामने आते हैं। पहली बात तो यह कि, पम्प-युग मे जैन और ब्राह्मण कवियो ने समान्तर रूप से साहित्य-रचना की थी, परन्तु प्रधानता जैन साहित्य की ही रही थी। इस कारण उस युग को 'जैन-युग' भी कहकर पुकारा गया है। ठीक इसी तरह कन्नड-साहित्य के इतिहास का दूसरा युग है। इस युग में, कर्नाटक-भूमि पर एक नये सम्प्रदाय ने अपनी लोकप्रियता के झण्डे गाडे। जैन-धर्म का ह्रास होते ही कर्नाटक-भूमि बसवेश्वर के रूप में एक युग-पुरुष को जन्म दिया जिसने पतनोन्मुख समाज की रक्षार्थ एक सर्वथा नवीन मार्ग 'वीर-शैव सम्प्रदाय' अथवा 'लिंगायत-धर्म' की स्थापना करके उसका मार्ग प्रशस्त किया। बसवेश्वर आदि लिंगायतो ने जिस शिव-भक्ति से भरे हुए साहित्य का सृजन किया, वह 'शैव-साहित्य' अथवा 'शिव-भक्ति साहित्य' कहलाया—और, इस आधार पर कन्नड साहित्य के इस दूसरे युग को 'शैव-युग', 'वीर शैव युग', 'मध्य कन्नड युग' इत्यादि नामों से अभिहित किया जा सकता है। साधारणतया इसे 'कन्नड-साहित्य का भक्ति-काल' भी कहा जा सकता है।

दूसरा महत्वपूर्ण तथ्य जो बसव-युगीन साहित्य के अध्ययन से सामने आता है - वह यह, कि यह वह युग था जब कन्नड के साहित्यकारों में पम्प-युगीन प्राचीन 'मार्ग-शैली' के प्रति मोह के अटूट दिखने वाले बन्धन टूटने लगे थे। साहित्यकारो ने साहित्य-रचना रचना का एक नया मार्ग, एक नयी शैली खोज ली, जिसे 'देसी शैली' कहा गया। सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाये तो कन्नड-साहित्य के इतिहास में यह परिवर्तन एक महान् क्रान्ति थी। शैली-गत इस क्रान्ति ने कवियो को प्राचीन बन्धनो से मुक्त करके नये ढग से सोचने चिन्तन व मनन करने, जीवन-आकाश मे स्वतन्त्र रूप से विचरण करने की नयी दिशाएँ दीं, प्रेरणाएँ दीं। चम्पू-शैली के स्थान पर रगळे, षट्पदी आदि

नये छन्दों मे काव्य-रचना करने की एक नई क्रान्तिमूलक परम्परा चल निकली। लेकिन बन्धन-मुक्ति से यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि इस युग के काव्यों पर से प्राचीन मार्ग-शैली के चम्पू-काव्यो का प्रभाव पूरी तरह समाप्त हो गया था। वस्तुस्थिति इससे कुछ भिन्न है। वास्तव मे यह प्रभाव पूर्णतया समाप्त नहीं हुआ था, बल्कि इस तरह कम हो गया था कि बहुत कम साहित्यकार ही चम्पू-काव्यो की रचना करते थे। इस दृष्टि से देखें तो निस्संकोच हम इस युग को 'संक्रमण-काल'—मार्ग-शैली से देसी-शैली मे लिखने की प्रवृत्ति का परिवर्तित होना—अथवा 'स्वातन्त्र्य-काल' के नाम से भी पुकार सकते हैं।

इन दोनो तथ्यों तथा इस युग के समग्र साहित्य का सूक्ष्म अध्ययन करने के बाद बसव-युगीन साहित्य की निम्नलिखित विशेषताएँ उल्लिखित की जा सकती हैं—

1. जैसा कि पहले कहा जा चुका है, लिंगायत-धर्म इस युग की सबसे महान् देन है। इसके अनुयायी 'शिवशरण' तथा 'लिंगायत' के नाम से जाने गये। इन लिंगायतधर्मी शिवशरणो के द्वारा इस युग में 'वचन नामक' एक सर्वथा नवीन साहित्य-रूप का जन्म हुआ। वचनों मे शिवशरणो ने अपने हृदय की गहराई से निकले हुए अनुभवो को ही स्थान दिया है। श्री ए० आर० श्रीनिवासमूर्ति के अनुसार, 'इन वचनो मे भक्ति, ज्ञान आदि आध्यात्मिक विचारो एव नीतियो, समाज में स्त्रियो का स्थान आदि लौकिक विचारो की गंगा प्रवाहित हुयी है।' प्रो० शि० शि० बसवनाळ के मतानुसार, ये वचन गद्य-पद्य के बीच का एक ऐसा रूप है जिसमे गद्य की धारा न होने पर भी गद्य-जैसी सरलता है और पद्य की छन्दोगति के न होने पर भी उसकी लय है; फलस्वरूप अनेक पद गाये भी जा सकते हैं।'

2. यद्यपि बसव-युग से पहले के चम्पू-काव्यो मे शुद्ध कन्नड के छन्दो—त्रिपदी, षट्पदी और रगळे आदि—का भी कहीं-कहीं व्यवहार किया जाता था, किन्तु इस युग मे शुद्ध कन्नड़ के इन छन्दो मे से किसी एक का ही उपयोग करते हुए सम्पूर्ण काव्य-ग्रंथ की रचना पहली बार की गई। केवल कन्द नामक अर्द्ध-समवृत्त ही ऐसा छन्द था जिसमे अधिक काव्य नहीं लिखे गये, अन्यथा सारे लिंगायत-शिवशरणो के वचन त्रिपदी मे लिखे गये हैं। सम्पूर्ण ग्रंथ मे अकेले रगळे छन्द का सर्वप्रथम उपयोग हरिहर ने अपनी रचनाओं 'गिरिजा-कल्याण' तथा 'शिवगणद रगळेगळु' मे किया। राघवाक ने अपना सारा साहित्य ही षट्पदी छन्द मे लिखा है। षट्पदी के अन्तर्गत भामिनी और वार्धक भेदो का प्रचलन लिखा गया है। सम्पूर्णतः कन्द नामक

जबकि वह अनेक प्रकार की शैलियो मे प्रयुक्त होकर परिष्कृत एव परिमार्जित होती चली गई। कन्नड की यह परिष्करण अवस्था अथवा बसव-युगीन कन्नड का यह स्वरूप भाषा-विज्ञान की दृष्टि से 'मध्य कन्नड़' कहलाता है। मध्य कन्नड के विभिन्न रूप वचन, रगळे, षट्पदी आदि में सहज ही दृष्टव्य हैं। व्याकरण के बन्धन यहाँ आकर शिथिल पड गये हैं।

8 तमिळ और मळयाळम की दो व्यजन ध्वनियो को—जो 'र' तथा 'ळ' की रूपान्तर हैं—सूचित करने वाले अक्षरों का लोप होने लगा। ये अक्षर प्राचीन कन्नड मे प्रयुक्त होते थे।

9. चम्पू-काव्यों की प्रौढ शैली ही इस युग मे मुख्य रही है, किन्तु इस युग की शैली में प्रसाद और लालित्य अपेक्षाकृत कहीं अधिक है।

10 रसो की दृष्टि से भक्ति रस की प्रधानता रही। अद्भुत रस के साथ-साथ वीर और शान्त रस का प्रयोग प्रचुरता के साथ हुआ। किन्तु शृगार रस का प्रतिपादन करने वाली बसव युगीन एकमात्र काव्य रचना 'लीलावती प्रबन्ध' है।

11. इस युग में वीर-शैव साहित्यकारो ने आध्यात्मिक तत्वों से सम्बन्धित तात्विक और अनुभाव-ग्रथों की रचना की जिनके माध्यम से साहित्य में एक नई परस्परा चल निकली। इन लोगों ने न तो लौकिक ग्रन्थ लिखे, न शास्त्रीय।

12 इस युग मे कन्नड-साहित्य के अन्तर्गत सम्पादित और व्याकरिणक ग्रन्थों की एक नई परम्परा का सूत्रपात हुआ। 'सूक्ति सुधार्णव' कन्नड की सर्वप्रथम प्रामाणिक सम्पादित रचना है, और 'शब्दमणिदर्पण' सबसे पहला व्याकरण-ग्रथ।

13. कथा-साहित्य के अन्तर्गत 'धर्मामृत' की शैली पर 'पुण्याश्रव' मे जैन-कथाएँ तथा 'अभिनवदशकुमारचरित' मे लौकिक कथाएं लिखी गईं।

इस प्रकार उक्त विवेचन से यह तथ्य सुस्पष्ट हो जाता है कि बसव-युग ने कन्नड-साहित्य मे चौथे युग के मार्ग को प्रशस्त कर दिया, भावी साहित्य सम्भावनाओ से सम्बन्धित पर्याप्त अप्रत्यक्ष सकेत दे दिये थे। बसव-युगीन महान विष्णु-भक्त स्वामी नरहरितीर्थ ऐसा ही एक सकेत था जिसने अपने भक्ति-पदो के द्वारा 'दास-साहित्य' विषयक् सम्भावनाओं के लिए द्वार खोल दिये थे।

# ७. कन्नड़ साहित्य का चौथा युग : कुमार-व्यास युग

## परिचय

कन्नड साहित्य के पिछले युगों का अध्ययन यह बताता है कि पम्प-युग में जैन और ब्राह्मण कवियो ने समान्तर रूप से साहित्य-रचना की, किन्तु प्रधानता जैन-साहित्य की रही। बसव-युग मे इन दो काव्य-धाराओ के साथ-साथ एक और तीसरी वीर शैव-धारा ही अधिक प्रवहित हुयी। तीनो ही मतों के साहित्यकारों ने इस युग में अपना-अपना योगदान दिया, किन्तु राज्याश्रय प्राप्त होने के कारण वीर शैव-धारा ही अधिक प्रबल वेग से प्रवाहित हुयी; फलत प्रधानता उसी की रही। ठीक यही बात कन्नड-साहित्य के इस चौथे युग पर लागू होती है। इस युग मे आते आते वीर शैव-सम्प्रदाय का राज्याश्रय समाप्त हो गया। बदलती हुयी परिस्थितियों का परिवर्तन-चक्र कुछ ऐसा चला कि कर्नाटक में वैष्णव-धर्म और भागवत सम्प्रदाय को राज्याश्रय प्राप्त हो गया—इस तथ्य की सम्यक् विवेचना आगे करेंगे। फल यह हुआ कि ब्राह्मण कवियो ने सम्पूर्ण शक्ति के साथ जुटकर साहित्य-रचना की और सबसे ऊपर आ गये। जैन तथा वीर-शैव कवि पीछे रह गये—अर्थात् प्रधानता भागवत-साहित्य और विष्णु-भक्तो का दास-साहित्य की ही रही। यही कारण है, इस युग को 'ब्राह्मण-युग' भी कहा गया।

लेकिन इस युग को 'ब्राह्मण युग' कहना तर्क सगत नही है। यह सही है कि इस युग मे ब्राह्मण के साहित्य की प्रधानता रही है, तथापि यह भी सत्य

है कि इस युग मे उनके साथ साथ समान्तर रूप में जैन और वीर-शैव सम्प्रदाय के अनुयायी साहित्यकारो ने कन्नड-साहित्य को अभूतपूर्व साहित्य दिया है। इस कारण कुछ विद्वजन् इस युग को 'सम्मिश्र-युग अथवा सार्वजनिक युग' कहने पर बल देते हैं। परन्तु इसके विपरीत भाषा की दृष्टि से देखने वाले आलोचकगण इस नाम पर आपत्ति करते हैं। उनके मत में कन्नड-साहित्य के इस चौथे युग मे कन्नड का साहित्यिक स्वरूप निखरकर सामने आया, इसलिए इसे 'नवीन कन्नड़-काल' कहना चाहिए।

परन्तु इस नाम पर शैली को प्रधानता देने वाले आलोचकों ने अस्वीकार कर दिया। उनके अनुसार, इस युग मे देसी-शैली का प्राचुर्य रहा है, अत इसे 'देसी-युग' कहना चाहिए। मगर यह नाम भी लोगों को नहीं जँचा। रस-तत्व को मान्यता देने वाले आलोचको ने कहा, चूंकि इस युग मे भक्ति की सरिता अजस्र रूप मे प्रवाहित हुयी है, भक्ति सर्वोपरि रही है, अत, इसे 'कन्नड़-साहित्य का भक्ति-काल' कहना अधिक उपयुक्त है।

इस प्रकार हम देखते हैं, कन्नड-साहित्य के इस चौथे युग को अनेक नामो से अभिहित किया गया और आलोचकगण नामकरण की बावत एकमत नहीं हो सके। नामकरण सम्बन्धी इस मत-वैभिन्न्य के उलझाव से बचने के लिए कुछ लोगो ने युग के महान् कवि के नाम पर ही युग को पुकारने की परम्परा का अनुमोदन किया और विभिन्न युगो को विभिन्न कवियो के नामो के साथ पुकारा। फलस्वरूप कन्नड-साहित्य के इस चौथे युग को अब सर्वमान्य रूप से 'कुमार व्यास-युग' कहकर पुकारा जाता है। कुमार व्यास इस युग का सर्वप्रथम महाकवि, सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार और देसी-शैली का सर्वोच्च प्रतिनिधि कवि था। उसी के नाम पर इस युग का नामकरण किया गया है।

कुमार व्यास युग का काल सन् 1400 से 1900 तक माना गया है। 500 वर्षों के इस दीर्घकाल मे कन्नड-साहित्य-वृक्ष बहुत फला-फूला है।

## राजनीतिक परिस्थितियाँ व जनजीवन

सन् 1400 से लेकर 1900 ई० तक यह 500 वर्षों का लम्बा समय कर्नाटक प्रदेश के लिए राजनीतिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण रहा है। पाच शताब्दी के इस लम्बे काल मे केवल कर्नाटक ही नहीं, बल्कि सारे दक्षिण भारत की राजनीतिक परिस्थितियो मे बहुत-से उतार-चढाव आए। फलस्वरूप कर्नाटक प्रदेश जहाँ एक ओर उन्नति के शिखर पर जा पहुँचा, वही दूसरी ओर पतन के गर्त में भी जा गिरा। कर्नाटक प्रदेश की

इन पाँच सौ वर्षों की निरन्तर परिवर्तित होने वाली राजनीतिक परिस्थितियों का अत्यन्त संक्षेप में अध्ययन निम्नलिखित ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है—

1. 14वीं शताब्दी के आरम्भ में, जैसा कि पिछले अध्याय में स्पष्ट किया जा चुका है, विजयनगर-साम्राज्य का उदय हुआ था। इसका वैभव-सूर्य दिन-ब-दिन आकाश पर चढ़ता ही चला गया। 16वीं शताब्दी के मध्य तक इस साम्राज्य ने अभूतपूर्व उन्नति की। साम्राज्य की उन्नति और लोकप्रियता की पराकाष्ठा पर पहुँचाने में अनेक राजवंशों ने अपना अमूल्य सहयोग प्रदान किया। 250 वर्षों के इस दीर्घकालीन साम्राज्य-काल में कर्नाटक ने जिन शूरवीर, राजनीति के कुशल खिलाड़ी राजाओं को अपना संरक्षक नियुक्त किया उनमें हरिहर, बुक्कराय, देवराय द्वितीय, रामराय, कृष्ण देवराय आदि उल्लेखनीय नाम हैं।

2. विजयनगर-साम्राज्य के 250 वर्षीय जीवन-काल में सम्पूर्ण दक्षिण भारत में शिक्षा, कला, संस्कृति, अर्थ व्यवस्था, सैनिक शक्ति आदि प्रायः सभी क्षेत्रों में अभूतपूर्व उन्नति हुयी। इसका प्रमुख कारण यह था कि विजयनगर-साम्राज्य की राजधानी कर्नाटक में थी और विजयनगर* के नाम से प्रख्यात थी। इस साम्राज्य के अन्तर्गत वर्तमान आन्ध्र प्रदेश और तमिळनाडु भी शामिल थे।

3 विजयनगर-साम्राज्य को उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँचाने वाले राजवंशों, राजाओं तथा राज्य-काल का संक्षिप्त सांकेतिक विवरण निम्न है—

| राजवंश | राजा का नाम | राज्य-काल |
|---|---|---|
| (1) संगम राजवंश— | 1 हरिहर I | सन् 1336 53 ई० |

* विजयनगर का निर्माण (जिसका आधुनिक नाम सम्भवतः 'विजयनगरम्' है), विजयनगर-साम्राज्य के संस्थापक संगम-वंशी राजा हरिहर तथा बुक्का (उर्फ बुक्कराय) नामक दो भाइयों द्वारा सन् 1336 ई० में तुंगभद्रा नदी के किनारे कराया गया था। इस शहर का नाम हरिहर ने अपने गुरु, परम विद्वान् आचार्य विद्यारण्य के प्रति श्रद्धा दिखलाने की भावना से 'विद्यानगर' रक्खा था, जो कालान्तर में विजयनगर अथवा 'विजयनगरम्' कहलाया। —श्री रामलखन शर्मा : 'हमारा अतीत' पृष्ठ 355-356।

| | | | |
|---|---|---|---|
| (सन् 1336-1446 ई०) | 2 | बुक्का (उर्फ बुक्कराय) | सन् 1353-79 ई० |
| | 3 | हरिहर II | सन् 1379-1404 ई० |
| | 4 | देवराय I | सन् 1404-10 ई० |
| | 5 | विजयराय | सन् 1410-19 ई० |
| | 6 | देवराय II | सन् 1419-46 ई० † |
| (II) सुलुव राजवंश— | 7 | सुलुव नरसिंह | सन् 1486-1493 ई० |
| (सन् 1486-1509 ई०) | 8 | इम्माद नरसिंह | सन् 1493-1505 ई० |
| (III) तुलुव वंश— | 9 | वीर नरसिंह | सन् 1505-1509 ई० |
| | 10 | कृष्णदेव राय | सन् 1509-1530 ई० |
| | 11 | अच्युत राय | सन् 1530-42 ई० |
| | 12 | सदाशिव राय | सन् 1542-65 ई० |
| | 13 | तिरूमल | सन् 1570-86 ई० |
| | 14 | श्री रंग | सन् 1586 |
| | 15 | वेंकटपति | सन् 1586-1614 ई० |

इन विभिन्न राजवंशी राजाओं के सहयोग से पनपने वाले विजयनगर-साम्राज्य का पतन अच्युतराय से ही—अर्थात् 1530 ई० से—आरम्भ हो गया था, और सन् 1614 ई० में इस साम्राज्य की केवल स्मृति ही शेष रह पायी थी।

4 उपर्युक्त राजाओं में देवराय II और कृष्ण देवराय, इन दो राजाओं के काल में साम्राज्य अपने वैभव के चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया था। देवराय II (सन् 1419-46 ई०) के समय विजयनगर का वैभवशाली विवरण उस समय के दो विदेशी यात्रियों द्वारा प्राप्त हुआ है। इटली-निवासी निकोलो कॉण्टी (सन् 1421 ई०) और हिरात Persia) निवासी अब्दुल रज्जाक (सन् 1442 ई०) के वर्णन तद्युगीन विजयनगर-वैभव पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। इन वर्णनों को पढ़कर कोई भी व्यक्ति चकित हुए बिना नहीं रह सकता।

5. किन्तु सन् 1530 में तुलुव-वंशी अच्युतराय के गद्दी पर आते ही उसकी अयोग्यता और अदूरदर्शिता के फलस्वरूप साम्राज्य का विघटन आरम्भ

† डा० ईश्वरी प्रसाद के अनुसार देवराय द्वितीय की मृत्यु, 1446 ई० में नहीं, 1449 ई० में हुयी थी।

हो गया। सन् 1565 में बीदर, गोलकुण्डा, बीजापुर और अहमदनगर के मुस्लिम-शासकों ने एकजुट होकर साम्राज्य पर आक्रमण कर दिया। तत्कालीन विजयनगर-सम्राट् सदाशिव राय के सर्वेसर्वा मन्त्री रामराय ने तालकोट के मैदान में मोर्चा लिया। लेकिन विजयनगर का भाग्य-सूर्य तो अस्त हो चुका था, फलत विजयनगर साम्राज्य की रीढ़ टूट गई। इस युद्ध के उपरांत विजयनगर की दुर्दशा के बारे मे इतिहासकार सेवेल लिखता है—

'पांच मास तक विजयनगर को शान्ति नही मिली। रामराय का वध कर दिया गया। शत्रु विनाश के लिए आये थे। वे अनवरत् अपने विनाश-कार्यो मे लगे रहे। बर्बरतापूर्वक नर-सहार किया गया। मन्दिरो तथा भवनों को इस तरह ध्वस्त किया गया कि पत्थरो से बने कुछ मन्दिरो और दीवारो के अलावा नगर का कोई भी चिह्न शेष न बचा। आक्रमणकारियो से कोई वस्तु बचती ही न दिखाई देती थी। वे आग से, लोहदण्ड तथा फरसो से प्रतिदिन विनाश करते रहे। इतने अल्प-समय मे ससार के इतिहास मे अकस्मात् ऐसे समृद्ध नगर का विनाश कदाचित् कभी नहीं हुआ।'

6. विजयनगर साम्राज्य के छिन्न-भिन्न हो जाने के कुछ समय बाद कर्नाटक के दक्षिणी भाग मे ओडेयर राजवश का उदय हुआ। इस वश के राजाओं की राजधानी मैसूर थी। यह कर्नाटक का अन्तिम राजवश था जिसका अन्त 20वीं शताब्दी मे भारत के स्वतन्त्र होने पर ही हुआ। इस वश के कण्ठीरव, चिक्क देवराज आदि प्रतापी राजाओं के आश्रय मे कन्नड-साहित्य ने पुन उन्नति की।

7. मैसूर-राज्य को यद्यपि बीच-बीच में मुस्लिम, मराठा और अंग्रेज शक्तियों से घातक टक्करें लेनी पड़ीं, फिर भी उसने उन्नति के मार्ग को न छोड़ा।

8. कुछ समय तक मैसूर पर हैदर सुल्तान और टीपू सुल्तान का भी शासन रहा।

9. 19वीं शताब्दी के अन्त में मैसूर-राज्य (जिसमे कर्नाटक का केवल दक्षिणी भाग ही शेष रह गया था) को छोड़कर बाकी कर्नाटक अँग्रेजो द्वारा अधिकृत क्षेत्रो, निजामशाही तथा अन्य छोटे-छोटे राज्यों में बँटा हुआ था।

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सन् 1400 से 1900 ई० तक कर्नाटक के समक्ष उत्थान-पतन के अनेक अवसर आये। फलस्वरूप

निरन्तर बदलती हुयी परिस्थितयों ने जनजीवन को भी बहुत प्रभावित किया। 500 वर्षों में कर्नाटक के जनजीवन पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन विदेशी यात्रियो, व्यापारियो तथा मुस्लिम इतिहासकारो द्वारा लिखे गये वृत्तान्तों के आधार पर बड़ी सरलता के साथ किया जा सकता है। वृत्तान्तो के आधार पर इस काल के जनजीवन से सम्बन्धित इन निष्कर्षो पर सहज ही पहुँचा जा सकता है कि तत्कालीन समाज मे वीरता, सगठन-शक्ति, सभी धर्मों मे समन्वयवादी-बुद्धि, परोपकारिता तथा रसिकता आदि गुणो के साथ-साथ रूढिवादिता, अन्धी व्यक्ति पूजा, स्वार्थी मनोवृत्ति, पारस्परिक फूट, विलासिता जैसे दुर्गुण भी भारी मात्रा मे विद्यमान थे। जब गुणो का पलड़ा भारी होता था तो कर्नाटक-सस्कृति उन्नति के शिखर पर जा बैठती थी, और जब दुर्गुणो का पलड़ा भारी होता था तो वह पतन के गर्त्त मे जा गिरती थी।

विजयनगर ने अपने वैभव-काल मे कन्नड, तमिळ और तेळुगु आदि द्रविड भाषाओ तथा शैव, वैष्णव, जैन, लिंगायत तथा इस्लाम आदि सभी धार्मिक सम्प्रदायो को आश्रय दिया हुआ था। फलतः इन विभिन्न भाषाओ के साहित्य मे अपूर्व श्रीवृद्धि हुयी। उल्लेखनीय है, इस साम्राज्य के सभी शासक स्वय तो वैदिक-धर्मी ब्राह्मण थे, परन्तु उनकी आस्था और समन्वय-बुद्धि सभी धर्मों मे समान थी। इस धार्मिक समन्वयवादिता का एक सुन्दर उदाहरण श्रवण-बेळगोळा के जैन-मन्दिर से प्राप्त शिलालेख मे मिलता है।

विजयनगर साम्राज्य के बाद कन्नड-साहित्य ने ओडेयर राजवश के आश्रय मे पुन तेजी के साथ उन्नति की।

## कुमार व्यास-युगीन साहित्य

जैसा कि पहले सकेत किया जा चुका है, साहित्य-रचना की दृष्टि से इस युग का साहित्य वैदिक, जैन और लिंगायत शैवो—तीनो मतावलम्बी लेखको द्वारा रचा गया है। तीनो ही धर्मों के लेखकों ने समान्तर रूप से कन्नड-साहित्य की श्री-वृद्धि की है, यह और बात है कि इस युग में वैदिक-धर्मी साहित्य या ब्राह्मण-साहित्य की प्रधानता रही है। सच तो यह है, इस युग मे इतना अधिक साहित्य रचा गया है कि सम्पूर्ण कुमार व्यास-युगीन साहित्य का अध्ययन एक साथ कर पाना अत्यन्त दुरुह कार्य है। अत अध्ययन की सुविधा के लिए कुमार व्यास-युगीन साहित्य को निम्न शीर्षकों एव उप-शीर्षको के अन्तर्गत वर्गीकृत कर सकते हैं—

कुमार व्यास-युगीन (कन्नड़) साहित्य
वैष्णव-साहित्य
शैव-साहित्य
जैन-साहित्य
भागवत सम्प्रदाय के कवियों द्वारा रचित साहित्य
दास-साहित्य
धर्मपरक साहित्य
अन्य विषयक ग्रन्थ
सम्पादित साहित्य
पुराण साहित्य अथवा जीवनीपरक साहित्य
शास्त्रपरक अथवा शास्त्रीय साहित्य
शतक-साहित्य
नीतिपरक साहित्य
चम्पू-काव्य
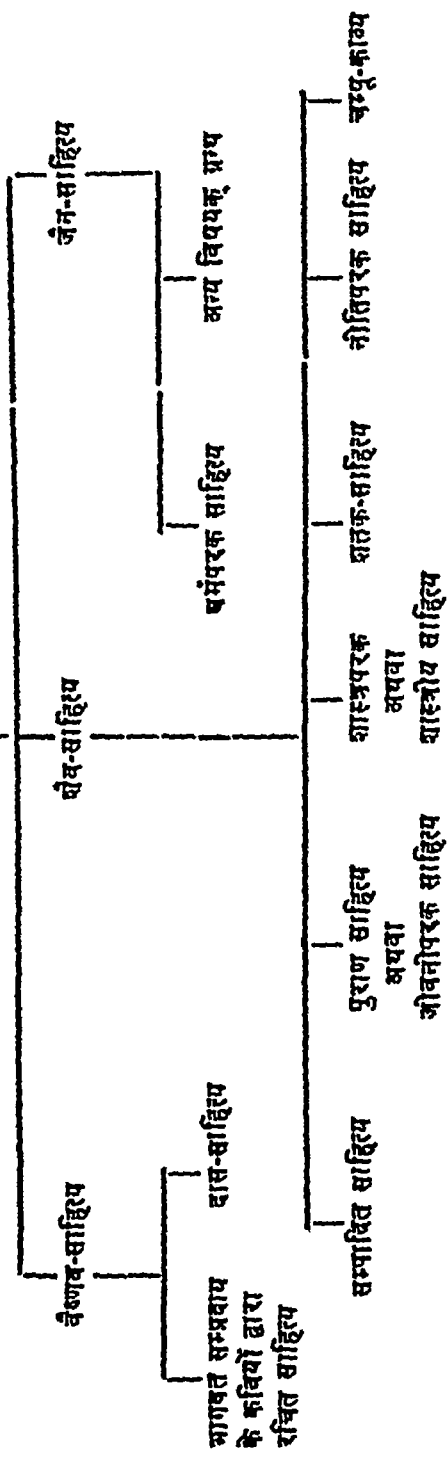
यह वर्गीकरण कुमार व्यास-युगीन साहित्य-भण्डार के विभिन्न अमूल्य रत्नों की हल्की-सी झांकी प्रस्तुत करता है जिसका विस्तृत विवेचन इस अध्याय के अन्तर्गत अपेक्षित है।

## [अ] कुमार व्यास-युगीन वैष्णव-साहित्य

वैदिक-धर्म के अनुयायी और विष्णु के मान्य अवतार राम-कृष्ण के उपासक ब्राह्मण लेखकों तथा कवियों द्वारा कन्नड भाषा मे लिखा गया साहित्य 'वैष्णव साहित्य' के अन्तर्गत आता है। अध्ययन की सुविधा और सम्पूर्ण वैष्णव-साहित्य को समझने के लिए हम इसे निम्न दो वर्गों मे विभक्त कर सकते हैं—

1. भागवत कवि और साहित्य,
2. दास-साहित्य।

किन्तु इसके पूर्व, कि हम वैष्णव-साहित्य का अध्ययन आरम्भ करें, यह आवश्यक है कि हमे कर्नाटक मे वैष्णव-धर्म-परम्परा का पर्याप्त ज्ञान हो—भले ही यह ज्ञान संक्षिप्त हो। अतएव यहां हम पहले वैष्णव-धर्म परम्परा से सम्बन्धित संक्षिप्त विवरण देने के बाद भागवत और दास-साहित्य की क्रमिक विवेचना करेंगे।

### वैष्णव-धर्म-परम्परा

कर्नाटक मे पहले से ही अनेक सम्प्रदाय प्रचलित रहे हैं जिनमे जैन, धर्म, बौद्ध धर्म, शैव धर्म और वैष्णव धर्म प्रमुख हैं। कालान्तर मे यहाँ इस्लाम और ईसाई धर्मों ने भी प्रवेश किया। किन्तु बौद्ध, इस्लाम और ईसाई मत के अनुयायियों द्वारा कन्नड-साहित्य को कन्नड़ भाषा मे दिया गया योगदान शून्य ही रहा है। केवल जैन, शैव और ब्राह्मणो ने ही कन्नड-साहित्य के वृक्ष का बीजारोपण और पोषण किया है। कर्नाटक में जैन और शैव-धर्म की तरह वैष्णव धर्म को भी मुख्य, महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है।

ऋग्वेद में विष्णु से सम्बन्धित कुछ इनी-गिनी ऋचाएं मिलती हैं जिनके आधार पर कुछ लोग वैष्णव धर्म की सर्वप्राचीनता प्रमाणित करते हैं। इन ऋचाओं मे विष्णु का भव्य वर्णन किया गया है। यही विष्णु ब्राह्मण-उपनिषद् काल [(1000 B. C—600 B. C] में आकर, शतपथ ब्राह्मण के अनुसार, "देवो में श्रेष्ठ" कहलाया और उसकी उपासना के लिए 'यज्ञ' का महत्व प्रतिपादित किया गया। इसी काल मे विष्णु के अवतारो से सम्बन्धित कुछ कथाएं लिखी गई तथा ब्राह्मणोत्तर काल [600 ई० पू०—407 ई०] मे 'विष्णु के विभिन्न अवतारों' को मान्यता प्राप्त हो गई।

ब्राह्मण-उपनिषद् काल मे देवताओ की साधना करने के लिए यज्ञों को बहुत अधिक महत्व दिया गया था। यज्ञो मे हिंसा-तत्व की प्रधानता थी—बिना पशु-बलि दिये यज्ञ अपूर्ण माना जाता था। किन्तु उत्तर-ब्राह्मण काल मे यज्ञ-पद्धति के साथ-साथ अहिंसा-प्रधान भागवत धर्म भी पनप रहा था जिसका पूर्ण विकास रामायण और महाभारत ग्रन्थो के काल तक हो गया था। इस नवीन धर्म का उपास्य विष्णु था। डा० व्रजेश्वर वर्मा के मतानुसार, "भागवत धर्म शुरू मे क्षत्रियो द्वारा प्रचलित की गई अब्राह्मण-उपासना-पद्धति के रूप मे था। किन्तु बाद मे जब अवैदिक, नास्तिक, जैन और बौद्ध-धर्मो की लोकप्रियता निरन्तर बढने लगी तो ब्राह्मणो ने इसे अपना लिया तथा 'नारायणीय या वैष्णव धर्म' के रूप मे इसका विधिवत् सगठन किया। महाभारत मे 'शान्तिपर्व' के नारायणीय उपाख्यान के अन्तर्गत इस नये धर्म को 'वैष्णव-यज्ञ' कहा गया है। और यज्ञ-प्रधान वैदिक कर्मकाण्ड के प्रवृत्ति-मार्ग के विपरीत इसे 'निवृत्ति-मार्ग' बतलाया गया है। इस वैष्णव-यज्ञ मे स्पष्ट रूप से पशु-वध का निषेध करते हुए तप, सत्य, अहिंसा और इन्द्रिय-निग्रह का विधान किया गया है।··· महाभारत मे ही वासुदेव को विष्णु से अभिन्न बताते हुए कृष्ण को द्वितीय वासुदेव के रूप मे विष्णु का अवतार कह दिया गया है।"

इस प्रकार से जन्मे वैष्णव धर्म का प्रवेश कर्नाटक मे सन् 600 ई० से पहले ही हो चुका था। कारण, कि 5वीं शताब्दी के कन्नड मे प्राचीनतम उपलब्ध हल्मिडि शिलालेख का आरम्भ ही विष्णु-स्तुति से होता है—

> जयति श्री परिष्वंग श्याङ्गु (स्यान्दति) रच्युतः।
> दानवाक्षोयुगांताग्नि. (शिष्टानान्तु) सुदर्शनः॥

इसके अतिरिक्त अन्य प्रमाण भी हैं जिनके आधार पर कर्नाटक मे वैष्णव धर्म की प्राचीनता प्रमाणित की जा सकती है, किन्तु प्रचार की दृष्टि से 12वीं सदी मे विष्णुवर्धन का आश्रय और प्रोत्साहन पाने वाले रामानुजाचार्य के साथ ही कर्नाटक मे वैष्णव धर्म का प्रवेश माना जाता है जिन्होने यहाँ इस धर्म का व्यापक प्रचार किया। इस धर्म के अनुयायियो की सख्या तेजी से बढने लगी। परन्तु साहित्यिक दृष्टिकोण से कन्नड में वैष्णव साहित्य-रचना का श्रीगणेश मध्वाचार्य से माना जाता है। मध्वाचार्य (सवत् 1254-1333 विक्रमी) द्वैतवादी वैष्णव-सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक थे। अपने इस द्वैतमत का प्रवर्त्तन करके मध्वाचार्य ने भक्ति मार्ग का समर्थन किया है।

अतएव स्पष्ट है, कर्नाटक मे वैष्णव धर्म की दो तात्विक शाखाएँ खूब

फूर्नों-फर्नों। एक तो रामानुजाचार्य की विशिष्टाद्वैत शाखा और दूसरी मध्वाचार्य की द्वैत शाखा। इन दोनों ही आचार्यों ने यद्यपि भक्ति को प्रधानता दी, किन्तु अन्तर सिर्फ इतना है कि विशिष्टाद्वैती वैष्णव-सम्प्रदाय विरक्ति—अर्थात् सब कुछ छोड़ देने—की बात करता है और द्वैतवादी वैष्णव-सम्प्रदाय लौकिक जीवन के सारे सम्बन्धों को तोडने और वैराग्य लेने की बात कभी नहीं करता। इसमें प्रेम, भक्तवत्सलता, दैन्य, श्रद्धा, विश्वास, आस्था, संगीत आदि पर बल दिया जाता है।

इस प्रकार उक्त विवेचन से वैष्णव-सम्प्रदाय की परम्परा का संक्षिप्त ज्ञान संकेत रूप में प्राप्त हो जाता है। स्थानाभाव के कारण इसकी विस्तृत एवं सर्वांगीण विवेचना अप्रस्तावित है। इस संक्षिप्त परिचय के उपरान्त वैष्णव-साहित्य का अध्ययन काफी सरल हो जाता है।

## (1) भागवत कवि और साहित्य

पीछे यह स्पष्ट किया जा चुका है कि 'भागवत धर्म' की नींव क्षत्रियों द्वारा रखी गई थी जिसे बाद मे ब्राह्मणों ने अपना लिया था। अतः भागवत सम्प्रदाय के कवियों ने जो रचनाएँ लिखी हैं उनमें प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से क्षत्रियों के प्रधान गुण वीरता का तत्त्व अवश्य उभरा है। कुमार व्यास-युगीन भागवत कवियो तथा साहित्य की तालिका निम्न है—

| कवि | ग्रन्थ | रचना-काल |
|---|---|---|
| कुमार व्यास | गदुगिन भारत | सन् 1400 ई० |
| कुमार वाल्मीकि | तोरवे रामायण | सन् 1510 ई० |
| लक्ष्मीश | जैमिनि भारत | 16वीं शताब्दी का मध्य |
| गोविन्द | चित्र भारत, नन्दि माहात्म्य | सन् 1581 ई० |
| ? | कन्नड़ महाभारत (अनुवाद) | ? |
| ? | कन्नड़ भागवत (अनुवाद) | ? |
| नागरस | भगवद्गीता (अनुवाद) | ? |

## कुमार व्यास

### परिचय

कुमार व्यास इस युग के सबसे महान्, सर्वश्रेष्ठ और सर्वप्रथम महाकवि थे। इनकी गणना कन्नड़ के सर्वश्रेष्ठ कवियों में होती है। इन्हीं के

नाम पर, इस युग-महाकवि के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने हेतु, कन्नड़-साहित्य के इन 500 वर्षों के युग को 'कुमार व्यास युग' के नाम से अभिहित किया जाता है। किन्तु यह अत्यन्त खेद का विषय है कि कन्नड-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवियो मे गण्य इस महाकवि का जीवन वृत्तान्त अभी तक अज्ञात है। कन्नड-शोधकर्त्ताओं को अपना ध्यान इस महाकवि की ओर आकर्षित करना चाहिए ताकि ऐसे महान् कवि के बारे मे सम्पूर्णत ज्ञान हो सके।

महाकवि कुमार व्यास के बारे मे अत्यल्प जानकारी उनके ग्रन्थों द्वारा प्राप्त होती है। उस जानकारी के आधार पर कहा जाता है कि ये गदुग (वतम न गडग) के रहनेवाले थे। इनका वास्तविक नाम वीर नारायणप्पा था। महाकवि वेदव्यास कृत संस्कृत महाकाव्य 'महाभारत' के आधार पर अपने सुप्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थ 'गदुगिन भारत' की रचना करते समय इन्होने अपना उपनाम 'कुमार व्यास' रखा। कन्नड-साहित्य का यह महान् कवि वीर नारायणप्पा आज सारे कर्नाटक प्रदेश (मैसूर प्रान्त) मे अपने इसी 'कुमार व्यास' के नाम से प्रसिद्ध है। कर्नाटक मे आज भी बहुत-से लोग एकतारे पर 'गदुगिन भारत' को गाते हुये देखे जा सकते हैं, जो महाकवि के काव्य की सर्वश्रेष्ठता, लोकप्रियता और प्रसिद्धि का ज्वलन्त प्रमाण है।

ऐसे महान लोकप्रिय काव्य के प्रणेता कुमार व्यास का काल क्या था, यह भी हमे नहीं मालूम। यह कितने शर्म की बात है, हमारे शोधकर्त्ता भी यही कहते हैं कि कुमार व्यास का काल क्या था—यह निश्चित नहीं हो सका है! कुछ लोग अगर कुमार व्यास का काल 13वी शताब्दी का पूर्वार्द्ध बताते हैं तो कुछ ऐसे भी विद्वान् हैं जो इस महाकवि को 16वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे जन्मा बताते हैं। तात्पर्य यह कि कुमार व्यास का अस्तित्व किस ईस्वी सन् में था, यह बात बाद की है, अभी तो यही निर्णय नहीं किया जा सका है कि शताब्दी कौन-सी थी!

काल-निर्णय के इस प्रश्न पर विस्तृत चर्चा यहाँ उचित नही है। इस सन्दर्भ मे प्रोफेसर आर० एस० मुगलि का मत अधिक सटीक और तर्क सम्मत प्रतीत होता है। प्रो० मुगलि के मतानुसार, कुमार व्यास का रचना-काल सन् 1400 ई० है। अपने कथन की पुष्टि करते हुये उन्होंने लिखा है, "यह निश्चित है कि भास्कर कवि ने सन् 1424 मे अपना ग्रन्थ 'जीवन्धर चरित' लिखा है और अनेक स्थलो पर उसने कुमार व्यास कृत 'गदुगिन भारत' के भावो तथा पदों की नकल की है। भास्कर एक साधारण कोटि का अनुकरण प्रिय कवि था। उसके कुछ पद तो बिल्कुल कुमार व्यास की

करते हुए उन्हें सार्थकता प्रदान कर दी है जिसका एक सुन्दर उदाहरण राजा शान्तनु के विवेक के नष्ट होने से सम्बन्धित प्रसग है जिसमें आलकारिकता देखते ही बनती है। उल्लेखनीय है, यह प्रसग-वर्णन भी पम्प की छाया है। इसी प्रकार द्रौपदी-चीर-हरण का वर्णन भी सस्कृत 'महाभारत' की अपेक्षा अधिक विस्तृत, स्वाभाविक एव हृदयस्पर्शी बनाकर यद्यपि कुमार ने प्रस्तुत किया है, परन्तु यहाँ भी प्रसग-वर्णन पर पम्प की छाप है। कुमार के भीम द्वारा की गई यह प्रतिज्ञा पम्प की ही अनुकृति है—"हे तरुणी! दुशासन के गर्म रक्त से भिगोकर मैं उसकी आँतों से तेरे केशो का जूडा बाँधूंगा और उसके दाँतो की कघी से तेरे केश सँवारूंगा।" कुमार का यह वर्णन करुण, रौद्र और वीभत्स रस की अद्भुत सृष्टि है।

इसी प्रकार अनेकानेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं जिनसे कुमार के काव्य की कथा के विभिन्न स्रोत स्पष्ट हो जाते हैं। श्री आर० एस० मुगलि के शब्दो मे कह सकते है, "कवि ने वेदव्यास कृत महाभारत का पूर्ण निष्ठा के साथ अनुसरण किया है, अत. उसके (महाभारत के) गुण-दोष कन्नड-काव्य (गदुगिन भारत) मे भी आ गये हैं। इस काव्य मे कुछ रससिक्त सन्दर्भ ही ऐसे हैं जो नाटचपूर्ण सन्निवेश-रचना, पात्र, प्रज्ञा, समुचित शैली, वर्तमान युगीन वर्णनो के सदृश सजीव चित्र उपस्थित करके काव्य की श्रेष्ठता को प्रतिपादित करते हैं; फिर भी काव्य मे ग्रथन-शैथिल्य-दोष सर्वत्र विद्यमान है—इस तथ्य को नकारा नही जा सकता। ·· सच तो यह है कि कुमार व्यास की दृष्टि महाभारत की कथा मे आये हुए दोषो का परिष्कार करके अपनी कोई नई सृष्टि रचने की नहीं थी, उदाहरणार्थ द्यूत पर्व मे एक बार जुआ खेलकर, धोखा खाकर, अपना सब कुछ हारकर और अपमानित होकर भी युधिष्ठिर दुबारा फिर जुआ खेलने जाता है जो उसकी अत्यन्त दुर्बल सात्विकता का परिचायक है। लेकिन इसके बावजूद आख्यानो, उपाख्यानो एव नीति-तत्वो से भरे हुए इस महारण्य-जैसे महाभारत को सक्षिप्त करते हुए पात्रों तथा रस के प्रति जागरूक रहकर कुमार व्यास ने 'प्रति पर्व रसोदय' युक्त कन्नड-भारत तैयार किया है, निस्सदेह यह कार्य प्रशसनीय है।"

इस आधार पर कहा जा सकता है कि कुमार व्यास ने अपने काव्य की रचना करते समय मुख्य रूप से महाभारत का अनुसरण किया है। दूसरे, उसने अपने काव्य मे भक्ति और नीति-तत्वो पर बहुत अधिक जोर दिया है। सच तो यह है कि कुमार भागवत कवि था, अत उसकी रचना दृष्टि भी भागवतपरक है। परिणामत 'गदुगिन भारत' आद्योपान्त, सर्वांग रूप मे,

कृष्णमय है। एकमात्र विराट् पर्व को छोडकर सर्वत्र कृष्ण का ही चमत्कार वर्णित हुआ है। अब यदि कृष्ण को मानव मानकर हम कुमार की रचना पर दृष्टिपात करें तब तो उसका काव्य अवास्तविकता से भरा हुआ प्रतीत होता है, किन्तु वास्तव मे ऐसा नही है। वस्तुत उसका काव्य ' जटिल मानव-जीवन, मानवीय तथा अतिमानवीय शक्तियों की सम्मिश्र लीला है." वह इस सत्य के समग्र दर्शन के लिए रचित प्रतीक ग्रन्थ है। फलस्वरूप परमात्म-प्रशसा और नीति-तत्वों पर बेहद जोर डालने के कारण ही 'गदुगिन भारत' मे यत्र तत्र शिथिलता आ गई है।

'गदुगिन भारत' के पात्रो और उनके चरित्र चित्रण पर विचार करने से यह तथ्य भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है कि ' कुमार व्यास की कला का वास्तविक चमत्कार उसकी कथा-सयोजन-कला मे न होकर विभिन्न पात्रो के चरित्र को चित्रित करने में उभरा है।" कुमार के पात्र वही हैं जो 'महाभारत' के हैं किन्तु महाभारत में उनका वह व्यक्तित्व नही उभरा है जो यहाँ अपने जीवन्त रूप मे उभर आया है। कुमार का हर पात्र सजीव होकर अपने पूर्ण स्वाभाविक रूप मे सामने आता है। उदाहरण के लिए कृष्ण को ही लें।

कृष्ण इस ग्रथ का नायक है, महाभारत के नाटक का सूत्रधार है, यह तथ्य कवि प्रदत्त नाम कृष्ण-कथा' से ही स्पष्ट हो जाता है। सच तो यह है कि व्यास कृत महाभारत और आदि पम्प कृत 'पम्प भारत' मे कृष्ण को यह स्थान नही प्राप्त हो सका है। इसका मूल कारण है, रचना-सम्बन्धी तीनों के दृष्टिकोणों का भिन्न होना। पम्प का दृष्टिकोण जैन-परक था, व्यास का दृष्टिकोण विभिन्न मानव-चरित्रो और वृत्तियो को स्पष्ट करना था जबकि कुमार व्यास का दृष्टिकोण मात्र कृष्ण की कथा कहना। इस दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप ही कृष्ण को नायकत्व प्राप्त हो सका है। वही इस महाभारत नाटक का सूत्रधार है, एकमात्र नायक है, सारी चेतनाओ का मूल, सभी प्रवृत्तियो का कारण तथा सारे प्रयत्नो का ऐसा लक्ष्य है जिसके बिना 'गदुगिन भारत' अस्तित्व-हीन है। कृष्ण-चरित्र के दो पक्ष सामने आते हैं। कृष्ण का पहला रूप वह है जिसमें वह एक कुशल राजनीति के खिलाडी के रूप में दिखाई देता है, तथा अपने दूसरे रूप मे वह करुणा का सागर, आपद्बन्धु और धर्मरक्षक बनकर सामने आया है। अपने उद्देश्य की सिद्धि के निमित्त—धर्म की रक्षा करने हेतु—वह साधनो की चिन्ता नहीं करता। सत्यासत्य, धर्म-अधर्म, सात्विकता या कुटिलता की चिन्ता न करके वह किसी भी तरह से अपने उद्देश्य की पूर्ति करने में हर पल तत्पर दिखाई देता है—एक कुटिल राजनीतिज्ञ का सच्चा चित्र है कृष्ण। इस सन्दर्भ मे उल्लेखनीय है कि कुमार व्यास का यह

कृष्ण-चरित्र व्यास कृत 'महाभारत' के कृष्ण की तो 'फोटो-कापी' है, परन्तु आदि पम्प और रन्न के कृष्ण से भिन्न है । इसका एकमात्र कारण यही है कि कुमार कृष्ण-भक्त भागवत कवि था, जबकि पम्प और रन्न जैन मतावलम्बी थे, कृष्ण-भक्त नही ।

कृष्ण की ही भाँति कुमार ने अन्य पात्रो का भी पूर्ण एव सजीव चित्र अपने काव्य मे खीचा है । इन चरित्र-चित्रो को देखकर पाठक मुग्ध हुए बिना नही रह सकता । इन पात्रो के बारे मे आलोचको के विभिन्न मतों का अवलोकन हिन्दी के महाकवि तुलसीदास के इस कथन की सत्यता को प्रमाणित करता है—"जिन खोजा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ ।" भीम के चरित्र पर मुग्ध एक आलोचक ने अगर लिखा "कुमार व्यास के महाकवि होने की साक्षी एक अकेले भीम का ही चरित्र है" , तो दूसरे ने लिखा है, "द्रौपदी के चारित्रिक गुणो को पूरी तरह उभार कर सामने लाने वाला कुमार व्यास महाकवि है—इसमें जरा भी सन्देह नहीं है", और तीसरे का कहना है—"कुमार व्यास का विराट-पुत्र उत्तर कन्नड-साहित्य की अपूर्व पात्र-सृष्टि है ।" तात्पर्य यही है कि कुमार व्यास की चरित्र-चित्रण कला श्रेष्ठता के चरमत्व पर पहुँची हुयी थी । उसने जिस पात्र को भी छुआ है वही सजीव होकर स्वाभाविक रूप से गतिशील हो गया है । सम्पूर्ण 'गदुगिन भारत' मे एकमात्र कर्ण ही ऐसा पात्र है जिसमे स्वाभाविकता नहीं दिखाई देती—वह विसगतियो से भरा हुआ एक यन्त्रचालित पुतला बनकर रह गया है । इसके विपरीत आदि पम्प ने कर्ण के चरित्र का बहुत ही सुन्दर ढग से चित्राकन किया है । स्वय पम्प के शब्दो मे, "कर्ण से सारा भारत ही कर्णरसमय हो गया है ।"

कुमार व्यास के वर्णनो का सौन्दर्य अद्‌भुत, अपूर्व है । इसका एकमात्र कारण यह है कि कुमार अन्य पूर्ववर्ती कवियो की भाँति परम्परागत वर्णनो के व्यामोह मे नहीं पडा । उसने ऐसे वर्णन किये अवश्य हैं, परन्तु उनका समयोचित एव कुशलतापूर्ण उपयोग करके उसने अपने महाकवित्व को प्रमाणित कर दिया है ।

अलकारो के उपयोग मे भी कुमार व्यास कन्नड साहित्य में अपना सानी नही रखता । "रूपक अलकार का तो वह बादशाह है ।" जिस प्रकार सस्कृत-साहित्य मे महाकवि कालिदास को 'उपमा सम्राट्' कहा जाता है, उसी प्रकार कन्नड-वाङ्मय मे कुमार व्यास को "रूपक-साम्राज्य का चक्रवर्ती" कहा जाता है ।

कुमार व्यास की भाषा-शैली पर विचार करते हुए श्री मुगलि ने लिखा है, "जिस प्रकार कृष्ण की कृपा से द्रौपदी को अक्षय-पात्र प्राप्त हुआ था, उसी

प्रकार कुमार व्यास को वीर नारायण [भगवान् श्रीकृष्ण] की कृपा से कन्नड के देसी शब्द-भण्डार की अक्षय सम्पत्ति प्राप्त हुयी थी जिसकी सहज सामर्थ्य, सुगम्यता और जिसके रूप-वैभव को उसने आश्चर्यजनक ढग से सुसज्जित किया है।" दूसरे शब्दो में कह सकते हैं, "कुमार व्यास को कन्नड की देसी शैली पर पूर्ण अधिकार प्राप्त था।" वास्तव मे 'गदुगिन भारत कन्नड-जनपद-साहित्य का शिरोमणि है। किन्तु जनपद साहित्य होते हुए भी उसमे सस्कृत-प्रचलित मार्ग-शैली प्रयुक्त हुयी है। सस्कृत शब्दो और पदों का उपयोग भी यत्र-तत्र किया गया है।

इस काल की अन्य ब्राह्मण रचनाओ की भाँति यह काव्य भी सम्पूर्णत भामिनी षट्पदी छन्द में लिखा गया है।

ऐरावत—यह आठ सन्धियो का एक छोटा-सा काव्य-ग्रन्थ है जिसकी हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुयी है। इसके अन्त मे ग्रन्थ-रचयिता का नाम 'गदुग का वीर नारायण' लिखा है। इस आधार पर विद्वानो की मान्यता है कि 'ऐरावत' और 'गदुगिन भारत' की भाषा शैली आदि मे पर्याप्त साम्य मिलता है, अत 'ऐरावत' को कुमार व्यास लिखित ग्रथ मानने मे कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। परन्तु विद्वानो का एक दूसरा वर्ग इस मान्यता से सहमत नहीं है। इस वर्ग का तर्क है कि भाषा और भावगत जो स्वाभाविकता और उज्ज्वलता कुमार व्यास कृत भारत में दिखाई देती है उसके दर्शन 'ऐरावत' मे नहीं होते, अत ऐरावत' कुमार व्यास की रचना नहीं हो सकती—हाँ, यह सम्भव हो सकता है, बाद के किसी दूसरे कवि ने 'गदुगिन भारत' के आदि पर्व के ऐरावत भाग को स्वेच्छा से विस्तृत करते हुए लिखा हो।

## कुमार व्यास और आदि पम्प

सम्पूर्ण कन्नड-वाङ्मय की दो महान विभूतियाँ हैं—आदि पम्प और कुमार व्यास। सस्कृत के महाकवि वेद व्यास कृत 'महाभारत' को आधार मानकर इन दोनो ही महाकवियो ने क्रमश. 'विक्रमार्जुन विजय अथवा पम्प भारत' और 'गदुगिन भारत' शीर्षक से अपने महाकाव्य लिखे हैं। किन्तु इन दोनों कवियो की अगर तुलना की जाय तो बहुत-सी विषमताएँ सामने आती हैं—एक ही कथा को दोनों कवियो ने लिखा अवश्य है परन्तु उनमे बडा अन्तर है। दोनो कवियों एवं उनके ग्रन्थो की पारस्परिक तुलना करने से जो अन्तर सामने आते है उनमे से कुछ प्रमुख अन्तर नीचे बताये जा रहे हैं—

1 पम्प जैन-मतावलम्बी था* और चालुक्य-नरेश अरिकेसरी द्वितीय का राज्याश्रित कवि था ; परन्तु कुमार व्यास वैदिक मतावलम्बी स्मार्त ब्राह्मण था और भागवत सम्प्रदाय का अनुयायी था। दोनो के साहित्य पर उनके धार्मिक विश्वासो की गहरी छाया स्पष्ट है।

2 पम्प राज्याश्रित कवि था, अत उसका 'विक्रमार्जुन विजय' ध्वनित काव्य है। उसमें अर्जुन की आड लेकर अपने आश्रयदाता राजा अरिकेसरी द्वितीय की शौर्य-गाथा गाई गई है। अरिकेसरी की स्तुति करना 'पम्प भारत' का एक प्रमुख उद्देश्य रहा है। किन्तु कुमार व्यास की प्रतिभा किसी राज्याश्रय मे चमकी है, इस बात का कोई प्रमाण फिलहाल अभी तक प्राप्त नहीं हो सका है। अतएव कह सकते हैं, गदुगिन भारत' के माध्यम से किसी राजा की स्तुति नहीं गायी गई है बल्कि इसमे कृष्ण की, उसके कार्यो की स्तुति गायी गयी है। दूसरे शब्दो मे, यह 'पम्प भारत' जैसा कोई ध्वनित काव्य न होकर विशुद्ध भक्ति-प्रधान रचना है।

3. स्पष्टत दोनो के उद्देश्य भिन्न हैं। पम्प केवल लौकिक-काव्य लिखकर एक तो जैन-काव्य-परम्परा को पुष्ट करना चाहता था और दूसरे आश्रयदाता की प्रशसा। किन्तु कुमार व्यास भक्ति-भाव को प्रधानता देते हुए "स्वच्छ, निर्मल ढग से कृष्ण-कथा कहना चाहता है।" यही उसका उद्देश्य है।

4. पम्प की दृष्टि मे 'महाभारत' मानव-संघर्ष की कथा है, जबकि कुमार व्यास के लिए वह 'मानव जीवन के सूत्रधार भगवान कृष्ण की लीला' है।

5. पम्प का कृष्ण परमात्मा नही, पुरुषोत्तम है। कृष्ण के विरोधियो द्वारा पम्प ने खुलकर कृष्ण की निन्दा करायी है। सम्भवत इसके दो कारण मुख्य हैं—पहला तो पम्प का कृष्ण मात्र एक मनुष्य है, पुरुषों मे श्रेष्ठ—पुरुषोत्तम। जो हर स्थिति मे अपने मित्र अर्जुन की नीति-अनीति का पालन करते हुए सहायता करता है, और दूसरे, पम्प जैन-मतावलम्बी होने के कारण समन्वयवादी होने पर भी वैदिक-धर्म का विरोधी था। किन्तु कुमार व्यास का सारा ग्रन्थ कृष्ण की प्रशसा और उसके चमत्कारो से आप्लावित है। वह कृष्ण भक्त था। उसने सर्वत्र परमात्म-प्रशसा की है और कृष्ण को परमात्मा के रूप मे चित्रित, प्रतिष्ठित किया है।

6 पम्प ने मार्ग-काव्य-परम्परा को अपनाते हुए चम्पू-काव्य लिखा

* पम्प से सम्बन्धित विस्तृत विवरण के लिए देखिये पृष्ठ 4 -19।

था, किन्तु कुमार व्यास की रचना देसी काव्य-परम्परा का अनुमोदन करती है। यह विशुद्ध काव्य (पद्य) ग्रन्थ है। सारा ग्रन्थ भामिनी षट्पदी छन्द मे लिखा गया है।

7 पम्प की भाषा संस्कृत-गर्भित है, परन्तु कुमार व्यास की भाषा देसी कन्नड का प्रतिनिधित्व करती है।

8 पम्प अगर 'उपमा-सम्राट्' था तो कुमार व्यास 'रूपक-सम्राट्' है।

9. पम्प की विशेषता अगर विस्तृत कथा को अत्यन्त संक्षिप्त कर देने मे है तो कुमार व्यास की विशेषता संक्षिप्त कथा को विस्तार दे देना है।

श्री आर० एस० मुगलि के शब्दो मे इन दोनों कवियो की तुलना इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं—"पम्प से कुमार व्यास की तुलना करते समय हमे यह स्मरण रखना होगा कि यद्यपि प्रतिभा का उत्कर्ष दोनों मे समान है तथापि दोनों की दृष्टियाँ, तन्त्र और शैलियाँ भिन्न हैं। पम्प की दृष्टि मे भारत मानव-संघर्ष का एक चित्र है, किन्तु कुमार व्यास ने मानवीयता को न छोडते हुए भी उसकी प्रेरक परमात्म शक्ति की लीला को चित्रित किया है। दोनो कवियो के धार्मिक विश्वासो की भिन्नता भी इसका कारण हुयी है। पम्प का तन्त्र मार्ग काव्य का है और कुमार व्यास का तन्त्र देसी। अपने-अपने तन्त्र का अनुसरण करके दोनो ने अपूर्व सिद्धि अर्जित की है। यही बात शैली पर भी लागू होती है। दोनो ने महाभारत को संक्षिप्त करके कहा है, परन्तु कुमार व्यास का जन्मजात गुण कथा को विस्तृत रूप देते हुये प्रस्तुत करना है और पम्प का बड़ी कथा को संक्षिप्त करना—यह सत्य है।"

संक्षेप मे केवल इतना ही कहा जा सकता है कि अनेक समानताओं और विषमताओ के बावजूद पम्प और कुमार व्यास कन्नड-साहित्य के दो जाज्वल्यमान ऐसे नक्षत्र हैं जिनकी आभा कभी मन्द नहीं पड़ेगी।

## कुमार वाल्मीकि

इसका वास्तविक नाम नरहरि था और यह बीजापुर के समीपस्थ तोरवे नामक ग्राम का रहनेवाला था। अभिनव पम्प और कुमार व्यास की तरह इसने अपना साहित्यिक नाम 'कुमार वाल्मीकि' रख लिया था। जिस प्रकार कुमार व्यास ने संस्कृत कवि वेदव्यास से 'व्यास' लेकर उनके अनुकरण पर 'कन्नड महाभारत' की रचना की थी, उसी प्रकार नरहरि ने संस्कृत के आदि कवि वाल्मीकि के नाम पर अपना नाम 'कुमार वाल्मीकि'

रक्खा और वाल्मीकि के नाम की सार्थकता प्रतिपादित करने के लिए वाल्मीकि कृत 'रामायण' को आधार मानकर कन्नड मे 'तोरवे-रामायण' की रचना की। नरहरि उर्फ कुमार वाल्मीकि के जीवन-वृत्त मे सम्बन्धित कोई जानकारी नहीं मिलती। इसके वशज आज भी तोरवे ग्राम मे रहते हैं। कन्नड शोध-कर्त्ताओं को वहाँ जाकर शोध करना चाहिए ताकि कवि से सम्बन्धित पर्याप्त जानकारी हासिल हो सके। अनुमानत कुमार वाल्मीकि को कुमार व्यास के 100 वर्ष बाद का कवि माना जाता है।

**तोरवे रामायण**—जिस प्रकार व्यास कृत महाभारत 'गदुगिन भारत' के नाम से प्रसिद्ध है, वैसे ही कुमार वाल्मीकि कृत रामायण 'तोरवे रामायण' के नाम से प्रसिद्ध है। यह ग्रन्थ 'वाल्मीकि रामायण का कन्नड़ भाषा मे तैयार किया गया सक्षिप्त सस्करण है। उल्लेखनीय है, कन्नड में इससे पूर्व जो भी रामायण-विषयक् काव्य-ग्रन्थ लिखे गये थे, वे सभी जैन परम्परा का अनुमोदन करते हैं तथा उन्हें 'जैन रामायण' कहा जाता है, परन्तु 'तोरवे रामायण' ब्राह्मण-परम्परा की पहली राम विषयक् काव्य-रचना है।

ग्रन्थ की रचना करते समय कुमार वाल्मीकि ने राम को भक्तिपूर्वक विष्णु के अवतार-रूप मे देखते हुए भागवत दृष्टिकोण को अपनाया है। इस तथ्य का द्योतन ग्रन्थ का पीठिका-भाग करता है। ग्रन्थ की पीठिका मे राम-नाम की महत्ता बतलाते हुये कवि भगवान् शिव के मुख से पार्वती को राम-कथा सुनवाता है।

यद्यपि 'तोरवे रामायण' सस्कृत रामायण का सक्षिप्त रूप है, तथापि इसकी कथावस्तु पर 'अद्भुत रामायण' का भी यथेष्ठ प्रभाव है। सारी कथा को कवि प्राय. संक्षिप्त करते हुये कहता चला गया है, किन्तु जहाँ कहीं भी उसे कोई सन्दर्भ महत्वपूर्ण प्रतीत हुआ, उसने उसे विस्तार दे दिया है; उदाहरणार्थ ग्रन्थ का आधे से कुछ अधिक भाग केवल युद्ध-वर्णनो से ही भरा हुआ है। कहीं-कहीं कवि ने मूल कथा मे परिवर्तन भी किये हैं। उदाहरणार्थ, मथरा को दासी बताते हुए माया का अवतार माना गया है। दूसरे, राज्याभिषेक के दिन राम मुनि वशिष्ठ से कहते हैं, 'हे मुनि-श्रेष्ठ, मैंने आज एक स्वप्न देखा कि मैं अरविन्दमुखी के साथ वन मे घूम रहा हूँ। इत्यादि।

आलोचनात्मक दृष्टि से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि वाल्मीकि रामायण का कन्नड़-अनुवाद प्रस्तुत करते समय कुमार व्यास ने

जितना भक्ति से काम लिया है, उतना कवित्व-गुणो से नही। फिर भी सजीव सन्दर्भों का बडा स्वाभाविक चित्रण उसने किया है। चरित्र-चित्रण मे भी भक्ति की प्रधानता है, तथापि पात्रो का चरित्राकन सुन्दर ढग से हुआ है, यह सच है। कथा कहने की उसकी शैली प्रवाहपूर्णता से युक्त प्रभावोत्पादक है।

यो तो, कुमार वाल्मीकि ने अपने सम्बन्ध मे बडी-बडी गर्वोक्तियाँ की हैं और स्वय को कुमार व्यास के समकक्ष बताया है। किन्तु सच तो यह है कि इन दोनो की कोई तुलना नही की जा सकती। एक अगर जमीन ले तो दूसरा आसमान। निष्पक्ष रूप है कह सकते हैं कि कुमार वाल्मीकि मध्यम कोटि का कवि था। उसकी कल्पना-शैली पर कुमार व्यास का बहुत अधिक प्रभाव है।

कहते हैं, इसने 'ऐरावगान् कालग' नामक एक और काव्य लिखा था। 'ऐरावणनकालग' [ ऐरावण—अहिरावण . रावण का एक पुत्र—का युद्ध ] अनुपलब्ध और अप्रमाणिक रचना है।

## तिम्मण्णा कवि

यह राजा कृष्णदेव राय का राज्याश्रित कवि था। कुमार व्यास से प्रेरणा पाकर इसने उसके 'गदुगिन भारत' मे अन्तिम सात पर्व लिखकर उसे पूर्णता प्रदान की। कुछ श्रुतियो के अनुसार, यह भी कहा जाता है कि इसने कन्नड़-भारत के शेष सात पर्वो की रचना राजा के आदेश पर की थी और उसे 'कृष्ण राय भारत' नाम दिया था। कुछ भी हो, परन्तु यह सत्य है कि कन्नड-भारत के अन्तिम सात पर्व इसी तिम्मण्णा के लिखे हुए हैं। इसकी शैली पर कुमार व्यास के अलावा तेलुगु के सुप्रसिद्ध महान् कवि 'कविब्रह्म' तिक्कण्ण की शैली का अत्यधिक प्रभाव है। तिक्कण्ण ने तेरहवी शताब्दी में तेलुगु में महाभारत के विराट् पर्व से आगे के पर्वों का रूपांतर किया था। सच तो यह हैं कि तिम्मण्णा सस्कृत और तेलुगु से बहुत अधिक प्रभावित था, इसी कारण अनुवाद काय मे उसने सराहनीय सफलता पायी है। तेलुगु से प्रभावित होने का मुख्य कारण यह था कि कृष्णदेव राय तेलुगु का स्वय एक बडा विद्वान् और लेखक था, परिणामत उसके दरबार में अनेक कन्नड और तेलुगु के कवियो को समान रूप से प्रतिष्ठा प्राप्त थी। उसके काल मे दोनो भाषाओ ने एक-दूसरे को पर्याप्त सीमा तक प्रभावित किया हुआ था।

तिम्मण्णा का 'कृष्ण राय भारत' भामिनी षट्पदी छद मे रचा गया है। इसके काव्य में माधुर्य है, प्रवाह है, प्रसाद और ओज है। ग्रन्थ का रचनाकाल सन् 1510 ई० है।

## लक्ष्मीश

कन्नड मे महाभारत को आधार मानकर तीन 'भारत' रचे गये, इस तथ्य को 'गदुगिन भारत' की चर्चा करते समय स्पष्ट किया जा चुका है× । लक्ष्मीश कृत 'जैमिनि भारत तीसरा और अन्तिम कन्नड-भारत ग्रथ है । खेद का विषय है कि इस महत्वपूर्ण ग्रथ के रचयिता लक्ष्मीश का जीवन परिचय पूर्णतः अज्ञात है । अनुमान है, इसका काल 16वी शताब्दी रहा होगा ।*

जैमिनि भारत—यह लक्ष्मीश की एकमात्र काव्य-रचना है । उल्लेखनीय तथ्य तो यह है कि कुमार व्यास ने अगर महाभारत के आरम्भिक 10 पर्वो का रूपातर किया था, तिम्मण्णा ने उत्तर भारत—अर्थात् 11वें से 17वें पर्व तक—का कन्नड़ मे अनुवाद किया था तो लक्ष्मीश ने उत्तरोत्तर भारत का कन्नड़-रूपातर प्रस्तुत किया है । अनेक उपाख्यानों से भरे हुये इस महाकाव्य मे मुख्य रूप से युद्धोपरान्त युधिष्ठिर द्वारा अश्वमेध यज्ञ करने की कथा वर्णित हुयी है । किन्तु यह भी प्रत्यक्ष कथा है वास्तव मे लक्ष्मीश ने अश्व मेध-यज्ञ की कथा क बहाने कृष्ण-भक्ति की महिमा का गान किया है । उसने स्वय अपनी रचना को कृष्णचरितामृत' की सज्ञा दी है । यद्यपि कही-कही असम्बद्धता की प्रतीति के कारण, सम्भव है, कुछ लोगो को लक्ष्मीश की यह उक्ति सार्थक होती न जान पडे, परन्तु मूल सस्कृत ग्रन्थ का अध्ययन यह स्पष्ट घोषणा करता है कि अश्वमेध-यज्ञ कथा तो मात्र बहाना है, ग्रन्थ का वास्तविक उद्देश्य कृष्ण-भक्ति-महिमा का ग'न करना ही है । कृष्ण के चरित्र को यदि इसमे से पृथक् कर दिया जाये तो यह ग्रन्थ अपग होकर गिर जायेगा ।

लक्ष्मीश का यह काव्य सस्कृत के सुप्रसिद्ध वैयाकरणाचार्य जैमिनि कृत 'जैमिनि भारत' का सक्षिप्त कन्नड़ सस्करण है । मूल ग्रन्थ मे 68 अध्याय हैं । लक्ष्मीश ने 68 अध्यायो मे वर्णित अश्वमेध-यज्ञ की कथा को सक्षिप्त करके 34 सन्धियो मे प्रस्तुत किया है, फिर भी कथा काफी विस्तृत है । सामान्यतया लक्ष्मीश ने पूर्ववर्ती कन्नड-कवियो मे प्रचलित परम्परा का अनुमोदन करते हुए प्रायः मूल ग्रन्थ का अनुसरण किया है और कथा मे कोई बड़ा परिवर्तन नहीं किया है, परन्तु जहां कहीं भी औचित्य जान पड़ा है, उसने आवश्यक परिवर्तन करते हुये या तो प्रसगो को छोड दिया है, या सक्षिप्त अथवा विस्तृत कर दिया है, या कोई नवीन प्रसग जोड दिया है । इस प्रकार सस्कृत और कन्नड मे लिखित 'जैमिनि भारत' की मूल

*देखिये इसी पुस्तक का पृष्ठ 130

कथा मे कुछ अन्तर आ गया है। दोनों ग्रन्थों की मूल कथा मे आने वाले मुख्य तीन अन्तर ये हैं—

(i) मरुत द्वारा किये गये यज्ञ मे ब्राह्मणो द्वारा त्याज्य धन को युधिष्ठिर द्वारा अपने अश्वमेध-यज्ञ हेतु ले आने की कथा संस्कृत के 'जैमिनि भारत' मे नही है। लक्ष्मीश ने यह कथा व्यास कृत 'महाभारत' के अश्वमेध पर्व से ग्रहण की है।

(ii) संस्कृत 'जैमिनि भारत' के अनुसार, बभ्रुवाहन अश्वमेध-यज्ञ के घोडे पर अंकित घोषणा को पढ़ता है और अर्जुन को अपना पिता जान लेने पर वह घोडे को उसे सौंपने लगता है, किन्तु लक्ष्मीश के अनुसार, बभ्रुवाहन अपनी माँ चित्रांगदा के आदेश पर घोड़ा अर्जुन को सौंपने लगता है।

(iii) संस्कृत 'जैमिनि भारत' मे कुश और लव मे युद्ध होने के उपरान्त बभ्रुवाहन से युद्ध होने की कथा कही गई है, परन्तु लक्ष्मीश ने इन घटनाओ का क्रम उलट दिया है—अर्थात् पहले कुश और लव से युद्ध होता है, बाद मे बभ्रुवाहन से।

(iv) लक्ष्मीश ने ऐसे अनेक पात्रो को अपनी रचना मे स्थान दिया है जो न तो संस्कृत 'महाभारत' मे हैं, न संस्कृत 'जैमिनि भारत' मे और न ही पुराणो मे आए हैं। ऐसे पात्रो मे यौवनाश्व, सुधन्वा, वीर वर्मा, मयूरध्वज, चन्द्रहास आदि कई पात्र हैं जिनसे सम्बन्धित कथायें सम्भवत भागवत परम्परा मे प्रचलित रही होगी और लक्ष्मीश ने वही से उन्हे ग्रहण किया होगा।

इनके अतिरिक्त दोनो ही ग्रन्थों की मूल कथा समान ही है।

ऊपर कहा जा चुका है कि लक्ष्मीश कृत 'जैमिनि भारत' की मूल कथा तो युधिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञ से सम्बन्धित है, परन्तु साथ ही ग्रन्थ मे अनेक उपाख्यान भी वर्णित हुये हैं। ये उपाख्यान सहायक कथाओ के रूप मे मूल कथा के अंग-रूप हैं। उल्लेखनीय बात तो यह है कि जिस प्रकार अश्वमेध यज्ञ के लिए छोडा गया घोडा स्वेच्छा से स्वच्छन्द विचरण करते हुये भ्रमण करता है और उसके भ्रमण मे कोई क्रम नही होता, उसी तरह इन विभिन्न उपकथाओं में भी कोई क्रमबद्धता नहीं है। दूसरे शब्दो मे, यह काव्य 'कहीं का ईंट, कहीं का रोड़ा, भानुमती का कुनबा जोड़ा' वाली कहावत की सत्यता को प्रमाणित करने के लिए उत्तम ग्रन्थ है। एक विद्वान् आलोचक के कथनानुसार "इस काव्य की कथा को एक कथा न कह कर यदि कथा-संग्रह कहा जाये तो अधिक उचित होगा। कथा

की एकता के स्थान पर इसमे कृष्ण-भक्ति और रस की एकता है—'जैमिनि भारत' की इस सर्वप्रमुख विशेषता को लक्ष्मीश ने बहुत अच्छी तरह निभाया है, यह निर्विवाद है। उसके द्वारा वर्णित सुधन्वा, बभ्रुवाहन, सीता और लव-कुश तथा चन्द्रहास से सम्बन्धित कहानियो मे लक्ष्मीश की कहानी कहने की कला उत्तरोत्तर निखरती ही चली गयी है—और चन्द्रहास की कथा मे तो वह अपने चरमत्व पर पहुँच गई है · · चन्द्रहास की अकेली यह कथा ही इस बात का यथेष्ट प्रमाण है कि मूल ग्रन्थ का अनुसरण करते हुये भी कन्नड़-साहित्य में कहानी कहने की उच्च कोटि की कला का श्रेष्ठ प्रदर्शन करने वाला एकमात्र कथन-कवि लक्ष्मीश है।"

लक्ष्मीश के काव्य मे शृंगार, वीर और भक्ति रस की प्रधानता है। उसके अधिकाश पात्र—युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, यौवनाश्व आदि—वीर रस की साक्षात् प्रतिमायें हैं। कुछ पात्रो में भक्ति की प्रधानता मिलती है। विशिष्टता तो यह है कि कवि ने इन पात्रो पर विभिन्न रसो की प्रतिक्रियायें विभिन्न विधियो से प्रदर्शित की हैं।

कन्नड के 'जैमिनि भारत' मे आए हुए स्त्री-पात्रो से सम्बन्धित श्री सिद्धगोपाल काव्यतीर्थ का यह उल्लिखित मत सत्यता के काफी निकट जान पडता है -"स्त्री-पात्रो मे शृंगार-रसिका प्रभावती, चलवादिनी ज्वाला, भयानक प्रकृति की चण्डी, प्रणय-चतुरा विषया आदि की सुन्दर मूर्तियाँ घडकर लक्ष्मीश ने अपने काव्य-मन्दिर मे खडी कर दी हैं। मूल से ही प्रेरणा प्राप्त करके लक्ष्मीश ने अपनी निज की सृष्टि की है।"

लक्ष्मीश उच्च कोटि का पण्डित-कवि था, यह कहना अतिशयोक्ति न होगा। उसके छन्द और शैली में प्राचीन और तद्युगीन छन्द शैली—अर्थात् मार्ग और देसी छन्द शैली—का सुन्दर सम्मिलन हुआ है। उसके काव्य में उसकी प्रतिभा के साथ-साथ पाण्डित्य भी प्रदर्शित हुआ है। देसी कन्नड काव्यो मे प्रयुक्त होने वाले देसी छन्दो मे प्राचीन मार्ग-परम्परागत शैली का सफल प्रयोग करके लक्ष्मीश ने अपने पाण्डित्य का सफल प्रदर्शन कर दिया है। अलकारो का चमत्कार दर्शनीय है।

प्राय: लक्ष्मीश के बारे मे यह प्रश्न आलोचको के बीच विवाद का विषय बन जाता है कि वह पहले पण्डित था या कवि ? और, क्या उसका काव्य एक उच्चकोटि का महाकाव्य है ? इस सन्दर्भ में विस्तृत विवेचना न प्रस्तुत करके यहाँ केवल दो विद्वानो के मतो को प्रस्तुत करना ही अधिक उचित होगा।

श्री एन्० अनन्तरगाचार के अनुसार, "लक्ष्मीश का काव्य श्रेष्ठ

गुणो से युक्त और बेहद लोकप्रिय होते हुये भी शुद्ध काव्य-दृष्टि से पम्प, रन्न और कुमार व्यास की रचनाओ के समकक्ष नही ठहरता—अनेक आलोचको की यह मान्यता काफी हद तक सही प्रतीत होती है।··· संक्षेप यह पहले पण्डित था, सम्प्रदाय धारण था, उत्तम सक्षेपकार था, श्रेष्ठ कहानी कहने वाला था।" स्पष्ट रूप से, श्री अनन्तरगाचार लक्ष्मीश को महाकवि नहीं मानते।

किन्तु प्रो० मुगलि का मत है, "जैमिनि भारत' साम्प्रदायिक लक्षणो से युक्त महाकाव्य होते हुए भी कला की दृष्टि से समग्र महाकृति नही है—यद्यपि उसमे महाकृति के तेज का अंश कहीं कही दृष्टिगत होता है। · ·लक्ष्मीश ने मूल संस्कृत ग्रन्थ के कथानक की अस्वाभाविकता और बहुरंगीपन का अनुसरण किया है, फिर भी कुछ कथाओ मे उसकी काव्य-रचना-कौशल का बड़प्पन स्पष्ट झलकता है जिसके द्वारा उसका महाकवित्व प्रमाणित हो जाता है। सम्पूर्ण ग्रन्थ में प्रयुक्त छन्दों और शैलियो का विमर्दन भी उसकी महाकवित्व-शक्ति और योग्यता को प्रमाणित करता है। · · 'यह पहले पण्डित था' कहने की अपेक्षा 'यह कथन-कवि था' यह कहा जाये तो अधिक उचित होगा। साम्प्रदायिक होते हुये भी यह सम्प्रदाय-धारण नहीं था। पाण्डित्य और चमत्कार प्रदर्शन का मोह तो काव्य मे कही-कही ही दिखाई देता है, परन्तु ऐसे सन्दर्भ थोड़े ही हैं जो पाण्डित्य और चमत्कार-प्रदर्शन के कारणस्वरूप कविता-सत्वहीन और जर्जरित हो गये हों। ····कुल मिलाकर लक्ष्मीश के महाकवि होने पर भी उसका भारत अंशत महान् है, सम्पूर्णत महाकृति नही।"

अतएव कहना न होगा, लक्ष्मीश पाण्डित्य से पूर्ण कथन-कवि था, महाकवि था। उसका काव्य भले आलोचक-दृष्टि से कविता की कसौटी पर खरा न उतरता हो, परन्तु लोकप्रियता की कसौटी पर वह पम्प, रन्न या कुमार व्यास की रचनाओ के समकक्ष उतरता है—यह निर्विवाद है। सम्पूर्ण कर्नाटक प्रदेश (मैसूर प्रान्त) मे 'जैमिनि भारत' बेहद लोकप्रिय है और जनता द्वारा गाया जाता है।

## गोप

गोप कवि का एक अन्य नाम 'गोविन्द' भी बताया जाता है। यह बीजापुर जिले का रहने वाला था। यह कुमार व्यास और लक्ष्मीश से बहुत प्रभावित था। इसके लिखे दो काव्य ग्रन्थ प्राप्त हुये हैं—'चित्र-भारत' और 'नन्दि-माहात्म्य'।

'चित्रभारत' मे महाभारत की कथा वर्णित हुयी है । 'नन्दि-माहात्म्य
भक्ति और चमत्कार से पूर्ण यह एक मध्यम श्रेणी का काव्य-ग्रन्थ है ।
मे महाभारत के माहात्म्य को स्पष्ट करने वाली एक पौराणिक कथा
वर्णित है । यह ग्रन्थ कला की दृष्टि से 'चित्र-भारत' से कहीं अधिक श्रेष्ठ
है । इसकी कला कहीं अधिक परिपक्व है । इसमें चित्र-भारत' की-सी
क्लिष्टता भी नही है बल्कि इसमे तो लक्ष्मीश जैसा प्रसाद और माधुर्य
दिखाई देता है । कहना न होगा, गोप ने भाव, भाषा, अलकार आदि मे
लक्ष्मीश का बहुत अशो मे अनुकरण किया है ।

कुमार व्यास की भांति भागवत-सम्प्रदाय के अनुयायी इस गोप कवि
का काव्य-रचनाकाल सन् 1581 ई० था ।

## नागरस

इसी 'श्रीमद्भागवतगीता' 17वीं शताब्दी मे भागवत-सम्प्रदाय के
अनुयायी कवि नागरस ने कन्नड मे अनुवाद प्रस्तुत किया । भामिनी षट्पदी
छन्द का उपयोग करते हुये नागरस ने गीता के प्रत्येक श्लोक का कन्नड-
अनुवाद किया है । कही-कही पर स्पष्टीकरण के लिए उसने अपनी ओर से
भी कुछ बातें जोड़ दी हैं, तथापि यह अनुवाद-ग्रन्थ ही है । नागरस ने स्वय
अपनी रचना को 'वासुदेव-कथामृत' की सज्ञा दी है, जो उसके सम्प्रदाय की
ओर सकेत करती है । परन्तु सत्यत , ऐसा प्रतीत होता है कि वह भागवत
होते हुए भी श कराचार्य के अद्वैतवादी स्मार्त दर्शन मे विश्वास रखता था ।
कारण, कि उसने गीता का अद्वैतपरक अनुवाद प्रस्तुत किया है । कुल मिलाकर
नागरस की यह अनूदित रचना सन्तोषजनक एव सुन्दर बन पडी है ।

## विवादग्रस्त ब्राह्मण साहित्य

17वी शताब्दी में ही कन्नड-साहित्य को महाभारत की एक और
अनूदित रचना तथा श्रीमद्भागवत की सर्वप्रथम अनूदित पद्यबद्ध रचना
प्राप्त हुयी । इसे क्रमश 'कन्नड़महाभारत' और 'कन्नड़-भागवत' कहकर
पुकार सकते हैं ।

ये दोनो अनूदित ग्रन्थ किसी एक ही व्यक्ति द्वारा लिखे गये हैं,
अथवा ये एक से अधिक व्यक्तियो की रचनायें है—इस सम्बन्ध मे विद्वानो मे
ऐकमत्य निर्णय नहीं लिया जा सका है । ये ग्रन्थ रचयिता के सन्दर्भ मे विवाद
का विषय बने हुये हैं ।

कुछ लोगो के अनुसार ये दोनो ही ग्रन्थ एक ही व्यक्ति चाटुविट्ठल
नाथ द्वारा लिखे गये हैं । किन्तु कुछ लोगो की मान्यता है कि भागवत का

कन्नड़-अनुवाद आराध्येन्द्र उर्फ नित्यात्मनाथ, विद्यायोगी उर्फ विद्यानाथ, सदानन्द योगी, निर्वाणनाथ तथा चाटुविट्ठलनाथ—इन पाँच लोगों द्वारा किया गया है। लेखक सम्बन्धी यह दूसरी मान्यता सत्य के काफी निकट जान पड़ती है। ग्रन्थ का अध्ययन इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि श्रीमद्भागवत को कन्नड़ में अनूदित करने का कार्य तो अनेक व्यक्तियों द्वारा सम्पन्न हुआ है, किन्तु विभिन्न व्यक्तियों द्वारा किये गये अनूदित अंशों को एक स्थान पर एकत्रित करने एवं उन्हें उचित एवं क्रमिक रूप से व्यवस्थित करते हुए ग्रन्थ का सम्पादन-कार्य चाटुविट्ठलनाथ द्वारा किया गया है।

सम्पूर्ण ग्रन्थ भामिनी षट्पदी छन्द में पद्य-रूप में लिखा गया है। 12,000 से अधिक छन्दों में लिखा गया यह ग्रन्थ 280 सन्धियों में विभाजित है। इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक दृष्टिकोण से भी 'कन्नड़-भागवत' का महत्त्व बहुत अधिक है। कारण, कि 'कन्नड़-भागवत' कन्नड़ भाषा में लिखा सर्वप्रथम श्रीमद्भागवत का अनुवादित ग्रन्थ है।

उल्लेखनीय है, इस ग्रन्थ के सभी रचयिता तद्युगीन उत्तरी भारत में प्रचलित 'नवनाथ-पंथ' के अनुयायी थे। सभी सन्यासी और सन्त कवि थे।

'कन्नड़ महाभारत' महाभारत का अनुवाद है। विभिन्न सन्धियों में इसके रचयिता का नाम 'नित्यात्म नारायण' अंकित है। स्पष्टतः यह ग्रन्थ चाटुविट्ठलनाथ की रचना न होकर आराध्येन्द्र उर्फ नित्यात्मनाथ की ऐसी रचना है जिस पर कुमार व्यास-कृत 'गदुगिन भारत' का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है, परन्तु वैसी प्रतिभा कहीं नहीं झलकती। अनेक स्थलों पर व्याकरण विरुद्ध देशी कन्नड़ का प्रयोग भी देखने को मिलता है।

## [२] कुमार व्यास युगीन दास-साहित्य

ऊपर हमने कुमार व्यास युगीन वैष्णव साहित्य के प्रमुख अंग भागवत-साहित्य का अंशतः अध्ययन किया। जैसा कि इस युग के साहित्य के वर्गीकरण को देखने से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि कुमार व्यास-युग में ब्राह्मण साहित्यकारों द्वारा मुख्य रूप में दो प्रकार का साहित्य रचा गया था। ब्राह्मण-साहित्य की प्रथम श्रेणी में विगत उप-अध्याय के अन्तर्गत विवेचित भागवत सम्प्रदाय के अनुयायियों द्वारा लिखित वैष्णव-साहित्य आता है। द्वितीय श्रेणी में ब्राह्मण कवियों की वे रचनाएँ आती हैं जिन्हें 'दासकूट पद' कहते हुये 'दास-साहित्य' के अन्तर्गत स्थान दिया जाता है।

## पृष्ठभूमि

कर्नाटक में वैष्णव-धर्म की दो प्रमुख दार्शनिक शाखाओं—विशिष्टाद्वैत और द्वैत सम्प्रदाय—का ही प्रभुत्व रहा है। इन मतों के संस्थापक क्रमश: रामानुजाचार्य और मध्वाचार्य थे। इन दोनों आचार्यों ने अपनी पृथक् दार्शनिक पृष्ठभूमि का अवलम्बन करते हुए क्रमश: राम और कृष्ण को भगवान् विष्णु के अवतार रूप में प्रतिस्थापित किया। यद्यपि वैदिक साहित्य में विष्णु के अनेक अवतार गिनाए गये हैं किन्तु साहित्यिक मान्यता राम और कृष्ण—और इनमें भी विशेष रूप से कृष्ण—को ही प्राप्त हो सकी है। उल्लेखनीय है, ये दोनो मत सिद्धान्तो, आचार-विचारों आदि में परस्पर मतभेद रखते हुए भी सगुण-भक्ति पर समान रूप से पूर्ण आस्था एवं विश्वास रखते हैं। समन्वय-भावना का महती गुण दोनों ही सम्प्रदायो में समान रूप से विद्यमान है।

मध्व-मत के समर्थकों ने कृष्ण के जीवन-चरित्र को अपने कीर्तन-साहित्य का विषय बनाया और हिन्दी के कृष्ण-भक्त कवियो की भाँति श्रद्धा, दैन्य, विनय, इष्टदेव की महिमा-गान, उसकी भक्त वत्सलता, आदि तत्वो को अपनाते हुए एक ऐसे साहित्य की रचना की जिसमे भक्ति-तन्मयता, रस और संगीतात्मकता के तत्व प्रधान हो गये हैं।

उल्लेखनीय है, मध्व-मत के वे अनुयायी, जो विष्णु-भक्ति का प्रचार करते हैं, हरिदास कहलाते हैं। हरिदासों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है: व्यास और दास। संस्कृत और कन्नड़ के माध्यम से द्वैत-सम्प्रदाय तथा विष्णु-भक्ति का प्रचार करने वाले हरिदास क्रमश: 'व्यास' और 'दास' कहे जाते हैं।

विष्णु-भक्ति के प्रचारार्थ कर्नाटक में 15वीं शताब्दी में दो संस्थाएँ स्थापित हुयीं: व्यासकूट और दासकूट। इनमें से 'दासकूट' संस्था का विष्णु-भक्ति तथा धर्म के प्रचार तथा प्रसार के सम्बन्ध मे दिया गया योगदान सराहनीय है।

उल्लेखनीय है, कन्नड़ मे लिखा गया सम्पूर्ण विष्णु-भक्ति विषयक् साहित्य दास-साहित्य कहलाता है। दास-साहित्य की कतिपय प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख आगे किया जायेगा, यहाँ केवल दास-भक्तो का संक्षिप्त, आलोचनात्मक परिचय देना ही अभीष्ट है।

## दास-कवि

दास-साहित्य की परम्परा का श्रीगणेश 13वीं शताब्दी के आरम्भिक

काल मे भक्त दास-कवि नरहरि तीर्थ द्वारा हुआ था। इस वैष्णव-परम्परा के दास साहित्य मे जिन महत्वपूर्ण भक्तो ने अपना योगदान दिया है, वे निम्न विवेचित हैं—

## नरहरितीर्थ

नरहरितीर्थ दास-साहित्य-परम्परा के जनक के रूप मे मान्य हैं। यह 13वीं शताब्दी के अन्त और 14वी के आरम्भ मे जीवित थे, किन्तु निर्णयात्मक रूप से इनका सही काल बताना कठिन है। इसी प्रकार नरहरितीर्थ का संन्यास लेने से पहले का जीवन भी विवादग्रस्त है। कुछ लोगो का कहना है, सन्यास लेने से पूर्व नरहरितीर्थ कलिंग राज्य पर शासन करते थे — अर्थात् कलिंग के राजा थे। परन्तु इसके ठीक विपरीत कुछ लोगो के मतानुसार, यह उडीसा-नरेश (?) के दरबार मे पदाधिकारी राजसेवक थे। इनमे से कौन-सा मत सही है, यह निश्चयपूर्वक कहना कठिन है। हाँ, इनके विषय मे, उक्त दोनो मतो के आधार पर यह निष्कर्ष अवश्य निकाला जा सकता है कि यह किसी-न-किसी उच्च वंश से सम्बन्धित थे और मध्वाचार्य से प्रभावित होकर द्वैत-सम्प्रदाय मे दीक्षित हो गये थे। मध्वाचार्य के अत्यन्त प्रिय शिष्य होने के कारणस्वरूप उनकी मृत्यु के उपरान्त वह गद्दी उत्तराधिकार रूप मे इन्ही को प्राप्त हुई थी। एक अन्य मत के अनुसार, इनका वास्तविक नाम श्याम शास्त्री था और वेदान्तपीठ की गद्दी इन्हे पद्मनाभतीर्थ से प्राप्त हुयी थी। इन सारी बातो को देखते हुये अन्तत हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि "नरहरितीर्थ नामक कोई उच्च वंशी व्यक्ति मध्वाचार्य के सिद्धान्तो से प्रभावित होकर सन्यासी हो गया था, जिसने कालान्तर मे वेदान्तपीठ का आसन ग्रहण किया और जिसने कर्नाटक प्रदेश मे वही की कन्नड भाषा मे दास-कूट-साहित्य-रचना का श्रीगणेश किया।"

इस प्रकार नरहरितीर्थ को 'दास-साहित्य का प्रवर्तक' कहा जाता है। उल्लेखनीय है, इन्होंने कन्नड मे अधिक साहित्य नहीं लिखा है। इनकी लिखी दो एक रचनायें ही उपलब्ध हैं, किन्तु वे पद भी उच्चकोटि के नहीं हैं। पदो की भाषा मे शैथिल्य दोष है। कन्नड के नये शब्दो का प्रयोग तो मिलता है, परन्तु बिगडे हुये रूप मे। अनुमान है, शब्दों का यह रूप-परिवर्तन गायको की वजह मे हो गया है। हाँ, इन पदो से इतना अवश्य ज्ञात होता है कि उस काल की वैष्णव-भक्ति में राम और कृष्ण मे भेद नहीं किया जाता था। विष्णु के एक ही अवतार-रूप मे दोनो को मान्यता थी। राम और कृष्ण मे पृथकत्व बाद की घटना है।

## श्रीपादराय

नरहरितीर्थ के बाद कन्नड साहित्य की इस विशिष्ट शाखा के क्षेत्र में श्रीपादराय का अभ्युदय एक उल्लेखनीय घटना मानी जानी चाहिए। कारण, कि नरहरितीर्थ का काल लगभग 1300 ई० है और उनके बाद लगभग 200 वर्षों तक दास-साहित्य-परम्परा का कोई कवि सामने नहीं आया। श्रीपादराय का काल 16वी शताब्दी के आसपास मान्य है। श्रीपादराय के बाद दास साहित्य की यह परम्परा कुछ समय तक तीव्र गति से प्रवाहित होनेवाली सरिता के समान निरन्तर आगे बढती रही। अतएव इस दृष्टि से दास-साहित्य के वास्तविक प्रवर्त्तक श्रीपादराय ठहरते हैं, नरहरितीर्थ नहीं।

इनका जन्म कर्नाटक प्रदेश के कोलार जिले की मुक्तबागिल तहसील के अन्तगत आनेवाले अब्बूर नामक गाँव मे हुआ था। इनके पिता का नाम शेषगिरि आचार्य तथा माँ का नाम गिरियम्मा था। इनका वास्तविक नाम लक्ष्मी नारायण था। आगे चलकर मध्वाचार्य सम्प्रदाय के मुक्तबागिल मठ के नवें गुरु के रूप मे यही लक्ष्मीनारायण मुनि के नाम मे मठाधीश बनाये गये।

श्रीपादराय एक श्रेष्ठ भक्त और महान् पण्डित थे। यह सस्कृत में लिखे गये धर्म ग्रन्थो का कन्नड-भाषा मे अनुवाद करना चाहते थे। इनका व्यक्तित्व एव कृतित्व दासकूट-साहित्य मे एक क्रान्ति लेकर सामने आया। दासकूट के मुखिया होने के नाते इन्होने भागवत* लोगो को एकत्र करके उनका एक समूह-सा बनाया। इस समूह के माध्यम से इन्होने पूजार्चन के समय वेद-पारायण की भाँति 'देवर-नाम'† को गाने की एक नवीन परम्परा का सूत्रपात किया। इनकी अलौकिक शक्ति के बारे मे कर्नाटक-प्रदेश मे अनेक किवदन्तियाँ प्रचलित हैं। एक किवदन्ती के अनुसार, इन्होने अपने निवास-स्थान नृसिहतीर्थ मे गगा को प्रसन्न कर लिया था।

## रचनाएँ

श्रीपादराय का साहित्य इस तथ्य का प्रमाण है कि वह एक श्रेष्ठ

* दक्षिण भारत मे भक्ति-पद गानेवालो, कीर्तन करनेवालो को भागवत् कहते हैं।

† देवर-नाम का अर्थ है—देव (परमात्मा) का नाम। यह कीर्तन के अन्तर्गत आता है।

कवि थे। कीर्तन के रूप में श्रीपादराय ने अनेक पदों की रचना श्रीरंगविट्ठल के नाम से की है। इनके पदों में भक्ति रस की शीतल, मनोमुग्धकारी पावन गंगा प्रवाहित होती है जिसमें भरा हुआ संगीत-कला का कल-रव निनाद रचनाओं के सौन्दर्य को द्विगुणित कर देता है। भक्ति और संगीत से पगे ये पद यद्यपि साहित्यिक दृष्टि से बहुत ऊँची श्रेणी के नहीं कहे जा सकते हैं, तथापि इनमें सरसता, अनुप्रास अलंकार की प्रचुरता, पद लालित्य, मोहक शब्द-चयन व अलंकार प्रयोग पर्याप्त मात्रा में दृष्टिगत होती है। वैयाकरणिक दृष्टि से पदों की भाषा में अशुद्ध देशी शैली की छाप स्पष्ट है।

कृष्ण को भगवान् विष्णु का अवतार मानकर उनकी लीला को श्रीपादराय ने बड़े ही सुन्दर ढंग से छोटे छोटे पदों में गाया है। इनके द्वारा रचे पदों में भ्रमर-गीत, वेणु-गीत तथा गोपी गीत से सम्बन्धित पद कन्नड़ के भक्ति-साहित्य की अपूर्व निधि हैं। कर्नाटक में आज भी हरि कीर्तन करनेवाले दास लोग सर्वप्रथम श्रीपादराय की ही वन्दना इन शब्दों में करते हैं—

नमः श्रीपादराजाय नमस्ते व्यासयोगिने।
नमः पुरन्दरार्याय विजयराजाय ते नमः ॥

कहना न होगा, श्रीपादराय की कन्नड़ रचनाएँ संस्कृत कवि जयदेव कृत 'गीत-गोविन्द', हिन्दी महाकवि सूरदास कृत 'भ्रमरगीत-प्रसंग' तथा नन्ददास कृत 'भँवरगीत' की याद बरबस दिला देती हैं।

## व्यासराय (व्यासतीर्थ)

व्यासराय अपने गुरु श्रीपादराय की ही भाँति विलक्षण बुद्धि-सम्पन्न व्यक्ति थे बल्कि यह कहना अतिशयोक्तिपरक न होगा कि वह श्रीपादराय से भी दो कदम आगे बढ़ चढ़कर थे। अद्भुत व्यक्तित्व संयुक्त व्यासराय राजनीति, ज्ञान और भक्ति के क्षेत्र में सिद्ध हस्त थे। इनका जीवन वृत्तान्त कहीं पृथक् रूप में उपलब्ध नहीं है, जो कुछ भी उपलब्ध होता है, वह स्वयं इन्हीं के द्वारा रचे गये पदों में ही उपलब्ध होता है। विभिन्न पदों के आधार पर व्यासराय का जीवन-परिचय निम्न शब्दों में प्रस्तुत कर सकते हैं—

इनका जन्म मैसूर जिले में कावेरी के किनारे बन्नूर गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम बालण्ण सुमति तथा माता का नाम अक्कण्ण था। बाल्यावस्था में, उपनयन संस्कार होते ही इन्होंने सन्यास ले लिया और श्रीपादराय की छाया में गहन अध्ययन किया। अपने गुरु की ही भाँति आगे

ज्ञान के बल पर यह भी मठाधीश नियुक्त हुये और कालान्तर में विजयनगर-साम्राज्य के नरेशो नरसराज, वीरनरसिंह, कृष्णदेवराय, तिरुमलराय आदि के राजनीतिक तथा कुल गुरु भी हुये । उस युग मे इनका स्थान विजयनगर-दरबार के एक प्रमुख स्तम्भ के रूप मे था । कहते हैं, विजयनगर-काल में पेनुकोण्डा प्रमुख विद्याकेन्द्र था । वहाँ एक विश्वविद्यालय भी था जिसके कुलपति यही थे ।

व्यासराय के दो अन्य नाम व्यासतीर्थ और चन्द्रिकाचार्य भी हैं । इनका काल सन् 1525 ई० के आसपास है ।

## रचनाएँ

व्यासराय द्वारा लिखित साहित्य इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि वह महापण्डित और असाधारण प्रतिभा के धनी थे । इन्होने संस्कृत तथा कन्नड दोनों ही भाषाओं मे साहित्य-रचना की है । संस्कृत में इन्होने तर्कशास्त्र तथा मध्व-मत का प्रतिपादन करने वाले अनेक ग्रन्थ लिखे जिनमे न्यायामृत, तर्कताण्डव, तात्पर्य-चन्द्रिका प्रमुख हैं ।

कन्नड मे इन्होने देवर-नाम-पद तथा भक्ति-रस से सम्बन्धित अनेक पद स्वयं लिखे और दूसरो को भी लिखने की प्रेरणा दी, और इस तरह अपने गुरु द्वारा प्रतिपादित साहित्य की इस नई परम्परा को आगे बढने की दिशा दिखाई । यह इन्ही के प्रयासों का परिणाम था कि श्रीपादराय द्वारा प्रतिपादित भागवत सम्प्रदाय को संस्कृत के आचार्यो द्वारा मान्यता प्राप्त हुई । किन्तु इसका एक दुष्परिणाम यह भी हुआ कि इस सम्प्रदाय की दो शाखाएँ हो गयी । पण्डितो से मान्यता-प्राप्त संस्कृत शाखा व्यासकूट तथा जन सामान्य मे सम्मानित कन्नड के भक्ति गीतो की शाखा दासकूट कहलायी । कालान्तर मे इन दोनो शाखाओ मे परस्पर गहरा विरोध पैदा हो गया था । दास-कवि पुरन्दरदास एवं कनकदास दासकूट शाखा के वे दो महान् जाज्वल्यमान् रत्न हैं जिन्होंने कन्नड साहित्य को अपना अमूल्य प्रकाश प्रदान किया है ।

व्यासराय रचित कीर्त्तनो मे से अधिकाश पद लुप्त हो चुके हैं । वर्तमान में केवल 106 पद ही उपलब्ध होते हैं । इन पदो में गहन भक्ति भावना, विस्तृत संगीत-ज्ञान और जन-दृष्टि सहज ही लक्षित की जा सकती है । अनेक पदो मे सुन्दर रूपक तथा उपमाएँ भी देखी जा सकती हैं ।

## महत्व

सच तो यह है कि व्यासराय ने एक श्रेष्ठ ज्ञानी और साधु पुरुष होने

के नाते अपने व्यक्तित्व का औचित्यपूर्ण उपयोग किया। उन्होने तद्युगीन समाज पर पर्याप्त प्रभाव डाला और शिष्यो की सहायता से दासकूट-साहित्य को एक विशिष्ट महत्व प्राप्त करने मे पूर्ण सहयोग प्रदान किया।

## पुरन्दरदास

व्यासराय के अनेक शिष्यो मे दो व्यक्ति दासकूट-साहित्य-परम्परा के अन्तर्गत सर्वाधिक प्रसिद्ध हुये। ये शिष्य थे—पुरन्दरदास और कनकदास। दास कवियो मे ये दोनों ही अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं, किन्तु महत्व की दृष्टि से पुरन्दरदास का नाम अग्रगण्य है।

सच तो यह है कि दास-कवियो मे सबसे बड़ा भक्त, सगीतज्ञ और सर्वाधिक ख्यातिप्राप्त अगर कोई हुआ है तो वह थे पुरन्दरदास! इनके बारे में प्रचलित जन-मान्यता के अनुसार "इनके जैसा लोकप्रिय, लोकनायक तथा भावनात्मक एकता को लाने वाला महान् सन्त कर्नाटक मे कोई दूसरा नहीं पैदा हुआ।" स्वय पुरन्दरदास के गुरु व्यासराय ने अपनी रचनाओ मे इस तथ्य को स्वीकार किया है कि "सन्तो में, हरिदासो मे अगर कोई सच्चा सन्त या हरिदास है वह केवल पुरन्दरदास ही हैं।"

अत्यन्त सक्षेप मे पुरन्दरदास का जीवन-परिचय इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

विजयनगर-साम्राज्य के अन्तर्गत, वर्तमान पूना जिले मे स्थित, पुरन्दरगढ नामक ग्राम के (जो उस समय एक नगर-रूप मे मान्य था) निवासी वरदप्प नायक नामक एक महाजन के घर सन् 1484 मे पुरन्दरदास का जन्म हुआ था। इनकी माँ का नाम लक्ष्मीबाई था। इनका वास्तविक नाम श्रीनिवास नायक था। एक प्रतिष्ठित तथा धनाढ्य परिवार में जन्म लेने के कारणस्वरूप इनका लालन-पालन बड़े ही लाड़-प्यार से किया गया। किशोरावस्था में ही इनका विवाह सरस्वतीबाई नामक एक सुन्दर, सुशील कन्या से कर दिया गया। विवाहोपरान्त श्रीनिवास नायक ने पिता के ही धन्धे को अपनाया और रत्नो के व्यापार तथा महाजनी के द्वारा सम्पत्ति को बढ़ाना आरम्भ किया। कुछ ही वर्षों मे इनकी सम्पत्ति इतनी अधिक हो गई कि यह विजयनगर-साम्राज्य के सम्मानित व्यक्तियो मे गिने जाने लगे। साथ-साथ कजूसी की प्रवृत्ति भी उत्तरोत्तर बढ़ती चली गई। उसके बाद, एक प्रचलित चमत्कारपूर्ण किंवदन्ती के अनुसार, अचानक एक दिन पत्नी की नाक की कील को लेकर एक चमत्कारिक घटना घटित हो गई और इनके मन मे वैराग्य-भावना घर कर गई। उन्होने अपना सब कुछ दान कर दिया और पत्नी तथा बच्चो के साथ देशाटन को चल दिये। कहते हैं, वैराग्य उत्पन्न

होने पर श्रीनिवास नायक के मुख मे जो पहला गीत निकला, उसका भाव हिन्दी मे इस प्रकार दिया जा सकता है—

"जो कुछ हुआ, अच्छा ही हुआ।
श्रीधर की सेवा-निमित्त साधन मेरी सम्पत्ति हुयी।
शरमाता था बहुत हाथ मे लेने को लाठी,
पत्नी ने आज वह लकुटिया थमायी।
गर्व करता था राजा की तरह
दूसर को गोपालबुद्धि देने में मैं,
और स्वय लजाता था मैं खुद लेते,
आज वही पत्नी ने स्वय मुझे थमाई।
शरमाता था मैं नृपवत्
जब बात कभी चलती तुलसीमाला धारण करने को,
आज वही सरसिजाक्ष पुरन्दर श्रीविट्ठल की—
माला पत्नी ने पहनाई॥"

देशाटन करते हुये अन्त मे यह हम्पी [विजयनगर] पहुँचे। और भक्त-शिरोमणि व्यासराय से हरिदास दीक्षा लेकर 'पुरन्दरविट्ठल' नाम धारण करते हुये दास-मत मे लीन हो गये। सन् 1564 मे इन्होंने इस ससार से महाप्रयाण कर दिया।

## साहित्य

पुरन्दरदास का साहित्य इस तथ्य का प्रमाण है कि उनकी ज्ञान-सम्पदा और काव्य प्रतिभा अद्भुत थी। अपनी प्रखर बुद्धि और तीक्ष्ण दृष्टि का उपयोग करते हुये उन्होंने देशाटन के समय प्रचलित विभिन्न सम्प्रदायो, मत-मतान्तरो, नाना प्रकार के पथो उनके अनुयायियों तथा विभिन्न प्रदेशों के निवासियो को निकट से देखकर उनका सूक्ष्म अध्ययन निश्चित रूप से किया होगा। निश्चय ही उन्होने लोक-जीवन का सूक्ष्म निरीक्षण करते हुये अपनी भक्ति के अनुरूप सन्दर्भों से स्फूर्ति लेकर अपने साहित्य की रचना की होगी। हास्य-रस से भरपूर उनकी रचनाओ का अध्ययन इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि वह एक श्रेष्ठ व्यग्यकार-कवि भी थे।

पुरन्दर विट्ठल के नाम से पुरन्दरदास द्वारा लिखे गये लगभग 475000 कीर्तन-पद बताए जाते हैं। उल्लेखनीय है, आजकल पुरन्दरदास रचित लगभग 1200 पद ही प्राप्त हुये हैं तथा प्रकाशित भी हो चुके हैं। इन पदों मे से भी कितने पद मूल रूप मे पुरन्दरदास द्वारा लिखे गये होगे

और कितने पदो को दूसरो ने लिखकर उनमे पुरन्दरदास का नाम जोड दिया होगा, यह कहना बहुत कठिन है। फिर भी, सत्य चाहे कुछ भी हो, पदो के अध्ययन से यह तथ्य पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि इन पदो में भक्तिरस और वैराग्य की पावन गगा-जमुना की आल्हादकारी अठखेलियाँ दर्शित होती हैं। सम्पूर्ण कर्नाटक मे जन-जन की जीभ पर इनके पद सुशोभित होते सहज ही देखे जा सकते हैं।

पुरन्दरदास रचित कीर्तन-पदो को इन छह भागो मे बाँटकर सरलता-पूर्वक अध्ययन किया जा सकता है—हरि नाम महिमा, हरि-गुण स्मरण महिमा, आत्म निवेदन, कृष्ण-लीला, समाज-विचार तथा नीति बोध। कहना न होगा, इन सभी का अत्यन्त सुन्दर एव कलात्मक प्रतिपादन सन्त कवि पुरन्दरदास ने किया है।

उल्लेखनीय है, कीर्त्तन पदो के अतिरिक्त इन्होने दो अन्य प्रकार के भी कुछ गीत लिखे हैं। ये गीत कर्नाटक मे 'सूलादि' और 'उगाभोग' नाम से प्रसिद्ध है।

इतना ही नही, पुरन्दरदास के साहित्य मे भाव और सगीत का अद्भुत अपूर्व सम्मिश्रण प्राप्त होता है। कर्नाटक-विद्वानो द्वारा एक स्वर से उनके सगीत-शास्त्र विषयक ज्ञान की प्रशसा की गई है। आम जनता मे प्रचलित मान्यता के अनुसार, 'पुरन्दरदास नारद के अवतार थे'। कर्नाटक-सगीत पद्धति के तो वह जनक और आचार्य-आदि पुरुष थे। कर्नाटक-सगीत की जिस पद्धति का प्रवर्त्तन पुरन्दरदास ने किया था, कालान्तर मे सभी प्रसिद्ध कर्नाटक-सगीतज्ञो ने उसी पद्धति का अनुगमन करते हुये उनसे प्रेरणा प्राप्त की। इन सगीतज्ञो मे त्यागराय, मुत्तुस्वामी दीक्षित, क्षेत्रज्ञ, तुकाजी महाराज आदि के नाम विशिष्ट रूप से उल्लिखित किये जा सकते हैं। प्रसिद्ध विद्वान् श्री वेल्लूरु केशवदास के शब्दो मे कह सकते हैं—"पुरन्दरदास ने कीर्त्तन-पद्धति का उद्धार, मतवैरो का परिहार, पचमो [अन्त्यज तथा अछूत] के प्रति सहानुभूति का सक्रिय प्रदर्शन, कर्नाटक भाषा (कन्नड) तथा सगीत शास्त्र का उद्धार किया। 'उन्होने कर्नाटक सगीत का बडा उपकार किया है' सगीत-शास्त्र मे उनके समकक्ष कोई नहीं ठहर सकता '।" संगीत-शास्त्र विषयक् पुरन्दरदास के अतुल्य ज्ञान और योगदान की चर्चा करते हुए मद्रास संगीत अकादमी की पत्रिका, सन् 1942 मे लिखा गया था—

"India, nay the world, has not produced a greater composer than Purandardas."

पुरन्दरदास के समकालीन कुछ कवियो द्वारा लिखित उनकी प्रशस्ति मे जो वर्णन मिलता है उसके अनुसार, 'पुरन्दरदास एक हाथ मे एकतारा, दूसरे मे मँजीरा लेकर, पैरो मे घुंघरू बाँधकर जब नाचते हुये कीर्तन गाना आरम्भ करते थे तो श्रोतागण भाव-विभोर हो झूम उठते थे।' श्री एच॰ जी॰ वेंगेरी के शब्दो मे,

"He is the greatest of the lyric poets of Karnatak, the crest jewel of Daskoota. His songs range from the most homely to the most philosophical His songs are so emotional that anyone can be moved to tears"

## महत्व

उक्त अत्यन्त सक्षिप्त विवेचन से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि पुरन्दरदास कर्नाटक के सर्वाधिक लोकप्रिय, लोकनायक, भावनात्मक एकता के सवाहक महान् सन्त थे। वह एक दार्शनिक की भाँति सूक्ष्म-तत्व-वेत्ता, सवेदनशील कवि की भाँति अत्यन्त भावुक, विशाल हृदयी और अद्भुत कवित्व-गुण-सम्पन्न प्रतिभाशाली कवि, तथा सगीत के क्षेत्र मे कर्नाटक-सगीत पद्धति के प्रणेता थे। सगीत की दुनिया मे उनका नाम अमर है। उनके रचे हुए पद कन्नड-साहित्य की बहुमूल्य निधि हैं। वह सच्चे भक्त थे। उनकी विरक्ति आदर्श थी।

कर्नाटक-साहित्य मे पुरन्दरदास के महत्व का प्रतिपादन करते हुये डा॰ आर॰ डी॰ रानाडे ने लिखा है—

"Between Karnatak and Hindi mystics also, I may point out to you some parallels. To my mind, Purandardas occupies the same position in Kannada Literature as Tulsidas occupies in Hindi They can hardly he surpassed so far as their literary ability and poetic genius are concerned Tulsidas stands on a 'saguna' level on the whole, but Purandardas has advanced further more He began with 'saguna, later equated the 'saguna' with the 'nirguna' and ultimately became a great yogi and a mystic"

## कनकदास

कर्नाटक के दासकूट-साहित्य की दूसरी महान् विभूति हैं, कनकदास। यह भी व्यासराय के शिष्य, पुरन्दरदास के समकालीन और समान प्रतिभा-शाली व्यक्ति थे। इनका अनुमानित काल सोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। कहते हैं, गडरिया—और कुछ लोगों के अनुसार, 'बेड़ा'*—जाति मे पैदा होनेवाले कनकदास का वास्तविक नाम तिम्म या तिम्म नायक! इनके पिता का नाम बीरप्पा तथा माँ का नाम बच्चम्मा था। इनका जन्म-स्थल धारवाड जिले के अन्तर्गत आनेवाला बाड नामक गाँव बताया जाता है। यह स्वस्थ शरीर के प्रतिभाशाली, योग्य व्यक्ति थे। अपनी योग्यता के बल पर ही इन्होंने विजयनगर-साम्राज्य मे दण्डनायक [ सेनापति ] का पद प्राप्त किया था। बाद मे किसी युद्ध मे उन्हें विरक्ति हो गई और घूमते-घामते पुरन्दरदास की तरह यह भी व्यासराय के शिष्य हो गये।

महान् पुरुषों के जीवन को लेकर प्राय अनेक प्रकार की किंवदन्तियाँ जन-साधारण द्वारा उनके महत्व को दर्शाने के लिए, उनके आदर्शों को प्रति-स्थापित करने के उद्देश्य से, तथा प्राय उन्हे चमत्कारिक, दिव्य, अलौकिक पुरुष के रूप में प्रतिष्ठित करने के दृष्टिकोण को लेकर प्रचलित कर दी जाती हैं। कनकदास भी इसका अपवाद न थे। वह एक योग्य, प्रतिभा-शाली सन्त महापुरुष थे। अत उनके विषय में भी किंवदन्तियों, चमत्कारपूर्ण गाथाओं का प्रचलित हो जाना साधारण-सी बात है। यही कारण है, कनकदास के जीवन से सम्बन्धित अनेक प्रकार की धारणायें, अनेक किंवदन्तियाँ जनता मे प्रचलित हैं। एक किंवदन्ती के अनुसार, जो उनके नाम-परिवर्तन तथा जीवन-परिवर्तन से सम्बन्धित है, सन्यास लेने के पहले ही जब तिम्म वैरागी नहीं हुए थे, सहसा एक दिन स्वप्न मे उन्हे ज्ञात हुआ कि अमुक स्थान पर 'कनक'† गडा है। अगले दिन उन्होंने उस स्थान को खोदवाया और वहाँ से प्राप्त सारा सोना गरीबों मे बाँट दिया। तिम्म की इस वैराग्यमूलक उदारता का व्यापक प्रभाव पडा। उन लोगों ने भी वैराग्य ले लिया और सारा सोना वापस करते हुए वे लोग तिम्म के अनुयायी बन गये। उन लोगों ने तिम्म को 'कनकनायक' नाम से पुकारना

---

* 'बेडा' का अर्थ हिन्दी में व्याध या बहेलिया होता है।

† 'कनक' का अर्थ सोना ( स्वर्ण ) होता है। यह सस्कृत भाषा का शब्द है।

शुरू कर दिया। सारा सोना लेकर तिम्म नायक उर्फ कनक नायक कागिनेळे ( एक गाँव ) पहुँचे और वहाँ 'आदिकेशव' का एक भव्य, दर्शनीय मन्दिर निर्मित कराया। इसी बीच उन्हे राज्य की ओर से किसी युद्ध मे जाने की आज्ञा मिली। युद्ध मे यह बुरी तरह पराजित हुये। बस, यहीं से उनमे परिवर्तन हुआ। तलवार फेंककर उन्होने एक हाथ मे एकतारा, दूसरे में ताल सम्भाली और पैरो मे घुंघरू बांध 'आदिकेशव' की मूर्ति के आगे भाव-विभोर हो नाच उठे। उस समय उनके मुख से जो गीत-स्वर नि:सृत हुआ, उसका हिन्दी-भावानुवाद इस प्रकार है—

"ओ हरि,
हूँ कृतज्ञ मैं तेरा कि
तूने मुझको किया है मुक्त
उस सैनिक-जीवन से जिसमे
खड्ग लिए करता मैं कूच
समर-भूमि की ओर करने को युद्ध !
समर-वाद्य को सुनते सुनते
कान नहीं कुछ भी सुन सकते थे
कर मुक्त मुझे उस जीवन से
तूने अद्भुत दान दिया है।
भव-सागर की उन्नत लहरों में —
सागर की अतल गहराइयों मे—
फँसा हुआ, डूबा एक पत्थर था मैं
पाकर तेरा कर-स्पर्श आज बना मोती हूँ मैं।
ओ मेरे 'आदिकेशव' !
सर्वस्व त्यागकर अपना
आया हूँ तेरे चरणों में !"

इस प्रकार 'आदिकेशव' के प्रेम मे लीन कनकदास सच्चे गुरु की खोज मे घूमते हुए अन्तत व्यासराय के पास पहुँचे और उनका शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। सन् 1630 के लगभग, 80 वर्ष की आयु मे उनका देहान्त हो गया।

## साहित्य

दासकूट-साहित्य के अन्तर्गत कनकदास का नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। 'आदिकेशव' इनके आराध्य है तथा यही इनका काव्यगत-

है। इनमे से कुछ तो शब्द चित्रो, पद लालित्य तथा गेय गुण से सर्वथा संयुक्त है। प्रमुखत इन्होने नीतिपरक गीत अधिक लिखे हैं। पुरन्दरदास की भाँति इन्होने भी उपदेशपरक गीत रचे है, परन्तु ऐसे गीतो अथवा कीर्तनो) मे पुरन्दरदास की अपेक्षा विचार-स्वातन्त्र्य बहुत अधिक है। जन-जीवन का गहरा ज्ञान कनकदास के गीतो मे सहज ही द्रष्टव्य हो जाता है। इनके अनेक कीर्तन तत्कालीन समाज की दुरावस्था का बोधन कराते हैं। ऐसे गीतो मे कवि की कटुता दर्शनीय है। सामाजिक दोषो की इनने तीव्र स्वरों मे कटु निन्दा की है।

महत्त्व—

सारांशत कनकदास की रचनायें उनकी अद्भुत प्रतिभा के दिग्दर्शन कराती है जिनका आस्वादन करके पाठक मुग्ध हो उठता है। इनकी वाणी मे कन्नड़ की देशी शैली का माधुर्य का सार अन्तर्निहित है। यह जहाँ एक ओर महान् भक्त थे, वहाँ महाकवि भी। इनके हृदय की अतल गहराइयो से नि सृत भक्ति रस-पूर्ण कीर्तन कन्नड साहित्य का अनूप शृंगार है, यह कहना अतिशयोक्तिपरक नही है।

वादिराजतीर्थ

यह सोद मठ के महन्त और व्यासराय के समकालीन थे। यह उच्च कोटि के प्रकाण्ड विद्वान थे तथा दासकूट एव व्यासकूट दोनों ही म इनकी गणना की जाती थी। इन्होंने संस्कृत तथा कन्नड दोनों ही भाषाओं मे प्रचुर साहित्य-रचना की थी।

संस्कृत मे वादिराजतीर्थ द्वारा लिखित ग्रन्थो की सख्या 60 के लग-भग है। लगभग इतने ही ग्रन्थो की रचना वादिराजतीर्थ ने कन्नड भाषा मे की थी। इनमे से प्रमुख ग्रंथ है—वैकुण्ठ वर्णन, लक्ष्मी शोभाने, स्वप्न-पद, कीचक वध, केशव नाम, गुण्ड-क्रिया, हयवदनमुद्रिका। 'हयवदन-मुद्रिका' नामक ग्रन्थ मे वादिराजतीर्थ के कुछ कीर्तनों, सुलादि तथा उगा-भोग आदि का सकलन किया गया है। उल्लेखनीय है, वादिराजतीर्थ की समस्त कन्नड-रचनाओं मे साहित्यिक तथा तार्किक, दोनो ही दृष्टिकोणो से माध्व-सम्प्रदाय का प्रतिपादन किया गया है। इस दृष्टि से वादिराजतीर्थ रचित समस्त साहित्य 'शास्त्रीय साहित्य' कहा जा सकता है।

वैकुण्ठदास—

यह व्यासराय का शिष्य था और वादिराजतीर्थ का समकालीन कवि था। इसने अनेक कीर्तनो की रचना की थी।

## विजयदास

दासकूट साहित्य-परम्परा के अन्तर्गत वैकुण्ठदास के बाद काफी समय तक कोई बड़ा कवि नही सामने आया, दूसरे शब्दो मे इसके बाद बहुत समय तक यह परम्परा गतिहीन रही। बाद मे 18वीं शताब्दी के आरम्भ मे इस परम्परा को आगे बढ़ाते हुए कई दास कवि सामने आये। इनमें मुख्य थे—विजयदास, जगन्नाथदास, प्रसन्नवेंकटदास, महिपतिदास, गोपालदास, इत्यादि।

विजयदास का जीवनकाल लगभग 1687 से 1755 ई० मान्य है। इनका वास्तविक नाम दासप्प था तथा यह रायचूर जिले के अन्तर्गत मानवी तालुक मे तुंगभद्रा नदी के तट पर बसे हुये चीकलपरवी नामक ग्राम में पैदा हुये थे। इनके माता-पिता का नाम क्रमश कूसम्मा तथा श्रीनिवासप्प था।

कहते हैं, भयानक गरीबी के कारण इन्हें दर-दर भटकना पड़ता था। तब एक दिन घर से भागकर यह काशी जा पहुँचे। काशी मे मणिकर्णिका घाट पर इन्हें ज्ञान-दर्शन हुआ और यह 'विजय-विट्ठल' के प्रेम मे विह्वल होकर विजयदास बन गये। काशी से यह वापस अपने गाँव गये और वहीं रहकर विरक्ति भाव से जन-सेवा मे लीन हो गये।

विजयदास का नाम कन्नड की विष्णु-भक्ति-परम्परा मे अत्युच्च माना जाता था। इनके लिखे 'सुळादि' काफी अधिक संख्या मे हैं। इन 'सुळादियों' मे अर्थगाम्भीर्य, नीति-गाम्भीर्य तथा तत्व-विश्लेषण किया गया है। इन्होंने 'विजय विट्ठल' के नाम से अनेक पदो की रचना की है जिनमें अनुभाव तथा भक्ति रस की आह्लादकारी धारा प्रवाहित हुयी है। इनके अनेक पदो मे 95 से लेकर 108 पंक्तियाँ तक देखी जा सकती हैं। कुछ लोगो के कथना-नुसार, इन्होंने 'चन्द्रायुध' नामक एक ग्रन्थ रचा था, परन्तु यह केवल अनुमान मात्र है।

## जगन्नाथदास

यह विजयदास के शिष्य थे तथा चीकलपरवी ग्राम से कुछ ही दूर पर स्थित ब्यागट्टि गाँव के निवासी थे। दासकूट-परम्परा के अन्तर्गत पुरन्दर-दास और कनकदास के बाद इन्हें सबसे उज्ज्वल नक्षत्र माना जाता है। संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित होते हुये भी इनमे कन्नड भाषा के प्रति गहरी श्रद्धा, सम्प्रदाय-निष्ठा तथा विशाल हृदयता के गुण विद्यमान थे।

अनेक कीर्तन-पदो के अलावा इन्होंने 'तत्वसार' और 'हरिकथामृत-सार' नामक दो ग्रन्थो की भी रचना की थी 'तत्वसार' के अन्तर्गत 27 वचन

हैं जिनके द्वारा विष्णु-स्तुति करते हुये मन्त्र का स्वरूप समझाया गया है। 'हरिकथामृतसार' विशुद्ध काव्य ग्रन्थ नहीं है, अपितु इसे 'तत्व प्रतिपादक-काव्य' की संज्ञा दी जा सकती है। इसके अन्तर्गत माध्व-मत के विभिन्न तत्वों को साहित्यिकता का जामा पहनाते हुए इस ढंग से प्रस्तुत किया गया है कि एक साधारण बौद्धिक क्षमता वाला व्यक्ति भी उन बातों को सरलता से हृदयंगम कर सकता है। इन दो ग्रन्थों के अतिरिक्त कुछ लोगों के कथनानुसार जगन्नाथदास ने 'प्रस्थानत्रयी' नाम से श्रीमद्भागवतगीता, ब्रह्मसूत्र तथा दशोपनिषद् का सम्मिलित रूप से कन्नड-भाषा में अनुवाद भी किया था। परन्तु इस कथन की सत्यता संदिग्ध है। कारण, कि यह ग्रन्थ अब उपलब्ध नहीं है। इनके द्वारा रचित कीर्तन पदों की एक विशेषता यह है कि हरि-स्तुति, गुरु-स्तुति तथा आध्यात्मिक अनुभवों को उनमें विशेष स्थान प्राप्त हुआ है। श्री गुरुनाथ जोशी के मतानुसार, जगन्नाथदास की एक अन्य रचना 'तत्व सुव्वालि' भी है। उल्लेखनीय है, यह रचना अभी अप्रामाणिक है।

दास-साहित्य-परम्परा के अन्तर्गत जगन्नाथदास का महत्व स्पष्ट करते हुये डा०आर०एस० मुगलि का मत है कि "वह विशाल हृदयवाले रसयोगियों में से एक थे।" 'कर्नाटक भक्ति-विजय' नामक पुस्तक में एक स्थल पर इनके बारे में उस ग्रन्थ के लेखक ने लिखा है—"वह (जगन्नाथदास जी) भागवत-धर्म में नवचेतना के प्राण फूँकनेवाले महापुरुष थे, षट्शास्त्र प्रवीण थे, भयंकर प्रतिवादी और अग्रपूजार्ह थे। उन्हें पेशवाओं और गढवाली रियासतों की विद्वत्-सभाओं में ख्याति प्राप्त थी। वह राजसम्मानित महापुरुष थे। मैसूर-नरेश पूर्णय्या ने इनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर इन्हें एक पालकी भी दी थी जो आज भी मानवी स्थित इन के मन्दिर में देखी जा सकती है।"

दास-साहित्य के अन्य प्रणेताओं में प्रसन्नवेंकटदास ने कीर्तनों के अलावा भागवत के दशम् स्कंध का कन्नड रूपान्तर भी किया है।

महिपतिदास द्वारा तत्व-प्रतिपादक तथा भक्ति सम्बन्धी अनेक पद लिखे थे। यह अभी तक अप्रकाशित ही हैं।

इसी प्रकार गोपालदास भी भक्ति-पदों का रचयिता तथा गायक था।

## दास-साहित्य का मूल्यांकन

उपर्विवेचित दासकूट-परम्परा के प्रमुख दास-कवियों अथवा दास-साहित्य के प्रणेताओं द्वारा रचित समग्र साहित्य का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करने के उपरान्त हम निम्न निष्कर्ष पर पहुँचते हैं—

1. दास साहित्य प्रमुखत तीन विभिन्न स्वरूपों मे लिखा गया है—कीर्तन, सुळादि व उगाभोग।

2. कीर्तन उस गेय गीत को कहा जाता था जिसमे [अ] सगीतात्मकता होती थी, [आ] आरम्भ मे पल्लवी 'अर्थात् ध्रुवपद', [इ] अनुपल्लवी तथा [ई] अन्त मे वचन होते हैं, [उ] गीत के अन्तिम वचन—अर्थात् 'पक्ति'—मे कवि का नाम अथवा उपनाम अकित होता है, [ऊ] गीत का राग तालवद्ध होना अत्यावश्यक है। दूसरे, इन गीतो मे 'मात्राओं' की अपेक्षा 'लय' को अधिक प्रधानता दी जाती थी। इन गीतो को कीर्तन के अलावा 'पद' कहकर भी पुकार सकते हैं।

3. कुछ ऐसे भी कीर्तन मिलते हैं जो षट्पदी, सागत्य और चौपदी नामक छदो की सीमा मे आवद्ध हो गये हैं।

4 'सुळादि' का आरम्भ श्रीपतिराय द्वारा हुआ था। सगीत के क्षेत्र मे सात प्रकार की 'ताल' होती हैं। इनमे से किसी भी ताल के उपयोग द्वारा गाये जाने योग्य छोटे प्रवन्ध-काव्य को 'सुळादि' कहते हैं। सुलादि के अन्तर्गत पल्लवी का उपयोग नही होता, परन्तु इसमे लय होती है। दूसरे शब्दो मे कह सकते हैं कि सुळादि वाद्य शैली मे लिखे गये वचन और कीर्तन के वीच की शैली है।

5 उगाभोग उस गेय काव्य-रूप को कहते हैं जिसे किसी भी राग और ताल के सयोग से गाया जा सके। स्पष्टत. सुलादि लय-प्रधान और उगाभोग स्वर-प्रधान होता है।

6 दास-साहित्य की सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि इसके प्रणेता कवियो ने साहित्य और सगीत का सुन्दर समन्वय कर दिया है। साहित्य और सगीत के इस अटूट समन्वय का उपयोग करते हुए पुरन्दरदास तथा अन्य दासो ने अपनी प्रतिभा के बल पर अनेको रसानुकूल ताल-भेद से युक्त प्रबन्ध काव्यों की रचना की है।

7. उल्लेखनीय है, कीर्तन यद्यपि दास-साहित्य की अपनी निजी विशेषता है, परन्तु कर्नाटक-साहित्य के लिए यह कोई नई वस्तु नही है। दासकूट-साहित्य के पहले भी कन्नड भाषा के अन्तर्गत गीत और 'बाजने गब्ब'* हुआ करते थे। तदुपरात कुछ शिव शरणों ने पद-रचना करके उन्हे गाया भी था किन्तु वही पद दासकूट-साहित्य परम्परा मे आकर हरिदासो के मुख से निकलकर हरि-भक्तिपरक, गीत स्तुतिपरक अथवा कीर्तन बन गये और सगीत-क्षेत्र में उन्हे पूर्ण मान्यता भी प्राप्त हो गयी।

*'बाजने गब्ब'—अर्थात् वाद्य यन्त्रों की सहायता से गाये जानेवाले काव्य।

8. भाषा की दृष्टि से दासकूट-साहित्य के अन्तर्गत जन-प्रचलित कन्नड़ भाषा का प्रयोग किया गया है। फलत जनभाषा मे प्रचलित उन शब्द-रूपो का प्रयोग स्वत हो गया है जो मध्ययुगीन कन्नड के व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध और साहित्यिक कन्नड मे अग्राह्य है। नयी कन्नड की दृष्टि से भी अशुद्ध और अग्राह्य शब्द-रूपो का बाहुल्य दास-साहित्य के अन्तर्गत प्राप्त होता है। परिणामतः अनेक स्थलो पर तो इस शैली की प्रचुरता के कारण प्रचलित देशी शब्दो अथवा ग्रामीण शब्दावली के बहुल उपयोग ने सन्दर्भजन्य गम्भीरता मे भी कमी उत्पन्न कर दी है। हाँ, हास्य तथा व्यग्य की दृष्टि से ये उपयोग बहुत अच्छे बन पडे हैं, इनकी सार्थकता यही पर प्रमाणित होती है।

सक्षेप मे कह सकते हैं, "विषय, रूप और भाषा की दृष्टि से विशेष काति-युक्त दासकूट-साहित्य का कर्नाटक-साहित्य में चिरस्थायी महत्व है" जिसे किसी भी प्रकार नकारा नही जा सकता। इसके महत्व को श्री सिद्धगोपाल तीर्थ काव्यतीथ द्वारा उद्धृत शब्दों मे इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है।

'दास-साहित्य कन्नड़-साहित्य की नवनिधियों में से एक है। जैसे गगा हिमालय से नीचे मैदान में उतरकर सारे देश को उपजाऊ बनाती है, वैसे ही लिंगायत शरणो और भागवत दासों का साहित्य चित्त की उच्चता से उत्पन्न होकर, जन-साधारण मे फैलकर उसकी सस्कृति को उन्नति प्रदान करनेवाला प्रभावशाली साधन बना। अशिक्षित कन्नड-भाषी जनता पम्प आदि प्रौढ़ कवियों को भले न जानती हो, किन्तु उनमें ऐसा कोई विरला ही होगा जो शिव-शरणों और दासो के नीति वचनो और मधुर गीतों से अपरिचित हो। यह तो ठीक है कि उसके (दास-साहित्य के) कुछ भागो मे एक मत-विशेष का प्रतिपादन है, और कही-कही तो उस मत की सर्वश्रेष्ठता भी प्रमाणित की गई है। परन्तु साथ ही साथ इस बात को भी ध्यान मे रखना चाहिए कि ये (गीत—अर्थात् दास-साहित्य की रचनाएँ ऐसे लोगो द्वारा लिखे गये हैं, जो भागवत धम और भक्ति तत्व को अपने जीवन मे आत्मसात् करके आचरण द्वारा प्रदर्शित करते थे—केवल उनका शाब्दिक प्रतिपादन ही नहीं करते थे। इसके अलावा मतातीत नीति, धर्म और मानव-मूल्यो का भी दासो को पर्याप्त ज्ञान था, और वे उनकी महत्ता भी बतलाते थे। उनमे तगदिली न थी, फिर भी इससे इन्कार नही किया जा सकता कि यत्र-तत्र परमत-दूषण भी पाया जाता है। इसका अर्थ यही है कि समन्वय-वादिता आचरण मे बहुत कठिन है। मत साहित्य वाले ग्रथो को लोग

उस मत का ही ग्रथ समझते थे, किन्तु दास-साहित्य के ऊपर यह बात सपूर्णत' लागू नही होती और साम्प्रदायिक विचारो को छोडकर सारी कन्नड जनता उसके मतातीत और साहित्यिक भाग को अपना समझती थी • • ।"

दूसरे शब्दो मे कह सकते हैं, दास-साहित्य कन्नड़भाषी साधारण जनता के बहुत अधिक निकट पहुँच गया था। सांस्कृतिक उन्नति में दास-साहित्य का अभूलनीय योगदान रहा है। कारण कि वह निरन्तर जन-सामान्य के हृदयो पर गहरा प्रभाव डालता रहा है।

## [3] ओडेयर कालीन ब्राह्मण-साहित्य

मैसूर का वर्तमान राजघराना 'ओडेयर' अथवा 'ओडेयर राजवश' कहलाता है। इस वश के राज्याश्रय मे अनेक ब्राह्मण साहित्यकारों को प्रश्रय प्राप्त हुआ। फलत ओडेयर राजाओ के काल मे प्रचुर मात्रा मे ब्राह्मण-लेखको द्वारा साहित्य रचना की गई। उल्लेखनीय है, इस वश-काल मे कन्नड-साहित्य को ब्राह्मणो द्वारा 'विशुद्ध ऐतिहासिक काव्य ग्रथो' का एक सर्वथा नव्य उपहार प्राप्त हुआ। इस काल मे इतने अधिक ऐतिहासिक काव्य लिखे गये हैं कि बड़ी सरलता से इस विशेष समय को 'ऐतिहासिक काव्य-रचना-काल' के नाम से पुकारा जा सकता है। इसी सन्दर्भ मे यह तथ्य स्मरणीय है कि ओडेयर-काल के पूर्व कन्नड मे जितना भी पम्प आदि कवियो द्वारा अपने आश्रयदाता नरेशो की प्रशसा मे साहित्य लिखा गया था, वह सब ऐतिहासिकता से युक्त तो है, परन्तु उनकी ऐतिहासिकता पर्दे के पीछे ही छिपी रह गयी है—अर्थात् पूर्ववर्ती कन्नड़-कवियो द्वारा लिखा गया ऐतिहासिक-काव्य-साहित्य 'ध्वन्यात्मक' है, न कि विशुद्ध ऐतिहासिक। ओडेयर-कालीन साहित्य ध्वन्यात्मक नहीं, विशुद्ध ऐतिहासिक है। यद्यपि इस काल के पूर्व दो-एक अपवाद भी मिलते हैं जिन्हे नगण्य माना जा सकता है। अपवादमूलक ये दो ग्रन्थ हैं—नुजुण्ड रचित 'कुमार राम-चरित' (16वी शताब्दी) तथा गोविन्द वैद्य द्वारा लिखित 'कण्ठोरवनरसराज-विजय'। इनमे से प्रथम का आलोचनात्मक परिचय अगले अध्याय के अन्तर्गत दिया जायेगा। प्रस्तुत उपशीर्षक के अन्तर्गत केवल ओडेयर राजाओ के काल मे ब्राह्मणो द्वारा रचित ग्रन्थो की ही विवेचना अभीष्ट है।

### गोविन्द वैद्य

ऐतिहासिक-काव्य-परम्परा के आरम्भ होने से पूर्व ही एक ग्रन्थ सामने आता है—'कण्ठोरवनरसराज-विजय'। इस ग्रन्थ का लेखक वास्तव मे कौन था, यह विवादग्रस्त प्रश्न है। कहा जाता है, इस ग्रथ का प्रणेता गोविन्द वैद्य

था और इस ग्रंथ को राजदरबार मे पढकर सुनानेवाला व्यक्ति था, भारतीनज। किन्तु इस बारे मे, गोविन्द वैद्य को प्रस्तुत आलोच्य ग्रथ का प्रणेता मानते हुए भी, कोई निर्णयात्मक मत दे पाना बहुत कठिन है। इस ग्रथ का रचना-काल 17 वी शताब्दी के मध्य का काल है।

कण्ठोरवनरसराज विजय—इस ऐतिहासिक-काव्य का नायक है, ओडेयर वशी नरेश कण्ठोरवनरसराज, जिसका राज्यकाल सन् 1638-1659 ई० है। कवि ने अपने इस ग्रन्थ मे कण्ठोरवनरसराज के वश, राज्य, राजधानी तथा उसके सम्पूर्ण जीवन को विस्तृत रूप मे चित्रित किया है। ग्रथ की 9वी तथा 10वी सन्धियो मे मदन मोहिनी की कथा वर्णित हुयी है जिसका नायक के चरित्र-चित्रण के साथ कोई भी सीधा सम्बन्ध नही दिखाई देता है। ऐसा प्रतीत होता है, सम्भवत शृगार रस का चित्रण करने के उद्देश्य से प्रेरित होकर ही कवि ने इस कथा को काव्य मे स्थान दिया है, अन्यथा यह कथा निरुद्देश्यमूलक ही है।

प्रस्तुत काव्य की दूसरी सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि इस ग्रन्थ मे कथाश बिल्कुल नहीं है।

कवि ने तद्युगीन जन-जीवन तथा राजकीय जीवन का ऐसा सजीव चित्रण किया है, जो वास्तव मे प्रशसनीय है। जीवन के यथार्थ चित्रो को उसने सजीवता प्रदान करते हुए यथावत् चित्रित कर दिया है जिसके सर्वोत्तम उदाहरण रणदुल्लाखान [ रणधूलि खान ] द्वारा कर्नाटक पर आक्रमण, विजयी होने पर उसके द्वारा की गई बरबादी, उसकी क्रूरता का आतक तथा अन्ततोगत्वा कण्ठोरवनरसराज द्वारा उसकी पराजय आदि से सम्बन्धित चित्र हैं।

इस ग्रन्थ के महत्व का प्रतिपादन करने हेतु श्री सिद्धगोपाल काव्य-तीर्थ द्वारा उल्लिखित प्रस्तुत मत विचारणीय है 'ऐतिहासिक ग्रन्थ और काव्य दोनों दृष्टियों से यह पुस्तक उत्तम है, इसमे मध्यम काव्य का गुण है। कवि की उत्तम कल्पना-शक्ति, निरीक्षण-शक्ति और निरूपण सामर्थ्य के अलावा उसकी शैली भी प्रवाही और सरल है। इसको कन्नड के साहित्य ग्रंथो में मान्यता प्राप्त है।"

हम इस ग्रथ को कन्नड़ की चरण काव्य अथवा वीर-काव्य अथवा रासा-काव्य-परम्परा के अन्तर्गत लिखित दूसरा महत्वपूर्ण ग्रन्थ कह सकते हैं। इस परम्परा का प्रथम ग्रन्थ नुजुण्ड कृत 'कुमार राम-चरित' है जिसकी विवेचना अगले अध्याय मे की जायेगी।

## मैसूर-नरेश चिक्कदेवराज

चिक्कदेवराज ओडेयर वशी था। यह मैसूर का राजा था। इसका

राज्यकाल सन् 1673-1704 ई० था। इसके दरबार मे कन्नड के अनेक विद्वानो को प्रश्रय प्राप्त था। इसके आश्रय मे एक बार फिर से चम्पू तथा गद्य-काव्यो की प्राचीन मिश्रित मार्ग शैली का उदय हुआ, साथ ही साथ वैष्णव मत के अनेक भक्ति प्रधान ग्रथो की रचना कन्नड मे की गई। साहित्य और कला के प्रति उसकी गहरी रुझान का सुपरिणाम यह हुआ कि उसके 31 वर्षों के राज्यकाल मे कला और साहित्य की अपरिमित उन्नति हुयी।

ओडेयर वशी चिक्कदेवराज स्वय भी एक अच्छा विद्वान तथा साहित्य कार था। 'चिक्कदेवराज विन्नप', 'गीतगोपाल', शेषधर्म', 'भागवत' तथा 'भारत' उसके द्वारा रचित कृतियाँ बताई जाती हैं। इनमे से 'शेषधर्म', 'भागवत' तथा 'भारत' टीकामूलक ग्रन्थ है। प्रथम दोनो ग्रथो—'चिक्कदेवराजविन्नप' तथा 'गीतगोपाल'—का रचयिता सन्देहास्पद है। अनुमान है, ये दोनो ग्रथ चिक्कदेवराज के मन्त्री तिरुमलार्य द्वारा लिखे गये होगे। क्योकि इन दोनो ही ग्रथो मे चिक्कदेवराज की प्रशस्ति गाई गई है, अत. ये ग्रन्थ स्वय चिक्कदेवराज द्वारा लिखे गये हैं—यह नितान्त अविश्वसनीय प्रतीत होता है, कारण, कि कोई भी लेखक न तो कभी आत्म-स्तुति कर सकता है और न ही अपनी प्रशस्ति स्वय गा सकता है। अतएव निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इन दोनो ग्रथो का रचयिता चिक्कदेवराज न होकर या तो तिरुमलार्य है, या कोई अन्य। दूसरे, गीत-गोपाल' नामक ग्रथ मे तो स्पष्ट लिखा हुआ है कि 'मैं तिरुमलार्य की दिव्य रचना को गाऊँगा।" 'गीत-गोपाल' का यह वाक्य इन ग्रन्थो के लेखक सम्बन्धी सारे सन्देह का निवारण करने मे पूर्ण समर्थ है।

उल्लेखनीय है, 'गीत-गोपाल' सस्कृत कवि जयदेव कृत 'गीत-गोविन्द' के अनुकरण पर लिखी गई कन्नड रचना है जिसके अन्तर्गत कृष्ण की भक्ति-भावना पर आधारित गीत लिखे गये है।

'चिक्कदेवराज विन्नप' भक्ति-प्रधान शास्त्रपरक ग्रन्थ हैं। इसमे कृष्ण के प्रति भक्ति-भावना से प्रेरित होकर लिखे गये 30 विन्नप (या विनय पद) सकलित हैं जिनके माध्यम से रामानुजी वैष्णव मत के सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया गया है।

उपर्युक्त विवेचन से यह लगभग प्रमाणित हो जाता है कि चिक्कदेवराज कोई मौलिक साहित्यकार न होकर मात्र एक टीकाकार ही था। परन्तु इस तथ्य के प्रमाणित होने या न होने से कन्नड-साहित्य मे चिक्कदेवराज के महत्व पर कोई प्रभाव नही पडता है। सच तो यह है कि कन्नड़-साहित्य

के इतिहास मे चिक्कदेवराज का नाम सुनहरे अक्षरो मे अंकित है। उसके इस महत्व के मूल में उसका ग्रन्थकार अथवा उसकी साहित्यिक प्रतिभा नही छिपी हुयी है बल्कि उसकी वह महान् प्रवृत्ति छिपी हुयी है जिससे प्रेरित होकर उसने युग के महान् लेखको तथा लेखिकाओ—तिरुमलार्य, सिंगरार्य, चिक्कुपाध्याय, शृंगारम्मा, होन्नम्मा, वेणुगोपालवर प्रसाद, तिम्म, मल्लिकार्जुन, चिदानन्द, मल्लरस आदि—को अपने दरबार मे प्रश्रय दिया हुआ था। इन कन्नड-साहित्यकारों ने कन्नड-साहित्य को प्रशसनीय योगदान दिया है जिसकी विवेचना अपेक्षित होने के कारण नीचे दी जा रही है।

## तिरुमलार्य

यह ओडेयर वशी मैसूर-नरेश चिक्कदेवराज का मन्त्री होने के साथ-साथ सस्कृत और कन्नड दोनो भाषाओ का उद्भट विद्वान तथा कुशल साहित्यकार था। समान रूप से इसने दोनो ही भाषाओ मे साहित्य-रचना की थी।

### साहित्य

तिरुमलार्य द्वारा रचित छह कन्नड-ग्रन्थ हैं, जिनमे से दो ग्रन्थो की विवेचना ऊपर की जा चुकी है। ये दोनो ग्रन्थ हैं—'चिक्कदेवराज विन्नप' तथा 'गीत गोपाल'। इनके अलावा तिरुमलार्य की 4 अन्य कृतियाँ ये हैं—'चिक्कदेवराज-विजय', चिक्कदेवराज-वशावली', 'चिक्कदेवराज-शतक' तथा अप्रतिम वीर चरित'। ये चारो ही ग्रन्थ तिरुमलार्य के आश्रयदाता से सम्बन्धित हैं जिनमे से प्रथम तीनो का तो स्पष्टीकरण उनके शीर्षक से ही हो जाता है परन्तु अन्तिम ग्रन्थ का लक्ष्य भी वही चिक्कदेवराज है।

चिक्कदेवराज-विजय—यह ग्रन्थ सस्कृत तथा कन्नड भाषाओ के सम्मिलन से रचा गया एक प्रौढ़ चम्पू-ग्रन्थ है। ग्रन्थ मे वर्णन-बाहुल्य है। इस ग्रन्थ मे कवि ने महाराज चिक्कदेवराज और रणदुल्ला खान के युद्ध, खान की पराजय तथा चिक्कदेवराज की अन्य विजयो का यथार्थपरक चित्रण किया है।

चिक्कदेवराज-वशावली—अपने इस दूसरे ग्रन्थ में तिरुमलार्य ने ओडेयर वश के प्रथम नरेश राजनृप, जिनका एक अन्य नाम 'राज ओडेयर' भी था, से लेकर चिक्कदेवराज तक के समस्त मैसूर-नरेशों की कहानी को अत्यन्त रोचक ढग से प्रस्तुत किया है। स्मरणीय है, राज ओडेयर वर्तमान मैसूर-राजवश का सस्थापक नहीं था। यह राजवश ओडेयर से भी कई पीढ़ी

पहले आरम्भ हुआ था, परन्तु उस वश की राज्य-रूप मे प्रतिष्ठा करने वाला ओडेयर ही था। राज ओडेयर के पूर्वज छोटे-छोटे सामन्त मात्र थे। इस प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थ उस ओडेयर राजवश के समग्र इतिहास को प्रकाश मे लाता है। यह गद्य ग्रन्थ है। परन्तु इतना होने पर भी इसे हम विशुद्ध रीति से लिखा गया ऐतिहासिक-ग्रन्थ नही कह सकते। सच तो यह है कि ऐतिहासिक तथ्यो को वर्णनात्मकता से युक्त करने के उद्देश्य ऐतिहासिक सत्यता के साथ साथ कल्पनात्मकता का भी प्रचुर मात्रा मे सहारा लिया गया है। इस प्रकार यह ग्रन्थ वास्तव मे शुद्धत गद्य ग्रन्थ भी नही रह गया है। वस्तुत इसकी शैली गद्य-काव्य जैसी है। इस कारण यह कहा जा सकता है कि यह ग्रन्थ एक प्रौढ़ गद्य काव्य है।

इस ग्रन्थ के सन्दर्भ मे एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि 'चिक्कदेवराज-वशावली' की जो प्रति प्राप्त हुयी है, वह पूर्ण नही है। चिक्कदेवराज की विजय यात्रा के प्रसग को तो जाने दीजिए, इस यात्रा के वर्णन का अन्तिम वाक्य भी अधूरा है।

ऊपर इस ग्रन्थ की ऐतिहासिक तथ्यता और कल्पनात्मकता के सम्मिश्रण की चर्चा शैली की दृष्टि से की गई है। यहाँ यह बता देना अपेक्षित है कि ग्रन्थ के कथानक मे इतिहास-तत्व और कल्पना तत्व का मिश्रण किस सीमा तक हुआ है। ग्रन्थ का सूक्ष्म अध्ययन इस तथ्य को पूर्णत स्पष्टीकृत कर देता है कि कथानक मे नियोजित जितनी भी घटनाओ का सम्बन्ध प्राचीनकाल से—अर्थात् चिक्कदेवराज के पूर्वजो से सम्बन्धित वर्णनमूलक घटनाएँ—मिलता है, उन सभी मे कल्पना-तत्व की अधिकता है और ऐतिहासिक सत्यता की न्यूनता। यह प्रमाणित तथ्य इस तथ्यका स्पष्ट सकेत है कि पूर्व की घटनाओ को लेखक ने सुनने के बाद उन्हे अपनी कल्पना का सहारा दिया है। परन्तु जैसे जैसे प्राचीनकालीन पूर्वज सम्बन्धी ये घटनायें समाप्त होती जाती है और घटना-क्रम वर्तमान की ओर बढता हुआ चिक्कदेवराज के काल मे आता जाता है, वैसे-वैसे घटनाओ मे इतिहास-तत्व अधिक होता जाता है—अर्थात् घटनात्मक सत्यता बढ़ती जाती है, कल्पना-तत्व न्यून होता जाता है और साथ ही वर्णनो मे अत्यधिक विस्तार भी आता जाता है।

निष्कर्ष रूप मे कह सकते हैं कि "चिक्कदेवराज-वशावली' यद्यपि ऐतिहासिक-काव्य के दृष्टिकोण से अनेक दोषों से युक्त है, तथापि इसकी गद्य-शैली कन्नड़-साहित्य मे अपूर्व है। ग्रन्थ में आये हुए वर्णन तथा प्रयुक्त उपमायें अद्भुत एव प्रशसनीय हैं। सत्यत यह ग्रन्थ कन्नड़ साहित्य रूपी रमणी के गले में पड़े हुये एक ऐसे

अमूल्य हार की भाँति है जिसमे ऐतिहासिकता, मतवादिता और साहित्यिकता के तीन बेशकीमती हीरे जड़े हुये हैं।"

चिक्कदेवराज-शतक—अपने आश्रयदाता नरेश चिक्कदेवराज की प्रशंसा करते हुये तिरुमलार्य ने सौ से कुछ अधिक छन्दो वाले इस ग्रन्थ की रचना की थी। इसमे चिक्कदेवराज के व्यक्तित्व व चरित्रमूलक गुणो की प्रशस्ति गाई गई है।

अप्रतिम वीर-चरित—तिरुमलार्य द्वारा लिखित यह अन्तिम ग्रंथ है। इस ग्रंथ की रचना मुख्य रूप मे प्रसिद्ध संस्कृत ग्रन्थ 'कुवलयानन्द'* के आधार पर की गई है। यह शास्त्रपरक् अलंकार-ग्रन्थ है। विभिन्न प्रकार के अलंकारों की परिभाषायें देते हुए उनके उदाहरण-रूप में चिक्कदेवराज के गुणों तथा उनके जीवन-चरित्र को कवितावद्ध किया गया है। इस ग्रन्थ की तुलना हिन्दी के प्रसिद्ध रीतिकालीन-वीर काव्य-परम्परा के सर्वप्रमुख गायक भूषण कृत 'शिवराज-भूषण' से सरलतापूर्वक की जा सकती है। परन्तु तिरुमलार्य की इस रचना का महत्व इस कारण नही है कि यह शास्त्रीय पद्धति से लिखी गई अलंकार-शास्त्रपरक् रचना है, अपितु ग्रंथ का महत्व इस कारण है कि अलंकारो के उदाहरण रूप दिये गये लक्ष्य पद्य तथा इन पद्यों मे अन्तर्निहित ऐतिहासिकता मैसूर-नरेश चिक्कदेवराज के वास्तविक जीवन और कृतित्व से सम्बन्धित है। कहीं कहीं पर ऐसा भी देखने को मिलता है कि चिक्कदेवराज को लक्ष्य बनाकर लिखे गये ये पद्य विषय-जन्य संकुचन के कारण सटीकतापूर्वक उपयुक्त उदाहरण नहीं प्रस्तुत कर पाये हैं। इस ग्रन्थ का यही दोष है।

## चिकुपाध्याय

यह भी चिक्कदेवराज का मन्त्री था और तिरुमलार्य की भाँति ही प्रकाण्ड पण्डित तथा साहित्यकार था।

---

* 'कुवलयानन्द' संस्कृत के सुप्रसिद्ध आचार्य अप्पय दीक्षित द्वारा रचित ख्याति-प्राप्त तीन ग्रन्थों मे से एक ग्रन्थ है। इनके दो अन्य ग्रन्थ 'चित्र मीमांसा' तथा 'वृत्तिवार्तिक' हैं। ये तीनों ही काव्य-शास्त्र विषयक् रीति-ग्रन्थ हैं। 'कुवलयानन्द' अलंकार-शास्त्र विषयक् ग्रन्थ है और 12 वीं 13 वीं शताब्दी के प्रख्यात संस्कृताचार्य जयदेव कृत 'चन्द्रालोक' पर आधारित है। अप्पय दीक्षित, विद्वानो के अनुसार, सन् 1657 ई० मे जीवित था और अनुमानतः कर्नाटक प्रदेश का निवासी था।

## रचनाएँ

चिकुपाध्याय ने सख्या की दृष्टि से जितने ग्रन्थ लिखे हैं, उतने ग्रन्थ उसके पूर्ववर्ती किसी भी कन्नड लेखक या कवि ने नहीं लिखे। परन्तु गुणो की दृष्टि से चिकुपाध्याय की समस्त रचनायें समान रूप से श्रेष्ठ नहीं कही जा सकती हैं।

चिकुपाध्याय की छोटी-बडी रचनाओ को मिलाकर उसके द्वारा रचित ग्रन्थो की सख्या 30 स अधिक है। सामान्य रूप से उसकी रचनाओ मे रामानुजी वैष्णव सम्प्रदाय के विभिन्न तत्वो, सिद्धान्तो तथा इतिहास का निरूपण कुछ इस प्रकार किया गया है कि सम्यक् रूप से उसकी रचनाओं को रामानुजी-सम्प्रदाय का विश्वकोप कहा जा सकता है। इस दृष्टि से चिकुपाध्याय की कृतियाँ बहुत अधिक महत्वपूर्ण है।

कन्नड-साहित्य के पूर्ववर्ती लगभग सभी प्राप्य साहित्य-रूपो में चिकुपाध्याय ने अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया है। स्वरूप की दृष्टि से उसकी रचनाओ को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है—

चम्पू ग्रन्थ—कमलाचल-माहात्म्य, हस्तगिरि-माहात्म्य, विष्णु-पुराण, रुक्मांगद-चरित्र, दिव्यसूरि-चरित्र, अर्थ-पचक, और सात्विक ब्रह्म विद्या विलास।

गद्य-ग्रन्थ- वेंकटगिरि-माहात्म्य, श्रीरगमाहात्म्य, यदुगिरि-माहात्म्य आदि।

टीका-ग्रन्थ—कामन्दक नीति, तिरुवाय्मोळि आदि।

चिकुपाध्याय रचित ग्रन्थो की उक्त सूची को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसने षट्पदी छन्दो के अतिरिक्त प्राय सभी कन्नड-साहित्य-रूपो मे साहित्य-रचना की थी।

शृगारपरक गीत-रचनाओ मे भी चिकुपाध्याय ने अपने आश्रयदाता चिक्कदेवराज की प्रशस्ति गाई है। चिकुपाध्याय साहित्य की सर्वप्रमुख विशेषताओ को सकेत रूप मे निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है—

1. चिकुपाध्याय रचित कुछ चम्पू-ग्रन्थ आकार की दृष्टि से काफी बडे हैं।

2. चम्पू-रचनाओ मे सस्कृत-गर्भित भाषा और शैली का प्रचुर उपयोग हुआ है।

3 अन्य काव्य-रचनाओ मे, जिनको सागत्य रचनायें कह सकते हैं, कन्नड की शुद्ध शैली प्रयुक्त हुयी है।

4. उल्लेखनीय है, इनकी अनेक रचनायें तमिळ ग्रन्थों पर आधारित हैं।

चिकुपाध्याय की सर्वश्रेष्ठ रचना 'दिव्यसूरि-चरित्र' है, जो एक तमिळ ग्रन्थ को आधार मानकर लिखी गई है। इस ग्रन्थ में रामानुजी वैष्णव सम्प्रदाय के 12 आलवारों [ सन्तों ] के साथ साथ सम्प्रदाय प्रवर्तक रामानुजाचार्य का जीवन चरित्र वर्णित हुआ है। स्मरणीय है, यह चम्पू-ग्रन्थ है और पूर्ववर्ती जैन कवियों ने मत प्रतिपादन के लिए इस शैली का प्रयोग किया था, किन्तु चिकुपाध्याय ने इसका उपयोग वैष्णव-मत-प्रतिपादन के लिए करके एक नवीन परंपरा का श्रीगणेश किया है।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि चिकुपाध्याय एक प्रकाण्ड पण्डित तो था ही, वह एक साहित्यकार भी था, परन्तु एक श्रेष्ठ कवि न था। उसकी रचनाओं में जितना अधिक पाण्डित्य है, कवित्व गुण उनके समक्ष नगण्य-सा दिखाई देता है।

## सिंगरार्य

तिरुमलार्य के अनुज सिंगरार्य द्वारा रचित केवल एक ही रचना उपलब्ध होती है—'मित्रविन्द गोविन्द'।

'मित्रविन्द गोविन्द' नाट्य रचना है। सिंगरार्य ने इस नाटक की रचना संस्कृत-नाटिका 'रत्नावली'* के आधार पर की थी। उसने 'रत्नावली' के समस्त पात्रों के नाम बदल दिये हैं। कृष्ण इस नाटक का नायक [प्रमुख पात्र] है। श्रेष्ठता की दृष्टि से यह नाटक साधारण श्रेणी की रचना है। संस्कृत-नाटक का ( एक प्रकार से रूपान्तरण ) कन्नड़-नाटक में परिवर्तन करते समय सिंगराय ने जो छोटे-से परिवर्तन कर दिये हैं, कृति की श्रेष्ठता के दृष्टिकोण से वे परिवर्तन घातक सिद्ध हुये हैं—अर्थात् उनके द्वारा नाटक का सौन्दर्य, उसके विभिन्न नाट्य-तत्वों का

---

* 'रत्नावली' संस्कृत-भाषा में लिखी गई "चार अंकों (4—acts) की छोटी परन्तु अत्यन्त लोकप्रिय नाटिका है जिसका वस्तु-विधान जहाँ एक नाट्यशास्त्रोपयोगी शैली में सन्निहित है, वहीं अभिनयोपयोगी भी है [ देखिये—'संस्कृत-साहित्य का इतिहास', डा० कमल नारायण टण्डन, पृष्ठ 104 105 ]। इस नाटिका का रचयिता था, सम्राट हर्षवर्धन जिसका शासन-काल सन् 606 648 ई० था। संस्कृत-नाट्य साहित्य के अन्तर्गत 'रत्नावली' का महत्व बहुत अधिक है।

सयोजन, वातावरण निर्माण आदि प्राणदायिनी प्रक्रियाओं तथा गुणों में कोई बढोत्तरी तो नही हुयी है, हाँ,उसका स्तर अवश्य गिर गया है।

किन्तु इस दोष के होते हुए भी कन्नड-साहित्य मे 'मित्रविन्द गोविन्द' को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इस महत्व का एकमात्र कारण ग्रन्थ में प्रयुक्त विशुद्ध प्राचीन कन्नड की भाषा-शैली है। अपने एकमात्र इसी गुण के कारण इस ग्रथ को बहुत अधिक महत्व दिया जाता है। कन्नड़ मे लिखित प्राचीन कालीन यही एकमात्र नाटक है।

## होन्नम्मा

चिक्कदेवराज की पत्नी के महल मे होन्नम्मा सेविका का कार्य करती थी। किन्तु अपनी प्रतिभा, कार्य-कुशलता तथा व्यावहारिकता के बल पर यह सेविका से चिक्कदेवराज की ताम्बूलवाहिनी सेविका [अर्थात् राजा को पान देनेवाली विशेष दासी] बनी। चिक्कदेवराज चूँकि स्वय विद्वान था। और विद्वानो का बडा सम्मान करता था, उसमे विद्वता और प्रतिभा को परखने की अद्‌भुत शक्ति थी, अत. होन्नम्मा उसकी इस तीक्ष्ण दृष्टि से अछूती न रह सकी। चिक्कदेवराज को स्पष्ट आभास हो गया कि यह कोयला सामान्य कोयला नही है, अपितु थोडा-सा श्रम करके इसे चमकदार हीरे मे बदला जा सकता है। तदुपरान्त अशिक्षित होन्नम्मा को चिक्कदेव-राज ने अध्ययन के लिए प्रेरित करना आरम्भ किया। इस सद्‌प्रेरणा का परिणाम यह हुआ कि होन्नम्मा ने सिंगरार्य की शिष्या बनकर शिक्षा ग्रहण की।

यह कहने की नही, अध्ययन द्वारा स्वय अनुभव करने की बात है कि अपने नाटक 'मित्रविन्द गोविन्द' में जो सिंगरार्य अपने विशिष्ट गुणों को प्रदर्शित नही कर पाया था, उसकी कमी को उसने अपनी शिष्या होन्नम्मा से एक ग्रन्थ लिखवाकर पर्याप्त मात्रा मे पूरा कर दिखाया है।

होन्नम्मा द्वारा रचित उसकी एकमात्र रचना है—'हदीबदेय धर्म'। जैसा कि इस रचना के नाम 'हदीबदेय धर्म' [अर्थात् 'पतिव्रत धर्म'] से ही स्पष्ट है, रचना में कोई कथा नहीं है, प्रत्युत स्त्रियों के पतिव्रत-धर्म को स्पष्ट करने के निमित्त उपयुक्त स्थलो पर उदाहरण रूप मे छोटी-छोटी लघु कथायें जोडी गई हैं। उल्लेखनीय है, होन्नम्मा के सती धर्म❀ विषयक

---

❀ सती धर्म के सबध में हिंदुओ के बीच प्रचलित परम्परागत धारणा यह थी कि स्त्री का जिस व्यक्ति के साथ विवाह होता था, वह मन-वचन और कर्म से केवल अपने पति का ही ध्यान कर सकती थी। पति की मृत्यु होने पर, यदि पत्नी जीवित है तो, उसे पति के शव के साथ ही जीवित

विचार स्वाभाविक रूप से साम्प्रदायिक हैं, परन्तु ऐसे विचारों की होते हुए भी होन्नम्मा ने अनेक स्थलों पर परम्परागत, रूढ़िगत विचारों के विरुद्ध सर्वथा नई बातें भी लिखी हैं।

'हदीबदेय धर्म' को संक्षेप में नीति विषयक ग्रंथ कह सकते हैं। इसकी शैली सरल गद्य शैली है। नीतियों—अर्थात् पति से सम्बन्धित पत्नी के आचार-विचारों—से सम्बन्धित होने के बाद भी यह पुस्तक नीरस नहीं है। इसके विपरीत यह पुस्तक बड़ी ही रोचक, सरस, सरल रचना है। पुस्तक को पढ़ने के उपरान्त होन्नम्मा द्वारा धारण की गई "सरल साहित्य की वरदेवी' उपाधि को पूर्णतः सत्य मानना पड़ता है।

कन्नड़-साहित्य के इतिहास में 'हदीबदेय धर्म' का लिखा जाना एक आश्चर्यमूलक घटना मानी जाती है। होन्नम्मा कन्नड़-साहित्य में दूसरी महिला साहित्यकार थीं।

## गिरियम्मा

गिरियम्मा का पूरा नाम 'हेळवनकट्टे गिरियम्मा' था। कन्नड़ साहित्य के उपलब्ध इतिहास में यह तीसरी महिला साहित्यकार थी। श्री सिद्धगोपाल काव्यतीर्थ के मतानुसार "इस महिला साहित्यकार का वास्तविक नाम केवल गिरियम्मा था, हेळवनकट्टे उस ग्राम का नाम था जहाँ गिरियम्मा रहती थी।"

इस महिला का जन्म [सम्भवतः सन् 1750 ई०] धारवाड़ जिले के अन्तर्गत राणेबेन्नूर नामक ग्राम के एक परिवार में हुआ था। इसके पिता का नाम कित्तप्प दीक्षित था। शैशवावस्था में ही गिरियम्मा का विवाह मळबेन्नूर ग्राम के ग्रामाधिकारी कृष्णप्प के पुत्र तिप्परस के साथ हो गया था। समय आने पर जब वह युवा हुयी और ससुराल गई तो सुहागरात की रात को चमत्कारिक घटना घटित हुयी। इस तथाकथित चमत्कारिक घटना के अनुसार, उस रात को जब तिप्परस ने शय्या-कक्ष में प्रवेश किया तो पलंग पर उसे गिरियम्मा के स्थान पर एक साँप बैठा दिखाई दिया। यह घटना, अर्थात् गिरियम्मा के स्थान पर सर्प दर्शन, जब लगातार कई दिनों तक बराबर होती रही तो भयभीत होकर तिप्परस ने दूसरा विवाह कर लिया और गिरियम्मा कुछ समय बाद मेळबेन्नूर से लगभग एक मील दूर स्थित कुमारनहळ्ळि नामक ग्राम में 'हेळवनकट्टे' नामक टीले पर बने मन्दिर

---

अवस्था में ही चितारूढ़ होकर जल जाना पड़ता था। कालान्तर में भारत सरकार द्वारा इसे गैर-कानूनी घोषित किया गया।

मे जाकर निवास करने लगी। वहीं उसे रगनाथ के दर्शन हुये, ज्ञानोदय हुआ।

गिरियम्मा कृष्ण की अनन्य भक्त थी। वह चिर-कुमारी थी। विवाहित होते हुए भी वैरागिनी थी। उसका सम्पूर्ण साहित्य भक्ति-रस में डूबा हुआ है। गिरियम्मा की अनेक रचनायें उल्लिखित की जाती है— यथा ब्रह्म कोरवजी, लव कुशर काळग, उद्दालिकन हाडु, शकर गण्डन कथेय हाडु, कृष्ण कोरवजी, चद्रहास-चरित, सीता-कल्याण, गजेन्द्रमोक्ष, गिळि पारिजात आदि। किन्तु इनमे से केवल तीन ही ग्रथ उपलब्ध हैं—चन्द्रहास-चरित, सीता-कल्याण तथा उद्दालिकन हाडु अथवा उद्दालक कथा। शेष ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं।

'हेळवनकट्टे रग' उपनाम से लिखित गिरियम्मा के भक्ति-गीतों में लक्षित होनेवाला वात्सल्य-रस बरबस हिन्दी कवि सूरदास की याद दिला देता है। डा० मुगलि के अनुसार, "गिरियम्मा एक श्रेष्ठ कवियित्री और कर्नाटक की मीरा थी····उसकी भाषा मे शुद्ध देशी कन्नड का सरल सौंदर्य और अनन्य भाव-भक्ति है। "उदाहरण रूप मे गिरियम्मा के एक भक्ति-गीत का हिन्दी-भावानुवाद द्रष्टव्य है—

"तीनो लोकों को छुड़ानेवाला जादूगर-सम,
यह कौन है, ओ बड़ी बहन ?
सुन, सुन, सुन री ओ छोटी बहन,
यही तो है वह नारायण !
सारी पृथ्वी को आपमे लपेटने वाला,
यह कौन नृप है, बड़ी बहन ?
निराश्रित-भक्तों की पुकार सदा
सुननेवाला है वराह बहन !
अश्वारूढ़ हो सामने आनेवाला,
यह कौन सवार है, बड़ी बहन ?
मथुरापुर के युद्ध को था जिसने दबा दिया
यही तो वह कल्की है बहन !
इन्दुवदन, प्रिय-मूर्ति गोविन्द
अति प्रियदर्शी यह कौन है, ओ मेरी बहन ?
नन्दकन्द हेलहनकट्टेय रग है यह,
देख, परख ले, छोटी बहन !"

ज्ञातव्य है कुमार व्यास युग के अन्तर्गत इस अध्याय में जिन पूर्वोक्त ब्राह्मण साहित्यकारों का उल्लेख तथा विवेचन किया गया है, प्राय वे

सभी द्वैतवाद तथा विशिष्टाद्वैतवाद को ही माननेवाले लोग थे। अतएव इसी सन्दर्भ मे द्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद तथा अद्वैतवाद के सम्बन्ध मे संक्षिप्त विचार कर लेना अप्रासंगिक न होगा।

अद्वैतवाद—अद्वैतवाद का आरम्भिक स्वरूप ऋग्वेद मे मिलता है। नासदीय सूक्त इस वाद का अत्यन्त सुन्दर वर्णन करता है। उपनिषद् तो इसका घर ही हैं। छान्दोग्य उपनिषद् मे एक तथा अद्वितीय सत् [सत्ता] का ही वाचारम्भण समस्त प्रपंच बतलाया गया है और उसे आत्मा से अभिन्न माना गया है। 'तत्वमसि' [अर्थात् 'वह तू (परमात्मा) है'] सिद्धान्त यही से पैदा हुआ है। बृहदारण्यक उपनिषद् मे तो आत्मा को 'नेति-नेति' कहकर नानातत्व का खण्डन करते हुए आत्म-लाभ को ही मोक्ष माना गया। बाद में विभिन्न कालो मे उपनिषदो, ब्रह्मसूत्रो तथा गीता आदि ग्रंथो पर भाष्य [ अर्थात् टीका-टिप्पणीमूलक ग्रंथ ] लिखते रहने के फलस्वरूप परवर्ती काल में उपनिषदो के अद्वैतवादी सिद्धान्त का पर्याप्त प्रचार हुआ। सम्मिलित रूप से इन सबको 'वेदान्त' कहा जाता है।

उपलब्ध ग्रंथो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ऐसे लोगो मे शंकराचार्य ही वह सर्वप्राचीन व्यक्ति हैं जिनके द्वारा लिखित उपनिषद्-भाष्य, ब्रह्मसूत्र-भाष्य तथा गीता-भाष्य आज उपलब्ध हैं। यही कारण है, वेदान्ती अद्वैतवाद के प्रवर्त्तक रूप मे शंकराचार्य ( सन् 788 से 820 ई० ) का ही नाम लिया जाता है।

अद्वैतवादी दर्शन का अनुयायी सत् (सत्ता) की खोज करता है। इसी 'सत्' को तत्व या पदार्थ कहते हैं। कभी कभी इसी को 'परम सत्य' या 'परम तत्व' भी कह देते हैं। इसी सत् को लेकर विभिन्न प्रकारेण प्रश्नो का आविर्भाव दर्शन-जगत् मे हुआ और फलस्वरूप अनेक 'वादो' ('—isms') का जन्म हो गया। जो लोग सत् को एक मानते हैं, वे 'एकत्ववादी' और जो अनेक मानते हैं, वे अनेकत्ववादी, वैपुल्यवादी अथवा बहुल्यवादी कहे जाते हैं, परन्तु अद्वैतवादी इनसे भिन्न हैं। अद्वैतवाद के अनुसार तो सत् न एक है, न अनेक, वह (सत्) तो अगम्, अगोचर, अचिन्त्य, अलक्षण तथा अनिवर्चनीय है। इसी को अद्वैत सत् कहा जाता है क्योंकि इसके अन्तर्गत सत् को किसी भी संख्या के बन्धन मे नहीं बाँधा जा सकता है। उल्लेखनीय है, इस अद्वैत सत् को खोजने के लिए जब प्रयास किये गये तो उस समय भी अनेक तत्व-वादो का जन्म स्वतः हो गया। इसी अद्वैत सत् को शून्यवादी (बौद्ध) शून्य के रूप में, विज्ञानवादी (बौद्ध) विज्ञान के रूप मे, शब्दवादी (वैयाकरण

स्फोटवादी) शब्द रूप मे, शक्तिवादी शक्ति रूप मे, शिववादी शिव-रूप में तथा अद्वैत-वेदान्ती आत्मा रूप मे देखता, मानता है।

अद्वैतवाद के अनुसार, साक्षात् अनुभूत होने वाली चैतन्य-स्वरूप आत्मा ही तत्व है, न कि कोई अन्य भाव या अभाव परम तत्व है। अद्वैत सत् मे ही समस्त भूतो की सत्ता मायया विद्यमान है। उसी से वे मायया निकलते हैं और उसी मे उनका मायया लीन हो जाता है। तात्पर्य यह, कि अद्वैतवाद तार्किक रूप से मायावाद या विवर्त्तवाद से सम्बद्ध है। इस तथ्य को समझने के लिए मायावाद की अत्यन्त सक्षिप्त विवेचना अपेक्षित है।

मायावाद, अद्वैतवाद का निष्कर्ष है। उपनिषदो में दो प्रकार के वचन मिलते हैं—एक को 'अद्वैत-श्रुति' और दूसरे को 'नाना-श्रुति' कहते हैं। अद्वैत-श्रुति के अनुसार 'सत्' एक है, किन्तु आगे चलकर इसी के निषेधात्मक पक्ष की विवेचना नाना-श्रुति के माध्यम से की गई है। इसके अनुसार "नेह नानास्ति किंचन' अर्थात नानात्व सत् नही है। इसी नाना-श्रुति पर मायावाद की आधारशिला रक्खी गई थी। परन्तु आज का मायावाद पूर्वोक्त नही है, उसमे यत्किंचित परिवर्तन हुए हैं। इस परिवर्तन को सूक्ष्म रूप से इस प्रकार देखा जा सकता है कि वैदिक काल में माया के अनेक अर्थ थे और उसका अर्थ अनिश्चित, याने भ्रामक, था—अर्थात जो विस्मयकारी, भ्रामक, रहस्यमय, जघन्य, निन्द्य, कारण-शक्ति, अतर्क-सम्मत, परिवर्तनकारी, विचित्र, नाना, बहु-रूप, अग्राह्य अथवा धोखा देने वाला है, वह 'माया' है। माया का यह अर्थ ऋग्वेद से उपनिषद्-काल तक मान्य था। तदुपरान्त बौद्ध-धर्म के युग मे माया शब्द का व्यवहार स्वप्न, भ्रम, वचना, झूठ तथा असत् के अर्थ मे किया गया। बुद्धोत्तर-काल मे महायान शाखा का विकास होने से माया के अर्थ मे पुन परिवर्तन हुआ और उसका प्रयोग 'दार्शनिक दृष्टि से असत्' के अर्थ मे किया गया। 'मायावाद' का आरंभ वस्तुत यहीं से होता है। इसके बाद शकराचार्य ने माया के अर्थ को समग्रत परिवर्तित कर दिया। उन्होने माया को 'व्यक्तिगत अनुभूतियों से परे' बताते हुए उसे 'विश्व व्यापक' मानकर 'प्रतिभासिक अथवा सावृत्तिक (सत्य) से पृथक' रख 'व्यावहारिक' रूप दिया। उनके अनुसार, 'जो दृष्ट हो परन्तु साथ ही मिथ्या हो, वह माया है।' किन्तु शकराचार्य के इस अर्थ को रामानुजाचार्य, माध्वाचार्य जैसे आचार्य और उनके अनुयायी पचा न पाये। फलत मायावाद की धारा दो दिशाओ में बहने लगी। इन दोनों धाराओ का सम्मिलन बाद मे हिन्दी सन्त-कवियो द्वारा किया गया जिसके परिणामस्वरूप मायावाद का एक नया ही

रूप विकसित हुआ। मायावाद के इस रूप मे सांख्य दर्शन की प्रकृति और अद्वैतवाद की माया को एक मानते हुए उसे ईश्वर की शक्ति कहा गया और उसके बारे मे नाना परिकल्पनाएँ की गई।

तात्पर्य यह, कि मायावाद का जन्म अद्वैतवाद के गर्भ से हुआ है। दोनो ही एक-दूसरे के जन्म के कारण रहे हैं।

द्वैतवाद

ऊपर की व्याख्या से यह स्पष्ट हो जाता है कि "अन्तिम सत्' या 'परम सत्ता' एक है", किन्तु समय-समय पर विभिन्न आचार्यों ने इस सबध मे विभिन्न मतो का प्रतिपादन किया। इन लोगो ने 'अन्तिम सत्' को 'एक' मानने से इन्कार कर दिया। फलत ऐसे लोगो के तीन वर्ग हो गये जिन लोगों ने अन्तिम सत् को एक ही माना, उनकी विचारधारा 'एकत्वाद्' कहलायी, जिन्होने दो माना, उनकी विचारधारा 'द्वित्ववाद्' और जिन्होने दो स अधिक माना, उनकी विचारधारा 'बहुत्ववाद्' कहलायी।

'द्वित्ववाद' को ही प्राय द्वैतवाद कहा जाता है और एकत्ववाद को ही प्राय 'अद्वैतवाद' के नाम से जाना जाता है। उल्लेखनीय है, इन दोनो सिद्धान्तो में पर्याप्त विरोध है। इस विरोध को दूर करके दोनो मे समन्वय करने वाले ये तीन सिद्धान्त हैं—शुद्धाद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद तथा द्वैत द्वैतवाद।

द्वैतवाद के प्रथम प्रवर्त्तक और आचार्य मध्वाचार्य हैं। इनके अनुयायियो मे जयतीर्थ (14वी सदी), व्यासतीर्थ (15वी सदी), रामाचार्य, (16वी सदी), वनमाली मिश्र (17वी सदी), विजयीन्द्र '18वी सदी), वेदेशतीर्थ 18वीं सदी) आदि के नाम मुख्य हैं। द्वैतवाद की प्रतिस्थापना करते हुए मध्वाचार्य ने श्रुति तथा तर्क के आधार पर सिद्ध किया कि ससार मिथ्या नहीं है, जीव ब्रह्म का आभास नही है, तथा ब्रह्म ही एकमात्र अन्तिम सत्य नही है। इस प्रकार अद्वैतवाद के आत्मा तथा ब्रह्म के अभेद का खण्डन करते हुए उन्होने पचभेद-सिद्धान्त की पुष्टि की जो अग्रलिखित हैं— [क] ब्रह्म का जीव (आत्मा) से भेद नित्य है, [ख] ब्रह्म का जड पदार्थ से भेद नित्य है, [ग] जीव और जड पदार्थ मे भेद नित्य है, [घ] एक जीव का दूसरे जीव से भेद नित्य है, तथा [ङ] एक जड पदार्थ का दूसरे जड पदार्थ से भेद नित्य है। उन्होंने उपनिषदों के अनेक अद्वैतवादी वाक्यो की द्वैतवादी व्याख्या करते हुए अपने मत-की पुष्टि की। उदाहरणार्थ—

| औपनिषदिक वाक्य | अद्वैतवादी अर्थ | मध्वाचार्य की (द्वैतवादी) व्याख्या |
|---|---|---|
| 1 तत्वमसि | —'त त्वम् असि' (वह तू है ।) | —'तदीय त्वम् असि' (तू उसका है ।) |
| 2. अयम् आत्मा ब्रह्म— | यह आत्मा ब्रह्म है ।— | 'अयम् आत्मा ब्रह्म (वर्धनशील) अस्ति' [अर्थात 'यह आत्मा बढती रहती है ।] |
| 3. ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति— | ब्रह्म को जानने वाला स्वय ब्रह्म ही होता है । | —ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म के सम न हो जाता है । |

इन कतिपय उदाहरणो से यह तथ्य भली प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि द्वैत मत अद्वैतवाद की तोड-मरोड़कर निकाली गई व्याख्या है। मध्वाचार्य प्रतिपादित इस मत मे कुल 10 पदार्थ मान्य हैं—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, विशिष्ट, अशी, शक्ति, सादृश्य और अभाव । द्रव्य बीस प्रकार का (मध्व मत के अनुसार) होता है—परमात्मा, लक्ष्मी, जीव, अव्याकृत, आकाश, प्रकृति, गुणत्रय [सत्, रज, तम्] अहकारतत्व, बुद्धि, मन, इन्द्रिय, मात्रा, भूत, ब्रह्माण्ड, अविद्या, वर्ण, अन्धकार, वासना, काल और प्रतिबिम्ब । इनमे से अधिकांश तत्व साख्य-दर्शन मे आगृहीत हैं । मध्वाचार्य का ब्रह्म भी बहुत कुछ न्याय दर्शन के ईश्वर से मिलता-जुलता है । उसकी प्रकृति भी साख्य की प्रकृति है ।

कर्नाटक प्रदेश मे सर्वाधिक फलने-फूलने वाला यही मध्व-मत था ।

विशिष्टाद्वैतवाद्—इस मत के मान्य प्रवर्तक आचार्य रामानुज (सन् 1037-1137 ई०) है। यद्यपि इसके आरम्भिक आचार्य और जन्मदाता रगनाथ मुनि (सन् 824 924 ई०) थे, किन्तु इस मत की पूर्ण प्रतिस्थापना रामानुजाचार्य ने ही की थी । इस विचारधारा के दो उत्स हैं—सस्कृत में लिखित वेद तथा तमिळ वेद । इसीलिए इसे 'उभय वेदान्त' कहा जाता है । इसमें वेद, उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र तथा गीता के अतिरिक्त तमिलनाडु के बारह आलवार भक्तो के वाक्यो को भी प्रमाणभूत माना गया है। तमिलनाडु मे जन्मे विष्टिाद्वैत का यथेष्ठ प्रचार उत्तरी भारत मे 14वी सदी के रामानन्द द्वारा किया गया। सुप्रसिद्ध हिन्दी कवियो कबीर, दादू, नानक, तुलसीदास आदि इसी मत के अनुयायी थे ।

इस मत के अनुसार तीन नित्य एव स्वतन्त्र पदार्थ हैं—परमात्मा, चित् (आत्म' या जीव), और अचित् (प्रकृति)। परमात्मा अन्तर्यामी रूप से जीवन और सम्पूर्ण प्रकृति मे 'अश' रूप में विद्यमान है। महाकवि तुलसीदास के शब्दों मे—'ईश्वर अस जीव अविनासी"। चित् और अचित् से विशिष्ट परमात्मा ही एकमात्र सत् है। परमात्मा सगुण द्रव्य है। वह एक और अद्वितीय (दूसरा नही) है। परन्तु चित् और अचित् के गुण चूंकि उसमें हैं, अत. उसमे स्वगत भेद भी हैं। चित्-अचित् के साथ जो सम्बन्ध ईश्वर का है, वह विशेष्य-विशेषण-सम्बन्ध है जिसकी पारिभाषिक सज्ञा अपृथक्-सिद्धि है। जिस प्रकार मकडी अपने भीतर से ही जाला पैदा करती है, वैसे ईश्वर भी अपने अन्दर से ही इस जगत् की सृष्टि करता है। वह जगत् का निमित्त और उपादान कारण है। सृष्टि माया नही, वास्तविकता है।

विशिष्टाद्वैतवादी मानता है कि ब्रह्म सत् ज्ञान, अनन्त, अपहृतपाप्मा, अनिर्वचनीय सौन्दर्ययुक्त, आनन्दमय व आनन्द है। वह सशरीर (शरीरधारी) है। वह चित्-अचित् का आधार, नियन्ता तथा शेषी है। चित् और अचित् आधेय, नि‿म्य और शेष हैं। ब्रह्म भुवनसुन्दर है, अत उदात्त है। चित् (जीव) अजड, आनन्द रूप, नित्य, अणु, अव्यक्त, अचिन्त्य, निरवयव, निर्विकार और ज्ञानाश्रय है। उसका निवास स्थल हृदय है। चूंकि उसमे शेषत्व है, इसीलिए वह सदा अपने शेषी ईश्वर पर निर्भर रहता है। जीव से मुक्त होने पर भी ईश्वर में उसकी भिन्नता बनी रहती है। मुक्त होकर भी वह चित ईश्वर की भांति सृष्टि का कर्त्ता और नियन्ता नही हो सकता। उसका अणुत्व भी अनश्वर है। इन गुणो के अतिरिक्त अन्य सभी गुणो मे जीव मुक्तावस्था में ईश्वर से अभिन्न हो जाता है' इसके विपरीत अचित् तत्व ज्ञानशून्य होता है। इसके तीन भेद—शुद्ध सत्व, मिश्रसत्व तथा सत्व-शून्य—हैं। शुद्ध सत्व का ही दूसरा नाम नित्य विभूति है। मुक्तावस्था मे जीव की देह की रचना इसी से होती है। मिश्र सत्व, रजोगुण तथा तमोगुण से मिश्रित होने के कारण जगत् का उपादान है। इसी को प्रकृति, माया या अविद्या कहते हैं। सत्व-शून्य तत्व काल है।

इस मत की मान्यतानुसार, ब्रह्म के स्वरूप पर चिन्तन करने से उस (ब्रह्म) को प्राप्त करने की इच्छा होती है। इसी अभिलाषा को 'मुमुक्षा' कहते हैं। मुमुक्ष को तीन मार्गों से मोक्ष की प्राप्ति होती है। वे तीन मार्ग हैं—कर्मयोग, ज्ञानयोग तथा भक्तियोग। मत के अनुसार ईश्वर पाँच प्रकार से ध्येय है· प्रथम—नारायण, परब्रह्म या परम वासुदेव नारायण जो वैकुण्ठ मे अपने पार्षदो सहित निवास करता है तथा जिसकी तीन पत्नियाँ

श्री [लक्ष्मी], भू [पृथ्वी] एव लीला है। मुक्त जीव इसी नारायण के पास रहते हैं। द्वितीय—ईश्वर के चार व्यूह वासुदेव (आत्मा), सकर्षण जीव, प्रद्युम्न (मन) तथा अनिरुद्ध (अहकार)। पूजा तथा सृष्टि के लिए इन चार व्यूहो को ईश्वर धारण करता है। तृतीय—विभव रूप। यह ईश्वर का वह रूप है जिसके अन्तर्गत वह अवतार धारण करता है। उसने 10 अवतार लिए हैं—मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि अवतार। चतुर्थ—अन्तर्यामी रूप। अपने इस रूप में ईश्वर सबके हृदय मे निवास तो करता है, परन्तु उसके दर्शन इस रूप मे केवल योगियो को ही सम्भव हैं। पंचम—मूर्ति रूप। अपने इस रूप मे ईश्वर मन्दिरो मे प्रतिष्ठित मूर्तियो मे निवास करता है। ईश्वर का ध्यान इन्ही पाँच रूपो मे किया जा सकता है।

उल्लेखनीय है, विशिष्टाद्वैत मत के कई रूप दर्शन-शास्त्र के साथ-साथ हिन्दी तथा कन्नड साहित्य के क्षेत्र मे भी प्रचलित हैं उनमे से निम्न तीन प्रमुख रूप मे हैं—(1 शक्ति-विशिष्टाद्वैत मत, जिसका आज भी कर्णाटक प्रदेश मे सर्वाधिक प्रचार है, इसी का दूसरा नाम 'वीर-शैव सम्प्रदाय' भी है। (2) शैव-विशिष्टाद्वैत मत, जिसकी स्थापना 13वी शताब्दी मे श्रीकण्ठाचार्य द्वारा हुयी थी। (3) रामानुज द्वारा प्रतिष्ठित 'राम-विशिष्टाद्वैत मत'।

## महालिगरंग कवि

वेदान्त दर्शन के कट्टर अनुयायी महालिगरग कवि का वास्तविक नाम रगनाथ था। महालिगरग इनका उपनाम था। शकराचार्य के अद्वैतवादी वेदात दर्शन के प्रतिपादन हेतु पद्य-शैली मे इन्होने एक ग्रन्थ रचा। इस ग्रन्थ का नाम है, 'अनुभवामृत'।

'अनुभवामृत' तात्विक ग्रथ है। इसे वेदान्त दर्शन का साहित्यिक सस्करण भी कह सकते हैं। इसकी भाषा अत्यन्त मधुर, सरल, सुबोधगम्य कन्नड भाषा है। इस ग्रन्थ के बारे में श्री मुगलि का मत है, सस्कृत न "जानने वाले कन्नड-भाषियो को अद्वै-तत्व समझाने के लिए दृष्टान्त-सम्पत्ति की दृष्टि से इतना सरल कोई दूसरा कन्नड-ग्रथ आज तक नही लिखा गया। यह अनुपम, अतुलनीय है।" सिद्धान्तो को समझाने के लिए उदाहरणो और उपमाओ की झडी-सी लगा दी गई है। यह ग्रथ भामिनी षट्पदी छन्द मे लिखा गया है।

## चिदानन्दावधूत

महालिगरग का अनुकरण करते हुए 18वी शताब्दी के मध्य मे चिदानन्दावधूत नामक कवि ने 'ज्ञानसिन्धु' नामक एक वृहताकार ग्रन्थ की रचना की। यह ग्रन्थ भी भामिनी षट्पदी छन्द मे है तथा इसमे वेदान्त-तत्व का विस्तृत निरूपण किया गया है। शैली 'अनुभवामृत'-जैसी ही है।

## 7. कुमार व्यास-युगीन वीर-शैव साहित्य

पिछले अध्याय के अन्तर्गत हमने कुमार व्यास-युगीन समग्रसाहित्य-सम्पदा का विभाजन प्रमुख रूप से तीन विभागो मे किया था। उनमे प्रथम विभाग ब्राह्मण अथवा वैष्णव साहित्य की विस्तृत चर्चा पिछले अध्याय मे ही की जा चुकी है। इस युग साहित्य का दूसरा विभाग था—वीर-शैव साहित्य। प्रस्तुत अध्याय के अन्तर्गत कुमार व्यास-युगीन वीर शैव-साहित्य की चर्चा अपेक्षित है।

### परिचय

जैसा कि पाँचवें अध्याय के अन्तर्गत स्पष्ट किया जा चुका है कि 'लिगायत अथवा वीर शैव-सम्प्रदाय' की स्थापना 12वी शताब्दी के महापुरुष, भक्ति-भण्डारी बसवण्णा द्वारा की गई थी। बसव-युग के आरम्भ और 12वी शताब्दी मे वीर शैव-साहित्य प्रचुर मात्रा मे रचा गया था। परन्तु 13वी तथा 14वी शताब्दी मे अत्यल्प मात्रा मे वीर शैव-साहित्य की रचना हुयी जिसे नगण्य माना जा सकता है। इस प्रकार लगभग 200 वर्षो तक सोते रहने के बाद 14वी शताब्दी के अन्तिम भाग मे वीर शैव-साहित्य मे अचानक जागरण आया। विजयनगर साम्राज्य काल में इस सम्प्रदाय-साहित्य मे एक बार फिर से प्राण फूंका गया, और कहना न होगा, इस बार यह साहित्य दुगनी शक्ति साथ अनेक रूपो मे प्रकट हुआ। उल्लेखनीय है, विजयनगर काल मे उसका महत्व उतना ही था, जितना वैष्णव साहित्य का।

## वीर शैव-साहित्य के विभिन्न रूप

कुमार व्यास-युगीन वीर शैव-साहित्य को स्वरूप की दृष्टि से, अध्ययन की सुविधा के लिए, निम्न छः वर्गों में विभक्त कर सकते हैं—

1 सम्पादित ग्रन्थ एव वचन-साहित्य,

2 शास्त्रपरक ग्रन्थ,

3. पुराण साहित्य,

4 शतक ग्रन्थ,

5 नीतिपरक ग्रन्थ,

6 चम्पू ग्रंथ ।

नीचे इन वर्गों के अन्तर्गत उपलब्ध साहित्य एव उनके रचयिताओं का साहित्यिक परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है ।

### (1) सम्पादित ग्रन्थ एवं वचन-साहित्य

बसव-युगीन साहित्य इस तथ्य का प्रमाण है कि उस काल में वचन-साहित्य की रचना अपनी पूर्ण गति एव शक्ति से की गई थी, किन्तु ये वचन उसी प्रकार स थे जैसे वर्षा काल मे पर्वत से बह निकलनेवाली अनेकानेक जल-धाराएँ । और जिस प्रकार वर्षाकालीन पर्वत से बह निकलनेवाली असंख्य जल-धाराएँ कुछ आगे जाकर, एक रूप होकर रम्य सरिता का रूप धारण कर लेती हैं, ठीक उसी प्रकार बसव युगीन वचन-साहित्य धाराओं का रम्य, मोहक स्वरूप कुमार व्यास-युग में देखने को मिला । विजयनगर-काल—विशेषत प्रौढ़देवराय (सन् 1419-1496 ई०) के काल—में वचन-साहित्य का संग्रह किया गया, उन्हें सम्पादित और वर्गीकृत किया गया, टीकायें लिखी गईं । विशिष्ट रूप से इस महती योगदान का श्रेय प्रौढ देवराय-शासन के 101 विरक्तों को है जिनके अथक परिश्रम और अटूट लगन के फलस्वरूप वचन-साहित्य आज लिपिबद्ध रूप मे उपलब्ध है । इन 101 विरक्तों में महालिंगदेव और उसके प्रशिष्य जक्कणार्य का नाम विशेष रूप मे उल्लेखनीय है ।

### महालिंगदेव

महालिंगदेव प्रकाण्ड पण्डित और पहुँचा हुआ सिद्ध पुरुष था । उसके प्रथम ग्रन्थ का नाम है—'एकोत्तर शतस्थल' । यह ग्रन्थ वचन संग्रह मूलक है । इसके अन्तर्गत महालिंगदेव ने लिंगायत मत के 'षट्स्थल सिद्धान्त' से सम्बन्धित वचनों को विषयानुरूप 101 स्थलों में विभाजित करके संग्रहीत किया है । इसके द्वारा रचित दूसरे ग्रन्थ का नाम है—'षट्स्थलज्ञानविवेक' ।

अपने इस ग्रंथ में महालिंगदेव ने अपने पूर्ववर्ती वचनकार अल्लम प्रभु के षट्स्थल ज्ञान चारित्र्य वचनों को टीका सहित प्रस्तुत किया है। एतदर्थ, यह महालिंगदेव का टीका-ग्रंथ है।

## जक्कणार्य

यह प्रौढ़ देवराय का सेनापति और महालिंगदेव के शिष्य कुमार बंकदेव का शिष्य था। बसवोत्तर-युगीन वीरशैव साहित्य में जक्कणार्य का प्रत्यक्ष योगदान तो बहुत कम रहा है, परन्तु अप्रत्यक्षतः उसका योगदान बहुत अधिक है। कहने का अभिप्राय यह है कि यद्यपि उसने स्वयं तो अनेक ग्रन्थों की रचना नहीं की, परन्तु अपनी पद-शक्ति और धन सम्पत्ति का उपयोग करते हुए अनेक साहित्यकारों को साहित्य-रचना के लिए प्रेरित किया, उनसे रचनायें करवायी। जक्कणार्य की एकमात्र रचना 'एकोत्तर शतस्थल' है, जो वचनों का विषयानुक्रम से किया गया एक सुन्दर संकलन है।

## बसवेश

बसवेश कुमार, बसवोत्तर युगीन शैव-साहित्य के अन्तर्गत संकलित ग्रंथों की परम्परा में एक उल्लेखनीय नाम है, किन्तु उसका जीवन-परिचयात्मक विवरण सन्देहास्पद रूप में उपलब्ध होता है।

बसवेश रचित एकमात्र ग्रंथ 'वर्णकोत्तर शतस्थल' उपलब्ध होता है। अपनी इस संग्रहमूलक रचना में बसवेश ने अनेक वचनों का सार्थक षट्पदी छंद में रूपान्तरित करके प्रस्तुत किया है।

## तोंटद सिद्धेश्वर

बसवोत्तर युगीन वचन-साहित्य परम्परा में तोंटद सिद्धेश्वर का नाम सर्वोपरि रखा जाता है। कहते हैं, इसका वास्तविक नाम सिद्धलिंगयति था, किन्तु चूंकि यह नागिनी नदी के किनारे एक बगीचे में बैठकर शिवाराधन —शिव योग-साधना— किया करता था, इसीलिए इसका नाम तोंटद सिद्धेश्वर पड़ गया। उल्लेखनीय है, 'तोंटद' का हिन्दी में अर्थ 'बगीचा' होता है

स्मरणीय है, बसव युगीन वचनकारों के बाद कर्नाटक प्रदेश एक प्रकार से वचनकारों से विहीन हो गया था। 12वीं सदी के बाद लगभग तीन-चार शताब्दियों तक कर्नाटक में स्वतन्त्र रूप से वचन कहने वाला एक भी वचनकार नहीं हुआ। जो वचनकार हुये भी उनमें मौलिक प्रतिभा की बहुत कमी थी। उन्होंने जो कुछ लिखा, वह बसव आदि पूर्ववर्ती वचनकारों

की प्रतिच्छाया मात्र है। हाँ, इस दीर्घकाल मे वीर-शैव धर्म का पुनरुद्धार करके उसमे पुन प्राण-प्रतिष्ठा करने वाले शैव-साधकों की सख्या अवश्य ही बहुत अधिक थी। इन शैव साधको मे कुछ ऐसे भी योगी-साधक थे जिन्होने अपनी साधना के बल पर कई सिद्धियाँ भी प्राप्त कर ली थीं, परन्तु उस सिद्धि को साहित्य-रूप दे सकने की क्षमता और साहित्यिक प्रतिभा अत्यन्त साधारण थी तोटद सिद्धेश्वर ऐसे ही शिव-योगी साधको मे एक सर्वश्रेष्ठ नाम था। इसकी शिष्य-परम्परा भी बहुत बडी थी। कालान्तर में तोटद सिद्धेश्वर के व्यक्तित्व को आधार मानकर अनेक चरित् ग्रथ लिखे गये।

स्वय तोटद सिद्धेश्वर रचित एकमात्र ग्रथ 'षट्स्थल ज्ञान-सारामृत' है। इसके अन्तर्गत 701 वचनो तथा 7 पदो को सग्रहीत किया गया है। कवि-नाम के स्थान पर रचनाओ मे 'महालिंग गुरु शिवसिद्धेश्वर प्रभु' का उपयोग किया गया है। इस ग्रथ के अनेक वचन या तो अक्क महादेवी के वचनों का भावानुवादित रूप है, अथवा छायानुवादित रूप, ऐसे वचन बहुत कम हैं जो मौलिकता का दावा कर सकें—और जो कुछेक हैं भी, उनमे भी वह बात नही आ सकी है जो बसव-युगीन वचनकारो मे सहज दृष्टव्य हो जाती है। सम्भवत. इसी तथ्य को ध्यान मे रखते हुए श्री डी॰ एल॰ नरसिंहाचारा महोदय भी यह कहने को बाध्य हो गये हैं—"मौलिक वचनकारो मे कोई भी इस आन्दोलन के केन्द्र-बिन्दु तोटद सिद्धेश्वर तक नही पहुँचता (यद्यपि, तोटद के वचन भी शुष्क और उपदेशात्मक हैं। उनमे साहित्यिक सरलता बिरली ही नजर आती है। बसव और तद्युगीन अन्य वचनकारो की तुलना मे तोटद की रचना बहुत निकृष्ट है।"

## अन्य वचनकार

तोटद के बाद उसके तीन-चार शिष्यो ने भी वचन रचे थे, परन्तु उनमे भी साहित्यिकता का पूर्णाभाव ही दृष्टिगत होता है।

## परम्परा के अन्य साहित्यकार

वीर शैव साहित्य की सम्पादन, टीका और वचनमूलक इस परम्परा के अन्तर्गत कुछ अन्य रचनाकार भी हुये हैं जिनकी चर्चा विस्तार-भय से नही की जा रही हैं परन्तु जिनके नाम इस प्रकार है—कल्लमठ का प्रभुदेव, गुब्बि का मल्लण्णा, एलमल का गुरु शान्तदेव, चेन्नञ्जदेव, सिद्धवीरणाचार्य, आदि।

## (२) शास्त्रपरक साहित्य

अब से पहले वीर-शैव मतावलम्बियो ने जो कुछ भी साहित्य-रचना

की थी, वह मूलत फुटकर वचनो के रूप मे ही की थी, किंतु इस युग मे पुनर्जागरण होते ही लिंगायतो ने वीर शैव धर्म के सैद्धान्तिक पक्ष को आधार मानते हुए सिद्धान्तपरक शास्त्रीय ग्रथो की रचनाएँ की। कहना न होगा, शास्त्रपरक लिंगायती ग्रथो की रचना इतनी अधिक सख्या मे और इतने अधिक लोगो ने की हैं कि उन सबका सम्यक् विवरण दे पाना यहाँ सम्भव नही है। यह पृथक विषय रूप मे ही सम्भव है। अस्तु, यहाँ केवल प्रमुख साहित्यकारो की रचनाओ पर ही विचार किया जायेगा—और वह भी परिचयात्मक दृष्टिकोण को लेकर।

इन शास्त्रपरक वीर-शैव ग्रन्थो की एक सर्वप्रमुख उल्लेखनीय विशेषता सम्प्रदाय मे प्रदर्शित समन्वयवादिता की भावना है। इन ग्रन्थो में वीर-शैव सम्प्रदाय और वैदिक धर्म के सिद्धान्तो को समन्वित रूप मे प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। इस प्रयास के पीछे शास्त्रीय साहित्यकारो का निश्चित रूप से यही मन्तव्य रहा होगा कि किसी भी प्रकार से ये लोग उस सकीणता की भावना को, उस तग दिली को जनता और अनुयायियो के हृदय से दूर कर सकें जो पूर्ववर्ती लिंगायतों मे उसी प्रकार देखने को मिलती है, जैसे कि इस्लाम धर्म मे। इस प्रकार इन ग्रन्थो के माध्यम से साहित्यकारो ने धार्मिक समन्वयवादिता और उदारता का दृष्टिकोण सामने रखकर साम्प्रदायिक बन्धनों को ढीला करने का प्रशसनीय कार्य किया है।

## शास्त्रीय ग्रन्थ

### मग्गेय मायिदेव

वीर-शैव-मतावलम्बियो ने जो शास्त्रपरक ग्रन्थ रचे हैं उनमे से कुछ सस्कृत भाषा मे लिखित ग्रन्थ भी हैं। ऐसे साहित्यकारो में मग्गेय मायिदेव प्रमुख हैं। मग्गेय मायिदेव [ मग्गे का मायिदेव ] रचित ग्रथ 'शिवानुभव सूत्र' प्रामाणिक ग्रथ के रूप मे मान्य है। कन्नड भाषा मे लिखित इसके दो अन्य ग्रथ है—'षट्स्थल गद्य, और 'शतकत्रयी'। इनमे से प्रथम गद्य तथा द्वितीय पद्य शैली मे लिखा गया है।

### आनन्द बसवलिंग शिवयोगी

इस परम्परा का दूसरा महान् लेखक था, आनद बसवलिंग शिवयोगी। इसके द्वारा लिखित एकमात्र ग्रन्थ 'माचिदेवमनोविलास' है। ग्रथ में 34 प्रकरण हैं। प्रकरणो मे लिखे श्लोक तो सस्कृत भाषा मे हैं, किन्तु उन श्लोको की टीका कन्नड मे दी गई है। इस प्रकार यह ग्रथ टीका-रूप मे लिखी गयी मौलिक रचना है, जिसका लेखन बसव-युगीन विख्यात वचनकार एवम् धावीसन्त माचिदेव कृत 'मनोभाव' के आधार पर किया गया है।

## निजगुण शिव योगी

लिंगायत-सम्प्रदाय की शास्त्रीय-ग्रन्थ-परम्परा मे निजगुण शिवयोगी को प्रमुख स्थान प्राप्त है। यह एक उद्‌भट विद्वान् तथा महाज्ञानी व्यक्ति था, जिसने अपनी ज्ञान सयुक्त प्रतिभा का उपयोग अर्जित ज्ञान को जन-साधारण तक पहुँचाने हेतु किया। इसने सरल कन्नड भाषा मे अनेक ग्रथो की रचना इसलिए की ताकि अपने ज्ञान को वह जनता तक पहुँचा सके।

कहा जाता है, निजगुण शिवयोगी ने शम्भुलिंग नामक पहाडी की एक गुफा मे रहते हुये अपनी साधना पूर्ण की थी। समीप ही एक मन्दिर था, जो आज भी है और शम्भुलिंगेश्वर-मन्दिर के नाम से जाना जाता है। सम्भवत इसीलिए उसने अपना काव्य-नाम 'शम्भुलिंग' चुन लिया था और इसी नाम से रचनाएँ करता था। एक अन्य किंवदन्ती के अनुसार पहले वह यही का राजा था, परन्तु बाद मे विरक्त होकर शिवयोगी हो गया।

कुछ भी हो, इतना तो स्वयसिद्ध है कि वह वीर शैव-मत का अनुयायी था, साथ ही उसमे सम्प्रदायजन्य निष्ठुरता न होकर साम्प्रदायिक उदारता और समन्वयवादिता की भावना अपनी पूर्णता के साथ विद्यमान थी। इस कथ्य का प्रमाण निजगुण की समस्त रचनायें हैं जिनका सूक्ष्म अध्ययन यह प्रमाणित करता है कि उसने वेद-उपनिषद् सम्मत अद्वैत-सिद्धात और वीर शैवो के शैवागम-सम्मत षट्स्थल-सिद्धान्त का समन्वय करते हुए उन्हें एक सूत्र मे बाँधने का यत्न किया है। अपनी एक रचना 'कैवल्य-पद्धति' मे एक स्थल पर उसने स्वय कहा है कि मैंने 'सकल वेद-वेदान्तागम, स्मृति पुराणेति-हास-सूत्रादि शास्त्र-सम्मत को पुरातनों—वीर शैव सन्तो—के गीतों का आनुगुण्य [अनुकूलता] दिखलाकर' लिखा है। यही नही, अनेक ग्रथो मे उसने षट्स्थल-सिद्धान्त के निरूपण की अपेक्षा अद्वैतवादी सिद्धान्तो की लम्बी भूमिका का ब्योरा प्रस्तुत किया है। उसके द्वारा दी गई यह भूमिका, विद्वानो की दृष्टि मे, बसवेश्वर और प्रभुलिंग द्वारा निर्धारित शरण-मार्ग के सन्तों के लिए उचित ही है। सम्भवत इसीलिए कन्नड-साहित्य के आचार्यों ने निजगुण वीर शैव मानते हुये भी 'सव, समन्वयशील वीर शैव' की विशिष्ट सज्ञा प्रदान की है।

### रचनायें

निजगुण शिवयोगी ने शास्त्रीय-ग्रथो के अलावा कुछ सन्तों के चरित्र-मूलक पुराण ग्रथ भी रचा था। उसके द्वारा रचित सात ग्रथ ये हैं—कैवल्य-पद्धति, परमानुभवबोध, परमार्थगीत, अनुभव-सार, 63 सन्तो के चरित, प्रकाशिका तथा विवेक-चिन्तामणि।

'कैवल्य-पद्धति' गीतो के रूप मे लिखी गई रचना है जिसमे तत्वोपदेश और शिव की स्तुति विषयक् गीत हैं। 'परमानुभवबोध' संवाद प्रधान रचना है। इसमे याज्ञवल्क्य और मैत्रेय ऋषि के सम्वादो के माध्यम से अद्वैत तत्व की व्याख्या प्रस्तुत की गई है। 'परमार्थगीत' और 'अनुभव सार' भी सवाद-प्रधान रचनाएँ हैं। इनमे गुरु शिष्य के सवादो को प्रस्तुत करते हुये मोक्ष-शास्त्र की व्याख्या की गई है। '63 सन्तों के चरित' ग्रन्थ पौराणिक रचना है, और जैसा कि शीर्षक से ही स्पष्ट है, इसमे 63 वीर शैव सन्तो का जीवन-चरित्र प्रस्तुत किया गया है। उल्लेखनीय है, ये चारो ग्रन्थ सागत्य, रगळे और त्रिपदी छन्दों में लिखे गये हैं।

निजगुण रचित छठी रचना 'परमार्थ-प्रकाशिका' है। यह टीका-मूलक रचना है। यह ग्रन्थ चन्न सदाशिवयोगी रचित ग्रन्थ 'शिवयोग-प्रदीपिका' पर लिखित एक सुन्दर भाष्य है। इसकी शैली गद्य शैली है।

'विवेक-चिन्तामणि' निजगुण की अन्तिम और वृहताकार रचना है। यह ग्रन्थ नही, अगाध ज्ञान का भण्डार है जिसमे निजगुण द्वारा अर्जित तात्त्विक, भौगोलिक, साहित्यिक आदि विभिन्न विषयो से सम्बधित ज्ञान का सार-रूप सगृहीत है। इसको 10 प्रकरण तथा 765 विषयो मे बाँटकर लिखा गया है। ग्रन्थ का आरम्भ करते हुये ग्रन्थकार शिवयोगी ने लिखा है—

"वेदो, पुराणो, शास्त्रो आदि प्राचीन ग्रन्थो मे प्रदर्शित (वर्णित) सभी विषयो को (प्रस्तुत) ग्रन्थ मे स्थान देकर, 'विवेक-चिन्तामणि' यह अन्वर्थ नाम रखकर, यह महाकविता प्रबन्ध मैं प्रेमपूर्वक कहता (लिखता) हूँ।" आगे चलकर उसने एक स्थान पर यह भी लिखा है—" आगम आम्नाय-सम्मत स्मृति, पुराण, इतिहास, पुराणोक्तियो का सार लेते हुये, अनुभवीजनो (वीर-शैव सम्प्रदाय के अनुभावी लोग) के अनुकूल, अपने मस्तिष्क से उपजी कपोल कल्पित (बातें) नही, अपितु सारभूत सत्यार्थो का सग्रह करके चिन्तनशील जिज्ञासुओ के लिए • सरल कन्नड भाषा से सुसज्जित करके यह ग्रन्थ लिखा गया है।"

किंतु शिवयोगी द्वारा रचित ग्रथ का सूक्ष्म अध्ययन निम्न तथ्यो को पूर्ण स्पष्ट रूप से उद्घाटित कर देता है—

(1) 'विवेक-चिन्तामणि' एक महाकविता-प्रबन्ध तो नही, महा ज्ञान-निधि अवश्य है।

(2) ग्रथ मे अनेक विषयो का प्रतिपादन किया गया है जिनमे अधिकाशत शास्त्रीय विषय हैं।

(3) ये शास्त्रीय विषय सस्कृत-गर्भित कन्नड भाषा मे समझाए गये हैं। फलत भाषा मे सस्कृत-शब्दो के कन्नड-रूपो का बाहुल्य है। साथ ही अधिकाश स्थलो पर यत्र-तत्र पारिभाषिक शब्दावली प्रयुक्त हुयी है। ये दो बातें ऐसी हैं जिनकी वजह से ग्रन्थ मे सर्वत्र कन्नड का सरल स्वरूप नहीं प्रयुक्त हो पाया है।

(4) इस तरह भाषा सम्बधी, ग्रथकार का उद्देश्य तो अपूर्ण रहा है, परन्तु सर्वसग्रह और सुबोध कर सकने का उद्देश्य काफी अशो मे पूर्ण हो गया है।

(5) जहाँ तक ग्रथ के ज्ञान-पक्ष का प्रश्न है, शिवयोगी कृत विवेक चिंतामणि' वीर शैव सम्प्रदाय के साथ-साथ अन्य सभी मतो से सबधित ज्ञान का वृहत् ज्ञान-कोष है।" मतातीत सकल ज्ञान-कोष के रूप मे यह कन्नड़-साहित्य की एक अद्वितीय गद्य-रचना है।"

इस प्रकार उक्त विवेचन से वह तथ्य भली भाँति सुस्पष्ट हो जाता है कि निज गुण शिवयोगी की प्रतिभा व ज्ञान का उपयोग जनहित-कार्यों मे ही अधिक हुआ। उसकी समन्वयवादिता प्रशसनीय है।

## लक्कण्णा

'शिव-तत्व चिंतामणि' शीर्षक से इसी युग मे एक और महान् शास्त्रीय ग्रथ की रचना हुयी है। इस ग्रन्थ मे वीर शैव सम्प्रदाय के सिद्धान्तो का सर्वथा नव्य रीति से प्रतिपादन किया गया है। इसका रचयिता था, प्रौढ देवराय का प्रधान मत्री और महाशूर सेनापति लक्कण्णा !

लक्कण्णा कृत महाग्रन्थ 'शिव-तत्व-चिन्तामणि' 55 सधियो मे बँटा हुआ है तथा सम्पूर्ण ग्रथ मे 2,000 से भी अधिक पद्य हैं। ये सभी पद्य वार्धक षट्पदी छदो मे लिखे गये हैं।

ग्रथ का आरम्भ करते हुये लक्कण्णा ने स्वय घोषित किया है—"• (मैं यहाँ) वितत वेद, आगम, पुरातनो की उक्तियो से सम्मत, सारभूत शिव-तत्व-चिंतामणि का विस्तार करूंगा।" कहना न होगा, लक्कण्णा का यह कथन उसके इस ग्रथ की बाबत पूर्ण सार्थक है। वीर-शैव सम्प्रदाय से सबधित कोई भी शास्त्रीय अथवा ऐतिहासिक तथ्य ऐसा नही है, जिसका आकलन इस ग्रन्थ मे न किया गया हो। ग्रथ के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि ग्रथ मे "नित्यानित्य वस्तु विवरण, सकल-निष्कल-विचार, 25 शिव-लीलाएँ, भुवन-कोश, शिवलोक-वर्णन, शिव-नन्दीश सवाद, बसव-चरित, गण-प्रशसा, धर्माधर्म-विवरण, पचाक्षरी और भस्म आदि, का माहात्म्य लिंग-धारण, शिव-पूजा-विधि, पादोदक-प्रसाद-महिमा, शिवाविक्य, महेश्वराचरण,

षट्स्थल आदि समस्त लिंगायत विषयक् सिद्धांत व विषय वर्णित है, एतदर्थ ग्रंथ का 'शिव-तत्व-चिंतामणि' नाम अपनी सार्थकता स्वयं प्रमाणित करता है।

सच तो यह है कि इस ग्रंथ को वीर शैव-मत का विश्वकोश (Dictionary) बनाने का प्रयास किया गया है जो अंशतः सफल रहा है।

उल्लेखनीय है, ग्रंथ की तीसवी, इकतीसवी तथा बत्तीसवी संधियो मे लिंगायत-धर्म प्रवर्तक भक्ति-भण्डारी बसवेश्वर का जीवन-चरित्र वर्णित हुआ है। यह वर्णन इस तथ्य का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि लक्कण्णा मे एक कुशल चरित्रकार की योग्यता व प्रतिभा भी विद्यमान थी।

'शिव-तत्व-चिंतामणि' का रचनाकाल सन् 1425 ई० के लगभग बताया जाता है।

## गुब्बिमल्लणार्य

सन 1530 ई० मे पूर्वोक्त ग्रन्थ 'शिव तत्व-चिंतामणि' के अनुकरण पर गुब्बिमल्लाणार्य ने अपने महाकाव्य ग्रंथ 'वीरशैवामृत पुराण' की रचना की। 'वीरशैवामृत पुराण' लक्कण्णा कृत 'शिव-तत्व-चिंतामणि' से कही अधिक बडा है। लक्कण्णा की रचना मे तो 55 संधियाँ और 2000 से कुछ ही अधिक पद थे, जबकि इस ग्रंथ मे 136 संधियाँ और 7000 से से भी अधिक वार्धक षट्पदी छंद के पद हैं जिनके अंतर्गत शिव की 25 लीलायें, पुरातनो तथा नूतनो (वीर शैव संतो) की कथायें, वेद तथा आगम आदि की उक्तियाँ आदि अनेक विषयो का निरूपण किया गया है।

सत्यत मल्लणार्य के ग्रंथ पर लक्कण्णा का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। साथ ही एक अंतर भी है—लक्कण्णा की रचना मे सिद्धांतो की प्रधानता है, जबकि मल्लणार्य के ग्रन्थ मे कथा-तत्व की प्रधानता है।

'वीरशैवामृत पुराण सम्प्रदाय का विश्वकोश है। ग्रन्थ मे प्रयुक्त भाषा-शैली तथा काव्य-सौंदर्य आदि तत्व मल्लणार्य को निस्संदेह श्रेष्ठ कवि मानने के लिए बाध्य कर देते हैं।

## (3) पुराण साहित्य

इस युग मे जीवनी-साहित्य के रूप मे जो कुछ भी साहित्य लिखा गया, उसमे अधिकांशतः रचनायें वीर शैव कवियो की ही हैं। इन रचनाओ मे अधिकतर वीर शैवो के पुराने संतो तथा नये संतो की कथायें है और केवल दो वीरो की जीवनियाँ हैं।

प्राचीन मतों की जी०नी—भ्रोम्मरस कृत 'भोंदर पुराण' [सन् 1450 ई० लगभग] सुरग कवि कृत 'त्रिषष्टिपुरातन चरित्र' [सन् 1500 ई० लगभग] गुब्बिमल्लणाय कृत 'भावचिन्तारत्न' [सन् 1513 ई०] तथा चेरमाक कृत 'चरम काव्य' आदि ।

नूतन सतो की जीवनियाँ यो तो बहुत अधिक सख्या मे लिखी गई हैं किंतु उच्चता के स्तर पर केवल दो ही रचनाएँ सवश्रेष्ठ समझी जाती हैं—चामरस कृत 'प्रभुलिग लीला' तथा विरूपाक्षपण्डित कृत 'चेन्नबसव पुराण' । ये दानो ग्र थ इस काल की प्रस्तुत परम्परा के अन्तर्गत महत्वपूण घटनाएँ है । शेष जीवनी ग्रथो के बारे मे श्री सुग ल का मत है, शेष जीवनी-विषयक् ग्रन्थो मे ऐतिहासिक तथ्य हैं, भक्तिविह्वल हो किया गया आत्म-निवेदन है, कविता-शक्ति भी है, किंतु अपेक्षित काव्यगत श्रेष्ठता का अभाव है । कुछ ग्रन्थ तो ऐसे भी हैं जिनमे भानुमती के पिटारे की तरह अनेक कहानियो को असम्बद्ध रूप से जोड दिया गया है ।"

जीवनी अथवा पुराणपरक शैव-साहित्य के अन्तर्गत जिन दो वीर-जीवनियों का सकेत ऊपर दिया गया है, वे दोनो ग्रन्थ हैं—नुजुण्ड कृत 'कुमार राम-कथा' [ सन् 1525 ई० ] तथा गग कृत 'कुमटि राम-कथा' । इन दोनो ग्रन्थो मे पर्याप्त समानतायें परिलक्षित होती हैं । उदाहरणार्थ, दोनो का नायक एक ही व्यक्ति कुमार राम है । ज्ञातव्य है, यह राम कौशल-नरेश महाराजा दशरथ के पुत्र न होकर कम्पराज का पुत्र है जिसके शौर्य और सद्चरित्र को आधार बनाकर पूर्णत लौकिक-कथा का ताना-बाना बुनते हुए इन ग्रन्थो की रचना की गई है , और इस तरह लौकिक-कथा पर काव्य-रचना करते हुए धार्मिक विषयो से बोझिल करके रचे गये वीर-शैव-साहित्य-परम्परा मे इन ग्रन्थो के द्वारा कुछ परिवर्तन लाने का प्रयास किया गया ।

ये दोनो ही लौकिक-कथा-काव्य सांगत्य छन्द मे लिखे गये हैं । अस्तु, उपर्युक्त सक्षिप्त विवरण से एक तथ्य सुस्पष्ट हो जाता है और वह यह कि कुमार-व्यास-युगीन वीर शैव-साहित्य-परम्परा के अन्तर्गत रचे गये पुराण अथवा जीवनी परक् साहित्य के क्षेत्र में विद्वानो द्वारा केवल दो ही ग्रन्थो को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया गया है , और वह हैं चामरस कृत 'प्रभुलिग लीला' तथा विरूपाक्ष पण्डित कृत 'चेन्न बसव पुराण' । अत आगे इन्ही दोनो ग्रथो का विशिष्ट अध्ययन अपेक्षित है । किन्तु इनका अध्ययन करने से पूर्व वीर शैव साहित्य के अन्तर्गत प्रयुक्त होने वाले 'चरित्र', 'पुराण' तथा 'लीला' कहलाने वाले विशिष्ट शब्दो का स्पष्टीकरण कर

देना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है। कारण, कि यह स्पष्टीकरण उन जिज्ञासु पाठको के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होगा जो इस वर्ग के कन्नड-साहित्य का विशेष अध्ययन करना चाहते है।

कन्नड भाषा मे वीर शैव-साहित्य-परम्परा के अन्तर्गत लिखे गये साहित्य मे मूल रूप से जीवनी-विषयक तीन प्रकार के ग्रन्थ उपलब्ध होते है—चारित्र, पुराण व लीला। इन तीनो शब्दो मे इतना थोडा अन्तर है कि जीवनी-विषयक साहित्य को उक्त विभागो मे वर्गीकृत करते समय व्यावहारिक रूप से बडी कठिनाई और परेशानी का सामना करना पडता है।

वस्तुत 'चारित्र'—अर्थात् 'चरित्र'—शब्द दक्षिणी भाषाओ मे कथा, गाथा, इतिहास आदि अर्थो को ध्वनित करता है, जब कि हिन्दी भाषा के अन्तर्गत 'चरित्र' का अभिप्राय Character से लिया जाता है, व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन से नही। हिन्दी मे कन्नड या अन्य दक्षिणी भाषाओ के 'चारित्र' शब्द का समानार्थी शब्द है, 'चरित', जो सम्पूर्ण जीवन की अभिव्यक्ति देता है। अस्तु, वीर शैव-साहित्य के ऐसे ग्रथो मे, जिनमे 'चारित्र' शब्द शीर्षक के साथ जुडा हो या न हो, शैव सन्तो की जीवन-गाथा वर्णित मिलती है, 'चरित्र-ग्रथ' कहलायेंगे। दूसरे शब्दो मे कह सकते हैं, वीर शैव-सन्तो का जीवन-गाथा गाने वाले ग्रन्थ 'चरित्र-ग्रन्थ' कहलाते हैं।

किन्तु जब शैव सन्तो के जीवन को, उनकी जीवन-गाथा को कुछ विशिष्ट रूप देकर, उन सन्तो को विशेष महत्व देते हुए, उन साम्प्रदायिकता का जामा पहना दिया जाता है तो वही चरित्र ग्रथ अपनी चरित्र ग्रथमूलक विशेषता को खोकर 'पुराण' कहलाने लगते हैं—अर्थात् कुछ विशेष सन्तो की उस कहानी को, जिसमे साम्प्रदायिकता का गहरा पुट दे दिया गया हो, 'पुराण' कहते हैं।

और 'लीला'-ग्रन्थ वे ग्रन्थ है जिनमे भगवान् शिव की 25 लीलाओ का वर्णन किया गया हो। ऐसे ग्रथ 'कन्नड रूप लीले' कहलाते है।

स्मरणीय है, वीर शैव-साहित्य के अन्तर्गत अनेक ग्रथ ऐसे भी मिलते हैं जिनके नाम के साथ चरित्र, पुराण अथवा लीला शब्द तो जुडा होता है, परन्तु उपरिवर्णित लक्षणो की कसौटी पर वे ग्रथ खरे नही उतरते, या उतरते भी है तो उपर्युक्त वर्गो मे से किसी अन्य वर्ग के लक्षणो को प्रमाणित करते हैं।

दूसरे, अनेक ऐसे भी ग्रन्थ हैं जिनका विषय मिश्रित हो गया है, अर्थात् ग्रथकार ने एक ही ग्रथ मे चरित्र, पुराण व लीला ग्रथो के विभिन्न लक्षणो को एक ही स्थान पर समाविष्ट करते हुए उसमे वीर शैव

सम्प्रदाय के साम्प्रदायिक सिद्धान्तो को भी मिला दिया है। इस प्रकार के ग्रथो को 'मश्र-विषय-ग्रन्थ' की सज्ञा दे सकते हैं। ऐसे ग्रथो के उदाहरण हैं—'शिव-तत्त्व-चितामणि', 'वीर शैव मृत पुराण, 'चेन्नबसव पुराण' आदि। स्थूल रूप से ये ग्रन्थ बहु-विषयक् होने के कारणस्वरूप कलात्मक दृष्टि से दोषयुक्त हो गये हैं चूंकि ऐसे ग्रन्थो के रचयिताओ का उद्देश्य सम्प्रदाय के विश्वकोष की रचना करना था, फलत किसी एक वर्ण्य-विषय पर वे केंद्रित नही हो पाये, परिणामत इन ग्रथो मे नैसर्गिक साहित्य-सौंदर्य का अभाव उसी प्रकार खटकने लगता है, जैसे कुशल सगीत वादक के साथ गीत गाने वाले व्यक्ति की आवाज भद्दी हो और सगीत का सारा मजा किरकिरा हो जाये। इन ग्रथो मे रचयिताओ की आत्मा अपने मूल रूप में नही उतर सकी है।

## चामरस

कुमार व्यास युगीन वीर शैव साहित्य के जीवनी-साहित्य-परम्परा की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना है, वीर शैव-साहित्य के क्षितिज पर चामरस का अभ्युदय। चामरस एक विरक्त शैव-सन्त था। यह प्रौढ देवराय का समकालीन था। अपनी विरक्ति, भक्ति, ज्ञान और वैराग्य को साहित्य के रूप मे अनुपम रगों से सज्जित करनेवाले चामरस ने बसव-युगीन सुप्रसिद्ध सन्त अल्लम प्रभु* (अन्य नाम प्रभुदेव) की जीवनी लिखकर कन्नड के वीर-शैव जीवनी-साहित्य को अनूठा रत्न दिया है, यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है। चामरस ने अपनी प्रतिभा के बल पर अपने ग्रथ नायक प्रभुलिंग देव (अल्लम प्रभु) से बहुत गहरा तादात्म्य स्थापित करके अनेक काल्पनिक घटनाओ मे सजीवता के रग भर दिये हैं।

चामरस के इस महान् ग्रथ का नाम है—'प्रभुलिंग लीला'।

स्मरणीय है, अल्लम प्रभु को काव्य का नायक बनाकर सर्वप्रथम उनकी जीवनी बसव-युगीन महाकवि हरिहर† ने सक्षिप्त रूप से अपने ग्रथ 'शिवगणद रगलेगलु' के अन्तर्गत 'प्रभुदेव रगले' रूप मे लिखी थी, तदुपरान्त स्वतन्त्र रूप से अल्लम प्रभु की जीवनी लिखी चामरस ने।

इन दोनो ही रचनाओ मे वर्ण्य-विषय तो एक ही है, किंतु दोनो की कथाओ और शैली आदि में पर्याप्त अन्तर है जिनमे से कुछ मुख्य बातें ये हैं—

---

* देखिये पृष्ठ

† देखिये पृष्ठ

I 'हरिहर कृत 'प्रभुदेव रगळे' का नायक अल्लम कामलता नामक एक युवती पर आसक्त हो जाता है और विवाहोपरान्त कामलता की असामयिक मृत्यु हो जाने के कारणस्वरूप विरह-सतप्त हो वैराग्य धारण कर लेता है। परतु चामरस का अल्लम ऐसा नही है। वह स्वय मुग्ध नहीं होता है, अपितु परम सुन्दरी माया उस पर मुग्ध हो जाती है। ग्रथ की कथा का सक्षिप्त रूप यह है :

'जब भगवान् शिव ने महासिद्ध अल्लम प्रभु की महिमा का वर्णन देवी पार्वती से किया तो पार्वती के मन मे शका उत्पन्न हुयी जिसके निवारणार्थ स्वय पार्वती ने अपने अशावतार द्वारा परम सुन्दरी माया का रूप धारण किया और अल्लम की परीक्षा लेने उपवन मे जा पहुँची। उपवन में पहुँचकर परम सुन्दरी माया अल्लम को रिझाने के लिए नाचती है, गाती है और अल्लम उसके साथ मृदग बजाते हुये भी पूर्णत' निर्लिप्त रहता है, माया के प्रेमपाश में नही फँसता—और इस तरह माया के वश मे न आकर वह देवी पार्वती द्वारा ली गई परीक्षा में खरा उतरता है...'

एतदर्थ, हरिहर की लौकिकता के स्थान पर 'प्रभुलिंग लीला' के रचयिता चामरस ने अपनी ग्रन्थ-कथा को पौराणिकता का सहारा देकर उसे अधिक सुन्दर, मोहक और पौराणिक रूप दे दिया है। इसके अतिरिक्त दोनो ग्रन्थो मे वर्णित अल्लम प्रभु की जीवन-कथा अथवा जीवन से सम्बन्धित अनेक घटनाओ में पर्याप्त भिन्नता देखने को मिलती है। दोनो ग्रथो के अध्ययन से मन मे शका उत्पन्न होती है कि दोनो मे से किस ग्रथ मे ऐतिहासिक तथ्यों का वर्णन हुआ है, और किस सीमा तक। यह तो निर्विवाद है कि अल्लम प्रभु के जीवन मे कोई एक ऐसी घटना अवश्य घटी होगी जिसने उन्हे ससार से विरक्त कर दिया था, किंतु दोनो ग्रथो मे वर्णित कथा की दो भिन्न घटनाओ मे से कौन-सी घटना ऐतिहासिकता के अत्यत निकट है, यह कहना अत्यत कठिन है—केवल अनुमान भर लगाया जा सकता है, और उस अनुमान के आधार पर, सहज बुद्धि का प्रयोग करके इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि चूंकि हरिहर और अल्लम प्रभु के बीच का काल चामरस की अपेक्षा बहुत कम था, अतएव हरिहर की रचना मे ऐतिहासिक सत्याश अधिक मात्रा मे मिलने की सम्भावना है। चामरस द्वारा वर्णित कथा मे सदियो के अन्तर के कारण काल्पनिकता के आधिक्य की सम्भावना कही अधिक है। जहाँ तक काव्य-सौन्दर्य का प्रश्न है, सौन्दय और रस की दृष्टि से 'प्रभुलिंग लीला' निस्सन्देह हरिहर कृत 'प्रभुदेव- रगले' से कहीं अधिक श्रेष्ठ है।

2 दूसरा प्रमुख अन्तर है, शैलीगत भिन्नता। चामरस की रचना मे प्रयुक्त शैली और कथा-गति मन्द-गति प्रवाहिनी सरिता-जैसी है, जबकि हरिहर कृत 'रगळे' की गति तेज आँधी की तरह है।

3. इन दोनों मे सबसे प्रमुख अन्तर यह भी है कि हरिहर का 'रगले' मात्र जीवनी बनकर रह गया है; जबकि चामरस की रचना मात्र जीवनी नहीं है। सच तो यह है, और जैसा कि, रचना का शीर्षक 'प्रभुलिंग लीला' भी सूचित करता है, ग्रथ मे अल्लम प्रभु के रूप मे स्वय लिंग (भगवान शिव) की ही लीलाका वर्णन किया गया है। ग्रन्थ के उद्देश्य का स्पष्टीकरण करते हुए आरम्भ मे ही चामरस ने लिखा है—"मैं सबको ज्ञान कराने के लिए अल्लम प्रभु सम्प्रदाय के ललित सन्मार्ग का वर्णन करूँगा।" कहना न होगा, चामरस की इस उक्ति मे एक सम्प्रदाय विशेष का, उसके सिद्धान्तो आदि का, वर्णन करने की ओर स्पष्ट सकेत कर दिया गया है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि हरिहर और चामरस की काव्य-रचनाओं मे पर्याप्त भिन्नता है, दोनो की अपनी अलग विशेषतायें हैं।

चामरस की 'प्रभुलिंग लीला' सम्पूर्णत भामिनी षट्पदी छन्द मे लिखी गयी है। ग्रन्थ की शैली सुबोध, स्वाभाविक प्रवाह एव ओजमयी है। भाषा सरल है। भाषा मे न कोई आडम्बर है, न बलात् ठूँसे गये अलकारो की भरमार और न सस्कृत-शब्दो की बोझिलता। कुमार व्यास की तरह ही चामरस ने भी भामिनी षट्पदी छन्द और रूपक अलकार का स्वच्छन्द रूप से प्रयोग किया है। उसी की तरह चामरस भी अष्टादश वर्णन के व्यामोह मे नही पडा है। ऐसे वर्णन जहाँ कहीं भी 'प्रभुलिंगलीला' मे आए हैं, वे प्रसगवशात् ही आए हैं, उनका वर्णन करना कवि का उद्देश्य नही रहा है।

चामरस की 'प्रभुलिंग लीला' का हरिहर कृत 'प्रभुदेव रगळे' के सदर्भ मे मूल्याकन करते हुए प्रोफेसर आर० एस० मुगलि का यह मत उल्लेखनीय है—"आलोचकों की मान्यता है कि चामरस की गणना कन्नड के श्रेष्ठ कवियो मे की जानी चाहिए। हरिहर के ग्रथ 'बसवदेव रगळे' के बाद चामरस की 'लीला' उसी के समान, उतना ही सारवान जीवनी-काव्य-ग्रथ है। एक मे भक्ति की बाढ है तो दूसरे मे ज्ञान का सार। दोनो ही कवियो ने अपने चरित्र-नायक का जीवन-रहस्य समझने के लिए अपने जीवन को अर्पित करके अत्यन्त उज्ज्वल एव सजीव चित्रो को चित्रित किया है। सत्यत. जीवन-चरित-काव्य की श्रेष्ठता के लिए ऊँची प्रतिभा के साथ-साथ चरित्रकार के व्यक्तित्व की उच्चता भी अत्यन्त आवश्यक होती है। अपने

चरित-नायक के साथ पूर्ण तादात्म्य स्थापित करने के लिए जीवन-सिद्धि चाहिए। दोनों ही महान कवियो की यह महान उपलब्धि थी। यही कारण है, हरिहर और चामरस दोनो कन्नड साहित्य को श्रेष्ठ रचनाएँ भेंट कर सके।"

## विरूपाक्ष पण्डित

विरूपाक्ष पण्डित कृत 'चेन्नबसव-पुराण' का लेखक वीर शैव-सम्प्रदायी कवियो द्वारा लिखे गये जीवनी-साहित्याकाश मे दूसरी महत्वपूर्ण घटना है। स्मरणीय है, चेन्न बसवण्णा की जीवनी पूर्ववर्ती अनेक शैव-कवियों ने अपने ग्रथो मे दूसरे अन्य सतो के साथ ही वर्णित की है, परतु केवल चेन्न के जीवन को रचना का मूल उद्देश्य मानकर लिखी गयी यह पहली रचना है।

'चेन्नबसव-पुराण' के सम्बन्ध मे दूसरा महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि यद्यपि इस ग्रन्थ की रचना चेन्नबवण्णा की जीवनी-लेखन के लिए ही की गई है, तथापि ग्रथ मे अन्य अनेक शैव-सतो की जीवनियाँ तथा लिंगायत-सम्प्रदाय के सिद्धान्त आदि अनेक विषयो को भी जोड दिया गया है, फलस्वरूप यह ग्रथ विशुद्ध-जीवनी ग्रन्थ न रहकर लिंगायत-मत का एक विश्वकोश (dictionary) बनकर रह गया है और सत्यत: इस रचना के पीछे ग्रथकार का उद्देश्य भी यही था। इस तथ्य की सूचना उसने ग्रथ के आरम्भिक सूच्य पद मे इन शब्दो मे दे दी है "यह ग्रथ चेन्नबसव द्वारा (अपने शिष्य सिद्धराम को परम शिव-तत्व का उपदेश देते हुए शैव-मत की दीक्षा देने की परमसत्कथा है।" कहना न होगा, ग्रथकार द्वारा रचित यह सूच्य पद इस तथ्य का स्पष्ट सकेत है कि परम शिव-तत्व की व्याख्या करते समय आनुषगिक रूप से वीर शैव-मत से सम्बन्धित सभी विषयों का वर्णन-विश्लेषण करना ही प्रस्तुत पुराण का मूल उद्देश्य है।

उक्त तथ्य को प्रमाणित करने हेतु ग्रन्थाकार का एक अन्य कथन भी द्रष्टव्य है जिसके अन्तर्गत कवि कहता है, "मैं कर्नाटक-व्याकरण, छद, अलकार आदि का शब्दो के अनुकूल ढालकर, इस लोकोक्ति को झूठा प्रमाणित करते हुए कि 'वर्णक काव्य'* व्याकरण, अलकार, छन्दादि शास्त्रीय

---

*कन्नड-काव्य-क्षेत्र मे काव्य-रचना की दो शैलियाँ प्रचलित थी—

(1) वस्तुक शैली—प्राचीन चम्पू शैली, अर्थात् गद्य और पद्य रूप के मिश्रित स्वरूप मे रचना करने की शैली, अथवा मार्ग-शैली को 'वस्तुक शैली' का नाम दिया गया है।

नियमो से आबद्ध नही होता', यह नूतन काव्य कहूँगा ताकि समस्त सज्जन व्यक्ति मन लगाकर इसका श्रवण कर सकें।"

अभिप्राय यह, कि उक्त कथन के अनुसार प्रस्तुत ग्रथ मे प्रौढ महाकाव्य के परम्परागत 18 वर्णनो तथा सभी प्रकार के रसो का निरूपण आवश्यक रूप से किया गया होगा, और यह निरूपण ग्रथ मे सहज ही द्रष्टव्य है। यही कारण है, यह ग्रन्थ अपने-आप मे 5 काण्डो, 63 सन्धियो तथा 2906 वार्धक षट्पदी छन्दो को समेटते हुए एक महाग्रथ बन गया है। श्री सिद्धगोपाल काव्यतीर्थ के मतानुसार, 'शिव-कवि, सदमल ज्ञानी, सकलागम-पुराण-कोविद विरूपाक्ष पण्डित की यह महाकृति 'वीर शैवामृत पुराण' की तरह वीर शैव धर्म का विश्वकोष बन गई है • किन्तु चारित्रिक ध्येय, क्रम और कविता की प्रौढता मे इसकी रीति भिन्न है। इसमे उच्च पाण्डित्य कवित्व रूढि निष्ठा और शैली-सौष्ठव है और निश्चित रूप से बुद्धिमान लोगो को मुग्ध करनेवाला वाग्विलास है।

विरूपाक्ष पण्डित के काव्य का मूल्याकन करते हुए श्री शि० शि० बसवनाल की मान्यतानुसार, " • • • •साराश यह है कि उसे (विरूपाक्ष पण्डित को) महाकवि पम्प, रन्न, षडक्षर देव के साथ प्रथम श्रेणी के कवियो मे नही रखा जा सकता, परन्तु निर्विवाद रूप से उसे लक्ष्मीश, कुमार व्यास आदि की श्रेणी मे रखा जा सकता है।" श्री बसवनाळ की उक्त मान्यता काफी हद तक सही प्रतीत होती है। यह सच है कि विरूपाक्ष पण्डित ने

---

(11) वर्णक शैली—प्राचीन चम्पू-शैली या वस्तुक शैली) के ठीक विपरीत प्रचलित शैली (जिसे 'नवीन देसी शैली' भी कहा गया जो नवीन छन्दो, विशेषकर षट्पदी, को लेकर प्रचलित हुई थी, 'वर्णक शैली' कहलाती है।

इस 'वर्णक शैली' के बारे में कुछ लोगो की यह धारणा थी "वर्णकक्के लक्षणमिल्ला' अर्थात् 'वर्णक मे लक्षण नहीं होता•' बाद मे इस शैली को अपनाने वाले साहित्यकारो ने इस धारणा को निर्मूल सिद्ध किया है।

'लक्षण' शब्द का अभिप्राय (हिन्दी, सस्कृत तथा समस्त दक्षिण भारतीय भाषाओ में समान रूप से) काव्य-शास्त्रीय ग्रथो मे वर्णित व्याकरण, छन्द, रस, अलकारादि नियमो से लिया जाता है। इन विषयो पर लिखे गये ग्रथ 'लक्षण ग्रन्थ' कहलाते हैं। हिन्दी का 'रीति' शब्द लक्षण का समानार्थी है।

अपने पूर्ववर्ती वीर शैव तथा अन्य कवियो से बहुत कुछ लिया है, यद्यपि उसमे उच्च श्रेणी की कवित्व-शक्ति विद्यमान है तथापि उनकी अनुकरण-प्रवृत्ति के कारण और काव्य वैभव मे मिश्रण-वृत्ति के कारण ही न तो उसे महाकवि मानने को लोग तैयार हैं और न उसकी रचना को महाकृति ही।"

जैसा कि कहा चुका है, विरूपाक्ष पण्डित मे उच्च कवित्व-शक्ति विद्यमान थी। अपनी इस शक्ति का प्रदर्शन उसने अनेक स्थलो पर किया है, परन्तु "उसकी तर्क शक्ति और पाण्डित्य-प्रौढता सौंदर्य-बुद्धि की अपेक्षा कहीं अधिक सबल थी", यही कारण है कि कला दृष्टि से उसका पुराण महाकृति नही बन सका है। लेकिन इसके बावजूद इस ग्रथ को पर्याप्त महत्व दिया जाता है कारण, कि यह ग्रन्थ अपने रचयिता की तरह मत और काव्य दोनों ही दृष्टियो से सम्प्रदायवादी रचना है।

अन्य पुराण ग्रन्थ—

कुमार व्यास-युगीन वीर शैव-साहित्य परम्परा के अन्तर्गत उक्त महत्वपूर्ण जीवनी-साहित्य के साथ-साथ अनेक छोटे छोटे पुराण ग्रन्थ और लिखे गये। इन ग्रन्थो का आधार शैव-पुराणो में वर्णित कथायें हैं। ऐसे अनेक पुराण-ग्रन्थो में निम्नलिखित ग्रन्थ उल्लिखित किये जा सकते हैं—

हरिश्चन्द्र सागत्य काव्य—इस शीर्षक से दो छोटे पुराण-ग्रन्थो का प्रणयन किया गया—अर्थात् दोनो ग्रथो का शीर्षक एक ही है। एक का रचयिता ओदुगगिरि तथा दूसरे का बोम्मेयलक्क था। ये दोनों ही रचनायें राघवाक कृत 'हरिश्चन्द्र चरित' की नकल मात्र हैं—विशेषकर बोम्मेयलक्क ने तो अनेक स्थलो पर राघवाक के भावो तथा पद-समूहो का ज्यो-का-त्यो उपयोग कर लिया है।

श्वेत सागत्य—इस ग्रथ का रचयिता मल्लिकार्जुन था। ग्रन्थ की रचना सागत्य षट्पदी छन्द में की गई है।

वीरभद्र-विजय—देसी शैली के इस युग में वीरभद्रराज द्वारा रचित 'वीरभद्र विजय' मार्ग-काव्य-रचना के प्रयासो का पथ-प्रदर्शन करता है।

भिक्षाटन-चरित्र—इस ग्रन्थ का रचयिता गुरुलिंगविभु था। 'वीरभद्र-विजय' की ही भाँति यह भी मार्ग-काव्य-परम्परा का प्रतिनिधित्व करता है। दोनों ही ग्रथों में अष्टादश-वर्णन का मोह दिखाई देता है, यहाँ तक कि विभु कृत 'भिक्षाटन-चरित्र' मे तो शिव को वेश्याओ के चकले (place for prostitution) मे ले जाया गया है।

इतना सब होते हुए भी इस परम्परा के अन्तर्गत गुरुलिंगविभु कृत 'भिक्षाटन चरित्र' का बहुत अधिक महत्व है। एक आलोचक के अनुसार तो, "देसी काव्य को मार्ग काव्य का संस्कार देकर प्रौढ़ करनेवाले इस काल के कवियों मे एकमात्र गुरुलिंगविभु को ही सर्वाधिक श्रेय मिलना चाहिए।" ग्रन्थ-रचना के इस उद्देश्य को पूरा करने मे विभु काफी हद तक सफल रहा है। परन्तु जहाँ तक विषय-वस्तु का प्रश्न है, निश्चय ही उसे कोई अन्य विषय चुनना था। उस स्थिति मे मार्ग और देसी काव्य के पारस्परिक समन्यीकरण के फलस्वरूप ग्रंथ मे जो असगति आ गई है, उसका नितान्त अभाव होता।

## ( 4 ) शतक-ग्रन्थ

कुमार व्यास-युगीन वीर शैव कवियो ने सम्पादित, शास्त्रपरक तथा पुराण ग्रथो के अतिरिक्त अनेक शतक-ग्रथो की भी रचना की थी। उन शतक ग्रन्थों मे से निम्न शतक-ग्रथ उल्लेखनीय हैं—

1. मग्गिय मायिदेव कृत 'शतकत्रय'
2. गुरुमूर्ति कृत 'शकर शतक',
3. वीरभद्रराज कृत 'पच शतक'
4. सिरिनामधेय कृत 'मल्लेश्वर शतक'
5. चन्नमल्लिकार्जुन कृत 'शिव महिमा शतक'
6. शकरदेव कृत 'शकर शतक' तथा,
7. शान्तवृषभेश कृत 'अनुभव शतक'।

विशेषतायें—

इन शतक ग्रन्थो की निम्नलिखित प्रमुख विशेषतायें उल्लिखित की जा सकती हैं

1. ये सभी शतक-ग्रथ मूल रूप से वीर शैव-सम्प्रदाय मे सम्बन्धित हैं और सम्बन्धित विषय का ही प्रतिपादन करने हेतु रचे गये हैं। यह तथ्य उपर्युक्त सभी ग्रथो के शीर्षको को देखते ही ज्ञात हो जाता है।

2 सभी ग्रथो मे कमोवेसी रूप से सम्प्रदाय द्वारा निर्देशित भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, षटस्थल सिद्धान्त* तथा भगवान् शकर की महिमा का प्रतिपादन किया गया है।

---

*षट्स्थल सिद्धान्त के लिए देखिए पृष्ठ

3 इन ग्रथों मे श्रृंगार-रस के लिए कोई स्थान नहीं है। श्रृंगार-रस के स्थान पर शान्त और भक्ति-रस की गगा-जमुना प्रवाहित हुई है।

मूल्यांकन—

उक्त सभी ग्रथो का अध्ययन करने के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि श्रेष्ठता की दृष्टि से माधिदेव कृत 'शतकत्रय' सर्वोत्कृष्ट रचना है। इस ग्रन्थ मे तीन शतक ग्रन्थो को आबद्ध किया गया है प्रथम है 'शिवाधव शतक' जिसका वर्ण्य विषय ज्ञान है। द्वितीय है, 'शिवावल्लभ शतक'—इसका वर्ण्य-विषय भक्ति है। तृतीय है, 'पुरीश्वर शतक' —जिसका विषय वैराग्य है। इस प्रकार 'शतकत्रय' ज्ञान, भक्ति और वैराग्य की उत्कृष्ट साम्प्रदायिक रचना है।

शतक ग्रथों की कुछ अपनी शास्त्रीय विशेषतायें होती हैं जिन्हें स्मरण रखना, इन ग्रन्थों का अध्ययन करते समय, अनिवार्य-सा हो जाता है।

वास्तव में 'शतक' शब्द की व्युत्पत्ति सस्कृत के 'शत्' शब्द से है जिसका अर्थ है, सौ (100)। सस्कृत काव्य शास्त्र के अन्तर्गत काव्य के दो मुख्य भेदों का उल्लेख प्रबन्ध और मुक्तक काव्य के नाम से हुआ है। मुक्तक काव्य की परिभाषा देते हुए सस्कृत-आचार्य आनन्दवर्धन ने अपने ग्रथ 'ध्वन्या-लोक' मे लिखा है—"जिस काव्य मे पूर्वापर-प्रसंग निरपेक्ष रस-चर्वणा की सामर्थ्य होती है, वही मुक्तक काव्य कहलाता है।" अर्थात् मुक्तक काव्य के अन्तर्गत प्रयुक्त प्रत्येक पद अथवा छन्द, भाव की दृष्टि से अपने-आप मे पूर्ण होता है तथा एक पद का अपने पूर्ववर्ती अथवा परवर्ती पदो से कोई भी कथात्मक अथवा भावात्मक सम्बन्ध नही जुडता है। दूसरे शब्दो मे, इसे यो कह सकते हैं "मुक्तक काव्य से उस काव्य-रूप का बोध होता है जिसमें कथात्मक प्रबन्ध या विषयगत लम्बे प्रबन्ध की योजना नहीं होती।"* सस्कृत-आचार्यों ने इस मुक्तक काव्य को अनेक भेदोपभेदो मे विभाजित किया है। सर्वाधिक मान्य वर्गीकरण अगले पृष्ठ पर दिया जा रहा है।

---

*'हिन्दी साहित्यकोश', भाग 1, पृष्ठ 647—द्वितीय सस्करण।